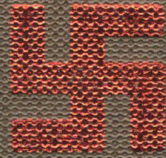


ॐ
सत्यमेव जयते

अंतर - शोधन



प्रकाशक :

जगद्वारा संस्था • जगद्वारा संस्था

ॐ

परमात्मने नमः।

अंतर-शोधन

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

[दृष्टिना निधान (गुजराती)से साभार उद्धृत]

❁ अहा! मैं ही तीर्थकर हूँ, मैं ही जिनवर हूँ, मुझमें ही जिनवर होनेके बीज विद्यमान हैं। परमात्माका इतना उल्लास....मानों परमात्मासे मिलने जा रहे हों! परमात्मा बुला रहे हों कि आओ....आओ....चैतन्यधाम में आओ! अहाहाहा! चैतन्यका इतना आह्लाद और प्रह्लाद होता है! चैतन्यमें मात्र आह्लाद ही भरा है। उसकी महिमा, माहात्म्य, उल्लास, उमंग असंख्य प्रदेशों में आना चाहिये। १.

❁ अरे भाई! तुझ जैसा कोई धनवान नहीं है! तेरे भीतर परमात्मा विराज रहे हैं इससे अधिक धनवानपना क्या होगा? ऐसा परमात्मपना सुनकर उसे अंतरसे उल्लास आना चाहिये। उसकी लगन लगनी चाहिये। उसके लिये पागल हो जाना चाहिये। ऐसे परमात्मस्वरूपकी धुन लगना चाहिये। सच्ची धुन लगे तो जो स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहेगा? अवश्य प्रगट होगा ही। २.

❁ भाई! तू विश्वास तो ला! कि मेरे स्वभावके आनन्दके समक्ष सारी प्रतिकूलताएँ और सारी दुनियाका विस्मरण हो जाये ऐसी अद्भुत वस्तु मैं हूँ। मैं वर्तमान में परमात्मा ही हूँ, मुझमें और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं है—ऐसा विश्वास आने पर अन्तर मिट जायगा और पर्यायमें परमात्मा प्रगट हो जायगा। ३.

❁ अरे प्रभु! तू स्वभावसे परमेश्वर है। तेरे विरोधकी बातें करते हुए शर्म आती है,

अनादर नहीं आता! कहाँ तेरी शुद्धता और कहाँ यह विकारी भाव—मिथ्यात्व—संसार! अरे! कहाँ नीम वृक्षके फूलों में एकेन्द्रियके अवतार! कहाँ निगोदमें अवतार! अरे, तू भगवान् स्वरूप! तू कहाँ चला गया भगवान्! तेरा विरोध नहीं है प्रभु! तुझसे विरुद्धभाव का विरोध है। जिसकी माता उच्च परिवारकी पुत्री हो, जो कभी आँख उठाकर न देखे, उसका पुत्र वेश्याके यहाँ जाय—उसी प्रकार यह परिणति भगवान्की यह अपने स्वरूपको छोड़कर विकारमें जाय तो शर्म आती है प्रभु! ४.

❀ वास्तवमें यह सुअवसर प्राप्त हुआ है उसमें स्वयं अपना कार्य कर लेने जैसा है। दुनियाकी आलोचना करने जायगा तो यह अवसर गँवा देगा! अपनी भूलको सुधारना है। वस्तुस्वरूप समझकर भूलको सुधार ले तो भगवान् हो जाय। ५.

❀ जैसे कुत्तेके कानमें कीड़े पड़ जाये तो उसका लक्ष बारम्बार वहीं जाता रहता है, वैसे ही जिसे आत्मा प्राप्त करना है उसका लक्ष बारम्बार आत्मसन्मुख जाता है, आत्माकी धुन चलती रहती है। दूसरी धुन तो अनन्तकालसे चल रही है, अब एकवार आत्माकी धुन तो लगा! अरे, छह महीने तो प्रयत्न कर! बारम्बार अंतर्मुखताका प्रयत्न करेगा तो तुझे अवश्य आत्माकी प्राप्ति होगी। ६.

❀ एकवार परके लिये तो मर ही जाना चाहिये। परमें मेरा कोई अधिकार ही नहीं है। अरे भाई! तू ऐसा ज्ञाताद्रष्टा पदार्थ है कि रागको या एक रजकणको भी नहीं कर सकता। उस ज्ञाताद्रष्टा पदार्थकी दृष्टि कर! चारों ओरसे उपयोगको समेटकर एक आत्मामें ही लीन हो जा! ७.

❀ भगवान् सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिमें सिंहनाद हुआ, कि हे जीव! तू सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप है। प्रभु! तू स्वयं परमात्मस्वरूप हमारी जातिका ही है जैसे—बकरियोंकी टोलीमें सिंह मिल गया हो, वैसे ही शुभाशुभभावमें भगवान् मिल गया है; उसके लिये भगवान्का सिंहनाद हुआ कि अरे, तू तो हमारी ही जातिका भगवान्स्वरूप है—ऐसा जान! ८.

❀ भाई! तेरा जन्म पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें और निर्धन परिवारमें हुआ है, इसलिये हम आजीविकादिके लिये क्या करें ऐसा मत सोच! तू तो वर्तमानमें और जब देखे तब सिद्ध समान ही है, जिस क्षेत्रमें जिस कालमें और जब देखे तब सिद्धसमान ही है। मुनिराजको खबर नहीं होगी कि सब जीव संसारी हैं? भाई! संसारी और सिद्ध तो पर्यायकी अपेक्षासे हैं, स्वभावसे तो वे संसारी जीव भी सिद्धसमान शुद्ध ही हैं। ९.

❁ पानी पीनेसे तृषा शांत होती है, आहार करनेसे क्षुधा मिटती है, औषधि लेनेसे रोग मिटता है—इस प्रकार जीव संसारमें सर्व वस्तुओंका विश्वास करता है। उस विश्वासके बलसे उन उन वस्तुओंको प्राप्त करनेका लक्ष जाता है। वैसे ही आत्माका विश्वास आना चाहिये कि मैं स्वयं ही ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ; मैं स्वयं ही परमात्मस्वरूप हूँ, रागादिस्वरूप नहीं हूँ—इसप्रकार अंतरसे विश्वासका बल आना चाहिये। अपनी परमेश्वरताका विश्वास....विश्वास....उस विश्वासका बल उसे अंतर्मुख ले जाता है। १०.

❁ जिज्ञासुको प्रथम तो ऐसा निर्णय होता है कि मैं मोक्ष प्राप्त करने योग्य ही हूँ, उसमें शंकाको स्थान नहीं होता। आत्माके लिये ढीली ढीली बात नहीं करना। स्वयं अनंत गुणोंसे परिपूर्ण है उसे देखना, स्वयं ही देवाधिदेव हूँ ऐसा अवलोकन करना। ११.

❁ आनन्दका सागर ऐसे शुद्धात्माकी बात प्रेमसे सुनता है उसे भावी निर्वाणका भाजन कहा है। उसका श्रवण करते हुए शरीरसे भिन्न हूँ, कर्मसे भिन्न हूँ, रागसे भिन्न हूँ और अपनेसे परिपूर्ण हूँ यह बात उसे बैठना चाहिये, अंतरसे स्वीकृति आना चाहिये, उसमें कोई उलझन जैसी बात नहीं है। सुनकर स्वीकार करने, हाँ कहने पर भीतर संस्कार पड़ते जाते हैं। १२.

❁ शरीरके प्रत्येक पोरवेमें ९६-९६ रोग हैं, वह शरीर क्षणमें दगा दे जायगा, क्षणभरमें छूट जायगा। किंचित् सुविधा हो वहाँ घुस जाता है, परन्तु भाई! तुझे कहीं जाना है वहाँ किसका मेहमान होगा? कौन तेरा परिचित होगा? इसका विचार करके अपना तो कुछ कर ले! शरीर अच्छा हो तब तक आँख नहीं खुलती और क्षणभरमें शरीर छूटने पर अनजाने प्रदेशमें चला जायगा! छोटी-छोटी उम्रके भी चले जाते हैं। इसलिये अपना कुछ कर ले! शास्त्रमें कहा है कि वृद्धावस्था जब तक नहीं आये, शरीरको जब तक कोई रोग न घेर ले और इन्द्रियाँ जब तक शिथिल न हो जायँ तब तक आत्महित कर लेना। १३.

❁ योगीन्द्रदेव कहते हैं कि अरे जीव! अब तुझे कबतक संसारमें भटकना है? अभी तू थका नहीं है? अरे, अब तो आत्मामें आकर आत्मिक आनन्दका आस्वादन कर! अहाहा! जैसे जलकी धारा बहती हो वैसे यह धर्मकी धारा बह रही है....पीना आता हो तो पी ले! भाई! सुकाल में तो कलका लकड़हारा भी आज केवलज्ञान प्राप्त कर ले ऐसा काल था वह! जैसे पुण्यशालीको तो पग-पग पर निधान मिलते थे, वैसे ही आत्मपिपासुको पर्याय-पर्यायमें आत्मासे आनन्दनिधान प्राप्त होते हैं। १४.

❁ जिसे आत्माकी यथार्थ रुचि जागृत हो उसे तो चौबीसों घन्टे उसीका चिन्तन, मंथन

और खटका बना रहता है, नींदमें भी उसीका रटन चलता रहता है। अरे! नरककी भीषण वेदनामें पड़े हुए नारकीने भी पूर्वकालमें यदि सत्का श्रवण किया हो तो उसीका स्मरण करके क्षणभरमें अंतरमें उतर जाता है, उसे प्रतिकूलता किंचित् भी बाधक नहीं होती! और स्वर्गकी अनुकूलतामें पड़ा हो तब भी उसका लक्ष छोड़कर अंतरमें उतर जाता है। यहाँ तो किंचित्मात्र प्रतिकूलता होने पर भी अरे! मुझे तो यह कठिनाई है और वह मुसीबत है—ऐसा कर-करके अनन्तकाल गँवा दिया! अब तो उसका लक्ष छोड़कर अंतरमें उतर जा भाई! इसके बिना दूसरा कोई सुखका मार्ग नहीं है। १५.

❁ समस्त सिद्धान्तका सार तो बहिर्मुखताको छोड़कर अंतर्मुख होना है। श्रीमद्ने कहा है न! “उपजै मोह विकल्पसे समस्त यह संसार, अंतर्मुख अवलोकते विलय होत नहिं वार।” ज्ञानीके एक वचनमें अनन्त गम्भीरता भरी है। अरे, भाग्यशाली को ही तत्त्वका रसास्वादन होगा और उसके संस्कार गहरे उतरेंगे। १६.

❁ भाई! एकबार हर्षित तो हो कि अहा! मेरा आत्मा ऐसा परमात्मस्वरूप है, ज्ञानानन्दकी शक्तिसे भरपूर है, मेरे आत्माकी शक्ति कुण्ठित नहीं हुई है। “अरेरे! मैं दीन-हीन हो गया, विकारी हो गया....अब मेरा क्या होगा?” इसप्रकार भयभीत मत हो, हताश या निराश मत हो....एकबार स्वभावका उत्साह प्रगट कर....स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको उल्लसित कर। १७.

❁ क्रमबद्धकी मान्यतावाला आनन्दकी दृष्टिपूर्वक रागको दुःखरूप जानता है, उसे रागका रस उड़ गया है, जिसे रागमें मिठास लगती है उसे पहले अज्ञानमें रागको टालनेकी चिन्ता थी वह भी क्रमबद्ध-क्रमबद्ध करके मिट गई है। उसके तो मिथ्यात्वके पोषणमें वृद्धि हुई है; मिथ्यात्वको तीव्र किया है। राग मेरा नहीं है ऐसा कहता है और आनन्दस्वरूपकी पुष्टि नहीं है तो उसने मिथ्यात्वको बढ़ाया है। भाई! यह तो कच्चे पारे जैसा वीतरागका सूक्ष्म रहस्य है। अंतरसे पचाये तो वीतरागताकी पुष्टि होगी और उसका रहस्य नहीं समझा तो मिथ्यात्वका पोषण करेगा। १८.

❁ जैसे मिट्टीके कोरे पात्रमें पानीकी बूँद पड़ने पर पानी चुस जाता है दिखायी नहीं देता, परन्तु अधिक पानी गिरनेसे बाहर दिखता है, वैसे ही यह परमात्मतत्त्वकी बात सुनते-सुनते मैं ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ....ऐसे दृढ़ संस्कार डाले तो मिथ्यात्व भावका रस मन्द पड़ता जाता है। अभी भूमिका मिथ्यात्वकी है, परन्तु मिथ्यात्वका अभाव होनेके संस्कार पड़ते जाते

हैं। शुभ भावोंसे तो मिथ्यात्वका रस भव्य-अभव्यको अनन्तबार मन्द पड़ा है, परन्तु इस ज्ञायकके संस्कारोंसे मिथ्यात्वभावका अभाव होनेके संस्कार पड़ने पर एकदम स्वभावका आश्रय लेने पर स्वानुभव होनेसे मिथ्यात्वका अभाव होता है। १९.

❁ मुझे बाहरका कुछ चाहिये—ऐसा माननेवाला भिखारी है। मुझे तो अपना आत्मा ही चाहिये—ऐसा माननेवाला बादशाह है। आत्मा अचित्य शक्तिका स्वामी है। जिस क्षण जागे उसी क्षण जागती ज्योति आनन्दस्वरूप अनुभवमें आ सकता है। २०.

❁ पशुका विष्टा (गोबर) मिलने पर गरीब स्त्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर धनवान सेठ खुश हो जाते हैं; परन्तु विष्टा (गोबर) और धनादिमें कुछ भी अन्तर नहीं है। एकवार आत्माके वैभवको देख ले तो बाह्य वैभवकी निर्माल्यता भासित हो। २१.

❁ चक्रवर्तीको अपनी विशाल सम्पत्ति छोड़ना भी सरल है और भिखारीको अपना मिट्टीका भिक्षापात्र छोड़ना कठिन लगता है। आत्मस्वरूपकी समझ आने पर चक्रवर्तीकी सम्पत्ति और मिट्टीका भिक्षापात्र दोनों एक समान पुद्गल भासित होते हैं। २२.

❁ तीर्थकर, चक्रवर्ती और बलदेव जैसे पुण्यके धनी कि जिनकी देव भी सेवा करते थे, जिन्हें किसी प्रकार कोई कमी नहीं थी, लोग जिन्हें भगवान समान मानते थे—ऐसा पुण्य और वैभव होने पर भी “हमें यह कुछ नहीं चाहिये”—इस प्रकार सर्वकी उपेक्षा करके—छोड़कर आत्मसाधना हेतु वनमें चले गये! अहाहा! उनको यह आत्मा कैसा आश्चर्यकारी एवं विस्मयकारी लगा होगा? २३.

❁ चारों ओर जंगली पशु घूम रहे हों तो अपनेको नींद कैसे आयगी? शस्त्रसज्जित पुलिस अपनेको पकड़नेके लिये फिर रही हो तब भी कैसे नींद आ सकती है, वैसे ही आत्मार्थी जब तक तत्त्वनिर्णय नहीं करे तब तक वह आरामसे नहीं सो सकता। २४.

❁ भाई! यह तत्त्व समझे बिना तीनकाल तीनलोकमें कहीं तेरा उद्धार होनेवाला नहीं है। चाहे महाव्रत पाले, चाहे भक्ति कर-करके मर जाय, भले ही लाखों मन्दिर बना और घन्टे बजा, परन्तु तेरा उद्धार होनेवाला नहीं है। मिथ्याश्रद्धामें तो अनन्त निगोद और नरकके भव करनेकी शक्ति है। २५.

❁ अरे, एकवार देहान्तके समयका विचार तो कर! फिर तुझे खबर पड़ेगी कि यह क्या तमाशा है! वह (आत्मा) परमेश्वर और फँस गया इस (शरीर) में!! २६.

❁ बाहरसे मर जाय उसके लिये यह धर्म है। बाहरसे मेरा जीवन नहीं है; रागसे और परसे जीवन वह तो मेरा मरण है। जो परसे और रागसे मर जाये उसके लिये यह धर्म है। २७.

❁ यह तो अंतरमें से आयी हुई बातें हैं और ऐसा ही है। कुन्दकुन्दाचार्य और सीमंधर भगवानकी प्रत्यक्ष भेट होकर आयी हुई बातें हैं, यह ऊपर-ऊपरकी बातें नहीं हैं। यह बातें करोड़ों और अरबों रुपये देने पर भी नहीं मिल सकती। चक्रवर्तीका राज्य लग जाय तब भी मिलें ऐसी नहीं हैं। २८.

❁ जिसके जन्म-मरणकी गाँठ गली नहीं है, उसने जीवनमें कुछ भी नहीं किया और जिसने गृहस्थाश्रममें रहकर भी जन्म-मरणकी गाँठ गला दी उसने सब कुछ कर लिया है। सिद्ध भगवान उसके हाथमें आ गये हैं। २९.

❁ अनुभव तत्काल करनेवालोंकी संख्या भले ही अल्प हो परन्तु इसकी श्रद्धा दृढ़ करके पक्षको सुदृढ़ करनेवाले और उसीका मंथन करके अल्पकालमें कार्य करनेवाले जीव अल्प कैसे कहे जायँ? वे तो अनेक होते हैं....। ३०.

❁ छह खण्डका अधिपति चक्रवर्ती विचारता है कि अहा! आनन्दका कारण मैं स्वयं एक हूँ और यह सब दुःखके कारण—निमित्त हैं....ऐसा वैराग्य होनेपर....वाल खींचने वाली रानियोंसे कहते हैं कि अरे! अब तुम सबके प्रति जो राग था यह जल गया है; हमारे आनन्दका कारण हमारे पास है। उस आनन्दकी खोजमें हम जा रहे हैं। हम आनन्दके भ्रमर आनन्दका पराग लेनेके लिये अंतरमें जा रहे हैं। हमारे आनन्दकी मौजोंकी छलक हमें अंतरसे आ रही है। उन्होंने अंतरमें कुछ देखा होगा न? कि जिसके समक्ष यह सब सड़े हुए तृणवत् भासित हो रहा है। ३१.

❁ एक ओर भ्रमणा और दूसरी ओर भगवान हैं। ३२.

❁ अरे, उसे कभी अपनी दया नहीं आयी। अपनी दया उसने कभी की नहीं। दया कब की कहलाती है?—कि स्वभावभाव वह मेरा और विभावभाव मेरा नहीं। जैसा स्वभाव है वैसा ही उसे रखे तब उसकी दया की कहलाती है। ३३.

❁ बबूलके वृक्ष तले बैठे हुए मुनि जिनके शरीर पर वस्त्र नहीं है, गर्म-गर्म हवा लग रही है, परन्तु अंतरमें आनन्दकी झनझनाहट बज रही है वे सुखी हैं। दूसरोंको ऐसा लगता

है कि यह बेचारा बाबा है, परन्तु वह बाबा नहीं बादशाह है। चक्रवर्ती हो तथापि वह दुःखी है, बादशाह नहीं है। ३४.

❁ योग्यता, काललब्धि, क्रमबद्ध आदि सबका ज्ञान द्रव्यदृष्टि करने पर यथार्थ होता है। रुचि हो परमें और क्रमबद्ध तथा काललब्धि पर डाले यह नहीं चल सकता। पोपाबाईकी यह कोई अन्धेर नगरी नहीं है। ३५.

❁ इस बातको समझने में अनन्त पुरुषार्थ चाहिये। अंतरमें पात्रता चाहिये। सब ओर से सुखबुद्धि हट जाना चाहिये। बहुत पात्रताकी आवश्यकता है, पर्यायमें बड़ी योग्यता होना चाहिये। श्रीमद् कहते हैं कि तू अपने दोष से दुःखी हो रहा है। तेरा दोष इतना कि परको अपना मानना और अपनेको भूल जाना। ३६.

❁ किसीका इकलौता जवान पुत्र मर जाय तो उसे कितना आघात लगता है! वैसे ही इसे आघात लगना चाहिये। राग और संयोगकी आड़में तू स्वयं मर रहा है, तुझे उसका कोई आघात लगता है? ३७.

❁ तीनलोकका नाथ गहरी निद्रामें पड़ा सो रहा है उसे जगाने की यह बात है जाग रे जाग! चोर-लुटेरे तेरा सर्वस्व लूट रहे हैं! सावधान होकर अपनी लक्ष्मीको संभाल! यह जागृत होनेकी बात सुनने को मिले वह भी महान भाग्यशाली है। ३८.

❁ अरे, एक वालतोड़ (रोग) शरीरमें निकलने पर कितनी असह्य पीड़ा होती है। तो यह मेरा शरीर, मेरा घर, मेरी स्त्री, पुत्र, मित्र, मेरा धन, प्रतिष्ठा आदि अनेक मेरे अर्थात् में धनवाला, शरीरवाला, स्त्री-पुत्र-मित्रवाला ऐसे अनेक वालतोड़ोंकी पीड़ाकी उसे खबर नहीं है फिर भी पीड़ित है। ३९.

❁ ज्ञानमें ज्यों-ज्यों समझ द्वारा भाव भासन बढ़ता है त्यों-त्यों ज्ञानसामर्थ्यमें वृद्धि होती रहती है और बढ़ते हुए ज्ञानसामर्थ्यसे मोह शिथिल होता जाता है। ज्ञान जहाँ सम्यक् रूप परिणमित होता है वहाँ मोहका समूल नाश हो जाता है, इसलिये ज्ञानसे ही आत्माकी सिद्धि है। ज्ञानके अलावा अन्य कोई आत्मसिद्धिका साधन नहीं है। ४०.

❁ अहो! संत-मुनि जहाँ मनुष्य हों वहाँ से तो चले गये....परन्तु जहाँ उनका पगरव भी न हो ऐसे एकान्त स्थानमें आत्मशोधन हेतु चले गये हैं। भाई! यह तो आत्मशोधनका काल है उसके बदले परकी और रागकी खोजमें सारा जीवन चला जाता है। ४१.

❁ यह जो पानीकी सतह पर काई बिछी हुई है उसकी एक राई जितने कणमें अनन्त भगवान पड़े हैं। ऐसे तो कितने ही तालाबों और नदियोंमें समस्त लोकमें ढूँस-ढूँसकर निगोदके जीव भरे हैं; वे सब भगवान हैं। उन उन सबको महान माननेमें सचमुच अपनी—आत्माकी महानता है। ४२.

❁ यह चैतन्यतत्त्व तो कोई अगम्य वस्तु है। बाहरी वैराग्यसे अथवा ज्ञानके क्षयोपशमसे प्राप्त हो जाय ऐसी वस्तु नहीं है। अंतरमें अव्यक्त तथापि प्रगट अचिन्त्य वस्तु विद्यमान है, उसका माहात्म्य समझे तब गम्य हो और उसके जन्म-मरणका अंत हो जाय ऐसी वस्तु है। ४३.

❁ भगवान आत्मा दुःखकी दशामें आया है, परन्तु दुःखको टालनेका सामर्थ्य रखकर दुःखकी दशामें है। जब अपनी शक्ति-सामर्थ्यकी प्रतीति करे तब दुःखकी दशाका अन्त होता है। ४४.

❁ वर्तमान-वर्तमान वर्तती इस कालकी ज्ञानपर्याय वह त्रैकालिक ज्ञायकका ही एक अंश है; उसे अंतरोन्मुख करने पर “चैतन्यहीरा” अनुभवमें आता है। अवयवके द्वारा अवयवीकी पहिचान होती है। ज्ञानकी पर्यायको अन्तर्मुख करके देखे तो तेरा चैतन्यसूर्य तेरे अनुभव में आयागा। उसका प्रकाश तुझे दृष्टिगोचर होगा। ४५.

❁ अरे! उसे रोना भी नहीं आता कि मुझे स्वयं अपना विरह! ४६.

❁ इन्द्रिय विषयोंमें जो आनन्द मानता है वह तो विषके प्याले पीता है। ४७.

❁ मिसरीमें मात्र मिठास भरी है, वैसे ही आत्मामें मात्र आनन्द ही भरा है। उसका एक क्षण विश्वास करे तो आनन्दका झरमर-झरमर झरना झरता है, वर्षा होती है, उसे सुप्रभात कहते हैं। (नूतन वर्षके प्रभातमें) ४८.

❁ देह तो रोगोंकी मूर्ति है, भगवान आत्मा आनन्दकी प्रतिमा है। मृतक कलेवरमें भगवान अमृतका सागर मूर्च्छित हो रहा है। भाई! एकबार तू अपने को देख, दूसरोंको देखने में अंध हो जा और स्वयंको हजार नेत्रों से देख! ४९.

❁ अहा! आत्मा तो अनन्त विभूतियोंका भण्डार, अनन्तगुणोंकी राशि, अनन्त गुणोंका विशाल पर्वत है, चारों ओर गुण ही भरे हैं अवगुण एक भी नहीं है। ‘ओहो! यह मैं!’—ऐसे अपने आत्माके दर्शनका जीवने कभी कौतूहल भी नहीं किया। ५०.

❁ कहीं विरोध जैसा हो वहाँ नहीं जाना चाहिये और कदाचित् जाना पड़े तो मौन

रहना चाहिये। यह अंतरका मार्ग तो ऐसा है कि सहन कर लेना चाहिये विरोधमें पड़ना नहीं। अपना गुड़ स्वयं चोरीसे अर्थात् छुपकर खा लेना चाहिये। किसीको छेड़ने का काल नहीं है। अपना ही संभाल लेने जैसा है। वाद-विवादमें उतरने जैसा नहीं है। ५१.

❁ अहा! आनन्दका सागर अपने अंतरमें उछल रहा है उसे तो यह जीव देखता नहीं है और तृणसमान तुच्छ विकारको ही देखता है। अरे जीवो! अपने अंतरमें दृष्टि लगाकर चैतन्यसमुद्रको देखो! उसमें डुबकी लगाओ! ५२.

❁ भगवानकी प्रतिमाके समान भगवानके आगमका बहुमान होना चाहिये। आगम तो मुनियोंकी अक्षरदेह है। ५३.

❁ श्रीमद् राजचन्द्रने तो कहा है कि मुमुक्षुओंको आजीविका जितना मिलता हो तो विशेष प्रवृत्ति नहीं करना; वह तो रोटली मिलती हो फिर भी सिर पर पोटली बाँधने जैसा है! अरे! जाना कहाँ है? जीवन थोड़ा है उसमें यह क्या कर रहे हो? ऐसा मनुष्यभव प्राप्त हुआ है और यह सत् समझनेका अवसर मिला है तो चार-छह-आठ घण्टे पठन, श्रवण, मनन, सत्समागम द्वारा अपने आत्माका कुछ हित करके मानव-भव सफल कर ले। ५४.

❁ इस शरीरके लक्षण देखो! निरोग शरीर क्षणमें रोगरूप परिणमित हो जाता है। शरीरके रजकण जिस काल जो होना हों सो होंगे ही, उसमें कौन फेरफार कर सकता है? शरीरके परमाणुओंको कैसा रहना उनमें तेरा क्या काम है? तुझे कैसे रहना उसकी तू संभाल कर! ५५.

❁ अरे प्रभु! तेरा कभी मरण ही नहीं होता फिर डरता क्यों है? अतीन्द्रिय आनन्दमें जा! प्रभु ! शरीर ही तेरा नहीं है फिर रोगसे क्यों डरता है? जन्म, जरा, मृत्यु रहित भगवान आत्मा है वहाँ जा!—ऐसा जिनवर, जिनवाणी और गुरु कहते हैं। तू तो जन्म, जरा, मरण रहित प्रभु है वहाँ दृष्टि दे! तुझे जन्म, जरा, मरण रहित होना हो तो जन्म, जरा, मरण रहित भगवान भीतर विराजमान है वहाँ जा! वहाँ दृष्टि देकर स्थिर हो! ५६.

❁ स्वसमय और परसमयके साथ वाद-विवाद करना योग्य नहीं है। तू अपने आत्माका अनुभव कर। परके साथ विवाद करना योग्य नहीं है। निधान प्राप्त करके निज जन्मभूमिमें जाकर भोगनेको कहा है। इसलिये अपनी निधि प्राप्त करके स्वयं अकेले भोगने जैसा है। ५७.

❁ जब किसी स्त्रीका पति मर जाय और वह विधवा हो जाय तब दुनियावाले उस

विधवा स्त्रीको दुखिया मानते हैं, परन्तु वास्तवमें वह स्त्री दुखिया नहीं है परन्तु उसे आत्मकार्य करनेके लिये निवृत्ति मिली है। यहाँ तो दुखिया उसे कहते हैं जो रागमें और पुण्य-पापके भावमें एकता मानकर अपने आनंदकंद स्वभावको भूल गया है। वही सचमुच दुःखी है। भगवानका मार्ग जगतसे भिन्न है। ५८.

❁ आत्माको सदा ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रखना। चाहे जो प्रसंग आ जाय परन्तु द्रव्यस्वभावको मुख्य रखना। शुभाशुभ परिणाम भले आयें, परन्तु निरन्तर द्रव्यस्वभावका ध्येय रखना। आत्माको मुख्य रखने पर जो दशा हो उस निर्मलदशाको साधन कहा जाता है और उसका साध्य केवलज्ञान प्राप्त करना है और उसका ध्येय पूर्ण आत्मा है। कषायकी मन्दता एवं ज्ञानके क्षयोपशमकी मुख्यता होगी उसकी दृष्टि संयोग पर जायगी। आत्माकी ऊर्ध्वताकी रुचि एवं जिज्ञासा हो उसका प्रयास हुए बिना रहेगा ही नहीं। आत्मानुभवसे पहले भी सच्ची जिज्ञासा हो उसे अव्यक्तरूपसे आत्माकी ऊर्ध्वता होती है। अभी आत्मा जाननेमें नहीं आया है परन्तु अव्यक्तरूपसे ऊर्ध्वता होती है और अनुभवमें आने पर व्यक्त—प्रगट ऊर्ध्वता होती है। ५९.

❁ लक्षणको शक्ति लगने पर रात्रिके समय रामचन्द्रजी आदि विशल्याकी कितनी आतुरता पूर्वक प्रतीक्षा करते हैं कि कब विशल्या आये! कब आयगी! उसी प्रकार इस मृतक चैतन्यको जागृत करनेके लिये ज्ञानके स्वभावको यथार्थ—जैसा है वैसा जाननेकी गहरी लालसा जागृत होनी चाहिये। ६०.

❁ मृतक कलेवरमें मूर्च्छित ऐसा अमृत-आनन्दस्वरूप आत्मा अपनी ओर दृष्टि भी नहीं डालता। अपनी ओर दृष्टि डालनेसे, सुखरूप अमृतसे भरपूर पूर्ण समुद्रको निहारते, अवलोकते, मानते और स्थिरता करनेसे तृप्ति हो ऐसी वस्तु स्वयं ही है। ६१.

❁ अरे! ऐसे चमत्कारी स्वभावकी बात स्वके लक्षसे सुने तो मिथ्यात्वका चूरा हो जाय ऐसी यह बात है। ६२.

❁ नरकके नारकीको स्वर्गके सुखकी गंध नहीं है। स्वर्गके देवको नरकके दुःखकी गंध नहीं है। रागमें धर्मकी गंध नहीं है। परमाणुमें पीड़ाकी गंध नहीं है। सूर्यमें अंधकारकी गंध नहीं है और सुखस्वभावमें संसारके दुःखकी गंध नहीं है। ६३.

❁ कहीं रुकना मत। विकल्पका किंचित् भी खटका बना रहेगा तब तक भीतर नहीं जा सकेगा। अभी युवावस्था है इसलिये पैसा कमा लूँ—यह विचार रहने दे भाई! मौतकी नौबत बज रही है। फिर करूँगा....फिर करूँगा ऐसे वायदे करना छोड़ दे। भीतर कोई विकल्प

रहेगा कि यह कर लूँ...वह कर लूँ—ऐसे वायदे करेगा तो अंतरमें नहीं पहुँच पायगा। ६४.

❁ बाह्य कार्योंमें उत्साहित नहीं होना भाई! वह तो सब क्षणभंगुर है और अनन्तबार मिल चुका है—हो चुका है। बाह्यमें सर्वस्व मान बैठा है उसे छोड़कर अनन्तगुणोंका पिण्ड आत्मा ही मेरा सर्वस्व है ऐसा मान। भगवान पूर्णानन्दका नाथ जगमग ज्योति है, उसका परिणमन हो वह जीवका जीवन है। पुण्य-पाप और उसके फलमें सर्वस्व मानता है वह असाध्य-अचेत हो गया है। इसलिये अब बाह्यमें जो सर्वस्व मान बैठा है उसे छोड़कर स्वमें सर्वस्व मान। ६५.

❁ चैतन्यके लक्ष बिना जो कुछ किया वह सब सत्यसे विपरीत होता है, सम्यग्ज्ञानरूपी कसौटी पर कसनेसे उसकी एक भी बात सच्ची नहीं निकलेगी। इसलिये जिसे आत्मामें अपूर्व धर्म करना हो वह अपनी मानी हुई पूर्वकालकी सब बातें अक्षरशः मिथ्या थीं। ऐसा समझकर ज्ञानका झुकाव बदल देना पड़ेगा। यदि अपनी पूर्व मान्यताको बनाये रखेगा और उसके साथ इन बातोंका मेल करने जायगा तो अनादिसे जो गुत्थियाँ चली आ रही हैं वे सुलझेंगी नहीं और यह अपूर्व सत्य समझनेमें नहीं आयगा। ६६.

❁ श्रोता :—आप जो बात समझा रहे हैं वह तो बराबर सत्य ही है, परन्तु उससे समाजको क्या लाभ होगा ?

पूज्य गुरुदेव :—देखो भाई! पहली बात तो यह है कि स्वयं अपना देखना है, समाजका चाहे जो हो, उसकी चिन्ता छोड़कर स्वयं अपना संभालना। बीच समुद्रमें डूब रहा हो तब समाजकी या कुटुम्बकी चिन्ता करनेको नहीं रुकता, परन्तु मैं समुद्रमें डूबने से कैसे बचूँ?—उसीका उपाय करता है। उसीप्रकार संसारसमुद्रमें गोते लगाते—लगाते बड़ी कठिनाई से मनुष्यभव प्राप्त हुआ है तब मेरा आत्महित कैसे हो, मैं संसार समुद्रमें से कैसे निकलूँ? यह देखना है। परायी चिन्तामें पड़ा रहे तो आत्महित चूक जाता है। यह तो अपना हित करनेकी बात है। प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, इसलिये समाजके दूसरे जीवोंका हित हो तभी अपना हित हो सकता है—ऐसी कोई पराधीनता नहीं है। इसलिये भाई! पहले अपने हितका उपाय कर। ६७.

❁ जिसे सच्ची श्रद्धा प्रगट हो उसका सम्पूर्ण अंतर बदल जाता है, हृदय परिवर्तन हो जाता है, भीतर उथलपुथल मच जाती है। अंधामेंसे सूझता हो जाय, अंतरकी ज्योति जल उठे, उसकी दशाकी पूरी दिशा बदल जाती है। जिसका अंतरपरिवर्तन हो जाय उसे कहीं पूछने नहीं जाना पड़ता। उसका अंतर बेधड़क पुकारते हुए साक्षी देता है कि अब हम प्रभुके मार्गमें

सम्मलित हो गये हैं। सिद्धका सन्देश आ चुका है। अब अल्पकालमें ही हम सिद्ध होकर रहेंगे। उसमें अब कोई बाधा नहीं आयगी। ६८.

❁ मैं शुद्ध हूँ, राग भी मेरा स्वरूप नहीं है—ऐसी मात्र अध्यात्मकी बात आये तो सुनने में बड़ी अच्छी लगे और वैराग्य भावनाओंके श्रवण-चिन्तनमें उपयोग न लगे—उत्साह न आये तो वह शुष्क है। अंतर-स्वभावकी ओरके ज्ञानके साथ वैराग्य भावना भी होती है। अंतरका शुद्धस्वभाव जिसकी रुचिमें आया उसे पर्यायमें राग कम होनेसे वैराग्य भावनाएँ आती हैं। ६९.

❁ आत्माकी श्रद्धामें सप्ततत्त्वोंकी श्रद्धा आ जाती है, परन्तु उस भ्रमसे कोई सामान्यरूपसे स्व-परको जानकर अथवा आत्माको जानकर कृतकृत्यपना माने तो वह भ्रम है। पुण्य-पाप, दया-दानादि विकार हेय हैं, यह जाने बिना आत्माका ज्ञान यथार्थ नहीं होता। बंधके फलको हितकर माने वह बंधको हितकारी मानता है। ऐसे कोई जीव मात्र आत्माको सामान्यरूपसे जाने और कहे कि मेरा कार्य पूर्ण हो गया, तो वह भ्रममें है। ७०.

❁ अहा! महान संत-मुनिवरोंने वनमें रहकर आत्मस्वभावका अमृत प्रवाहित किया है। आचार्यदेवो धर्मके स्तम्भ हैं, उन्होंने पवित्र धर्मको टिकाये रखकर महान आश्चर्यजनक कार्य किया है। साधकदशामें स्वरूपकी शान्तिका वेदन करते हुए परीषहों को जीतकर परम सत्को जीवंत रखा है। आचार्यदेवके कथनमें केवलज्ञानकी भनक उठ रही है। ऐसे महान शास्त्रोंकी रचना करके अनेक जीवों पर अपार उपकार किया है। रचना तो देखो! पद-पदमें कितना गम्भीर रहस्य है। यह तो सत्यकी घोषणा है। इसके संस्कार भी अपूर्व वस्तु है और इसकी प्रतीति-अनुभव तो मुक्तिका वरण करनेका श्रीफल है। जो समझेगा उसका मोक्ष ही है। ७१.

❁ भगवान तो कहते हैं कि जिसे चैतन्यकी प्रतीति नहीं है, पूर्णानन्दका नाथ अंतरमें विराजमान है उसकी जिनको श्रद्धा नहीं है वे चलते हुए मुर्दे हैं, और उनके व्रत-तपादि सब मूर्खता पूर्ण हैं और जिनको पूर्णानन्द स्वरूप भगवानकी श्रद्धा है, ज्ञान है, भान है वे संसारमें रहते हुए भी चलते-फिरते सिद्ध हैं। ७२.

❁ अहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्माके प्रदेश-प्रदेशमें आनन्दका जन्म होता है, असंख्य प्रदेश आनन्दसे उल्लसित हो उठते हैं; आनन्दका जन्मधाम निज परमात्मतत्त्व ही सम्यग्दर्शनका कारण है। ७३.

❁ आत्माको समझनेके लिये जिसके अंतरमें सच्ची उत्कण्ठा और उत्साह जागृत हो

उसे अंतरमें समझनेका मार्ग मिले बिना रहता ही नहीं। अपनी आकांक्षाके बलसे अंतरमें मार्ग बनाकर वह आत्मस्वरूपको प्राप्त करता ही है। ७४.

❁ भाई! तुझे प्राप्त करनेके लिये तेरी श्रुतज्ञानकी पर्याय ही बस है। दूसरा कुछ यह करूँ और वह करूँ यह बात ही नहीं है। यह तो बिल्कुल सीधी-सरल बात है। अंतरंग प्रेम सहित (रुचि पूर्वक) उस ज्ञानको अंतर्मुख करने पर उस पर्यायको द्रव्यका अवलम्बन मिलता है और आनन्दका स्रोत प्रवाहित होता है। ७५.

❁ यदि तू अपने चैतन्य भावका मूल्य समझ लेगा तो परका मूल्य उड़ जायगा। फिर भले ही इन्द्रका इन्द्रासन या चक्रवर्तीकी सम्पदा हो तथापि उसकी कोई गिनती नहीं रहेगी। ७६.

❁ मक्खी जैसा प्राणी भी फिटकरी पर नहीं बैठता और मिसरी पर बैठ जाय तो मिठासके कारण पंख चिपककर टूट जायँ तब भी उड़ता नहीं है। वैसे ही ज्ञानीको चैतन्यानन्दके स्वादके समक्ष इन्द्र-चक्रवर्तीके भोग भी दुर्गंध युक्त सड़े हुए मुर्दों जैसे लगते हैं। इसलिये विषयोंको आकुलताका कारण जानकर फिटकरीकी भाँति विषय-वासनामें चिपकते नहीं हैं और मिसरीकी मिठासकी भाँति अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे उखड़ते नहीं हैं। ७७.

❁ अन्याय से उपार्जित लक्ष्मी, अपहरण करके लायी हुई स्त्रीकी भाँति दीर्घ काल तक नहीं टिकेगी। पतिके गुणोंसे—प्रेमसे आकर्षित स्त्री सदा बनी रहती है; उसीप्रकार न्यायसे उपार्जित लक्ष्मी दीर्घकाल तक बनी रहेगी। नीति वस्त्रोंके समान है तो धर्म वह गहनोंके समान है। वस्त्रोंके बिना गहने शोभा नहीं देते, वैसे ही नीतिके बिना धर्म शोभा नहीं देता। ७८.

❁ स्ववीर्यका स्फूर्तिमय उल्लास इतनी शीघ्रतासे प्रगट कर कि यथार्थ स्वरूप प्रगट हो जाय। आत्माका स्वरूप प्रगट करनेमें एक समयमात्रका भी प्रमाद मत कर। अहाहा! ऐसा अवसर बारम्बार नहीं मिलेगा, इसलिये शीघ्रता से प्राप्त कर ले। ७९.

❁ अनन्तकालसे यह जीव कषायके वेगमें दौड़ रहा है, फिर भी उसे थकान नहीं लगती। यदि थकान लगे तो उसे अकुलाहट हो और अकुलाहट हो तो वह दूर भी हो जाय। ८०.

❁ अज्ञानी तो जीनेके लक्षसे जी रहे हैं इसलिये उन्हें मरना अच्छा नहीं लगता। मृत्यु आने पर भी उनको जीनेका लक्ष बना रहता है। ज्ञानी तो मरने के लक्षसे ही जीते हैं, इसलिये पहले से परीक्षा और प्रयोग तैयार कर रखे हैं; फिर वे मृत्युका आनन्दसे स्वीकार कर लेते हैं; उनको मृत्युके अन्तिम क्षण महोत्सवके रूपमें होते हैं, इसलिये आनन्दपूर्वक शरीरका त्याग

करते हैं। जीनेके भावसे तो अनन्तवार जिया, परन्तु मरनेके भावसे कभी नहीं जिया। मरनेके भावसे जिये तो उसे पुनः जन्म ही न लेना पड़े। ८१.

❁ जिसे जहाँ प्रेम लगता है वहाँ वह झुक जाता है, अर्पित हो जाता है। जिसको मनुष्यपनेमें आत्मा....आत्माका प्रेम लगा है उसे आत्मा प्राप्त होगा ही। जिसने आत्माको जाना है उसने आत्मभावको मुख्य किया है उसे अन्य कुछ भी त्रिकालमें मुख्य नहीं होगा। अब उसे कोई चौदह ब्रह्माण्डमें विघ्न करने वाला नहीं है। जिसने अपने आत्मजीवनको मुख्य किया उसे अब तीनकालमें वह जीवन ही प्रथम (मुख्य) रहनेवाला है। ८२.

❁ जिसने अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव किया है उसे आहारके बिना भी अलौकिक आनन्द आता है। उसे संसार और शरीरको छोड़ना वह तो सामान्य बात है। ८३.

❁ पंचपरमेष्ठीके प्रेमकी अपेक्षा यदि इस शरीर पर भी प्रेम बढ़ जाये तो वह अनन्तानुबंधी लोभ है। ८४.

❁ ज्ञानी कहते हैं कि फिर करेंगे, फिर करेंगे—ऐसा अभ्यास (वायदा) जिसने कर रखा है उसे मरणके समय भी पीछे ही रहना है; क्योंकि जिसने फिर....फिरका सिद्धान्त बना रखा है उसे फिर-फिरमें अभी करूँ ऐसा नहीं आयगा। ज्ञानीको तो ऐसा लगता है कि यह शरीर छूटते समय बहुत जोर लगेगा; तो उसमें जितना जोर लगेगा उतना ही जोर सामने आत्माका भी होना चाहिये। इसलिये ज्ञानीको ऐसा लगता है कि अपने भावको इसी क्षण तैयार कर लूँ, इसी पल तैयार कर लूँ। “इसी पल तैयार कर लूँ” ऐसा जिसने अभ्यास किया होगा उसे मरणके समय “यह पल ही” आ जायगा। ८५.

❁ देव-गुरु और धर्मकी जो भावना है उस भावनाको काल नहीं होता क्योंकि परमात्मपदको जैसे काल नहीं होता वैसे ही उसकी भावनाको भी काल नहीं होता। भावना भाते-भाते ऐसा नहीं लगता कि मैं अनेक वर्षोंसे भावना भाता हूँ तथापि फल क्यों नहीं दिखता? ऐसी आकुलता नहीं होती। आकुलता है वह कषाय है और ऐसी आकुलता हो वहाँ तो आत्मभाव दूर होता जाता है। और जो आकुलता है वह अपनी भावनाको निर्बल बना देती है तथा उसमें सन्देह हो जाता है इसलिये अपनी सच्ची भावनाको भी मिथ्या बना देती है, इसलिये भावनाको कोई काल नहीं होता। भावना भी वस्तुस्वरूप है। यदि तेरी भावना सच्ची होगी तो तेरा आत्मभाव तुझे मिलेगा ही। जितना कारण दे उतना कार्य अवश्य मिलता ही है। ८६.

❁ अंतर्गतके प्रमाणसे जिसने वस्तुको माना होगा, पोषण किया होगा उसे इन्द्र उतरकर डिगाने आयें तथापि वह डिगेगा नहीं। ८७.

❁ सांसारिक प्रेमका लक्ष हो और अपने पास से ही बाजे बजते हुए निकल जायें तो उनका ध्यान नहीं रहता,....फिर आत्माके लक्षसे सारे जगतको भूल जाय उसमें क्या आश्चर्य!! ८८.

❁ आकुलतायुक्त सुखसे भी जगतकी व्याधि भूल जाते हैं तो अनाकुलतायुक्त सुखसे जगतको क्यों नहीं भूल जायगा? अर्थात् आत्माके सच्चे सुख द्वारा संसारके चाहे जैसे घोर दुःख भी भूल जाते हैं। ८९.

❁ प्रतिदिन रोटी खाने पर भी अरुचि नहीं होती, उसी प्रकार बारम्बार ज्ञानका कथन करने, श्रवण करने पर भी अरुचि नहीं होना चाहिये। ९०.

❁ अंतरके आत्मधर्मकी रीति तो चक्रवर्ती और भिखारी दोनोंको एक समान होती है। धर्म और मरणकी रीति सबके लिये एक ही प्रकारकी होती है। ९१.

❁ सांसारिक प्रेम कम किये बिना परमेष्ठीके हृदयमें, उनके अंतरंगमें क्या है?— वह समझमें नहीं आता। इसलिये परमेष्ठीका स्वरूप जाननेके लिये जगतका प्रेम घटाना चाहिये। ९२.

❁ दर्शनमोह मन्द किये बिना वस्तुस्वभावकी समझ नहीं होती और उसका अभाव किये बिना आत्मा अनुभवमें आये ऐसा नहीं है। ९३.

❁ एक गाँवमें अकाल पड़ने पर गरीब लोग भूखके मारे राजाके पास गये कि महाराज! हम भूखसे मर रहे हैं, हमारे पास अनाज नहीं है। तब राजाने कहा कि अनाज न हो तो खाजा खाओ! तब गरीब लोगोंने कहा कि जब अनाज भी नहीं है तो खाजा कहाँसे होंगे? परन्तु यहाँ तो सबके पास खाजा पड़े हैं, नहीं है ऐसा नहीं है। भाई! तुम्हारे अंतरकी शक्तिमें अतीन्द्रिय आनन्दके खाजा अर्थात् खजाने भरे पड़े हैं; उधर दृष्टि डालो इतनी देर है। ९४.

❁ आत्माको प्राप्त करनेके लिये उसके पीछे पड़ना चाहिये, उसका रटन करना चाहिये। जागते-सोते उसका प्रयत्न होना चाहिये, उसकी रुचिका प्रकार यथार्थ होना चाहिये। अंतरमें कितना महान परमेश्वर विराजमान है उसे देखनेकी उत्कंठा हो तो देखे बिना चैन नहीं पड़ेगा। ९५.

❁ सर्वज्ञो, संतों और शास्त्रों पुकार करते हुए कहते हैं कि सर्व प्रथम आत्माको जानो, उसका अनुभव करो, उसके बिना एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाओगे। आत्माका परमार्थ स्वरूप बतलानेके लिये सीधी बात की है कि सर्वप्रथम आत्माको जानकर उसका अनुभव करो। समयसारकी पांचवीं गाथामें भी कहा है कि मैं कहता हूँ उसका अनुभव करके प्रमाण करना। ९६.

❁ एक ओर आनन्दधाम प्रभु अंतरमें विराजता है और दूसरी ओर संसारके मृगजल जैसे विषय हैं। अपने हित को विचार कर जहाँ रुचे वहाँ जा! ९७.

❁ जैसे किसीको एकवार कोई भयंकर वेदना आगई हो और पुनः वैसी ही वेदना होगी ऐसा कोई चिह्न दिखायी दे तो वह काँप उठता है और भयभीत हो जाता है; जैसे ही चौरासीके अवतारोंमें दुःखका स्मरण करके जीव भयसे काँप उठता है। ९८.

❁ इस वस्तुको प्रयोगमें लाने के लिये मूल से ही पुरुषार्थ उल्लसित होना चाहिये कि अहा! मैं इतना महान पदार्थ!—इसप्रकार निरालम्बनरूपसे बिना किसी आधारके स्वयं से विचारकी धुन चलते-चलते ऐसा रसास्वाद होता है कि बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। अभी हैं तो विकल्प, परन्तु ऐसा लगता है कि यह मैं....यह मैं—ऐसे मंथनका जोर चलते-चलते वह विकल्प भी छूटकर अंतरोन्मुख हो जाता है। ९९.

❁ सिर काटनेवाला या कण्ठ छेदनेवाला अपना जितना अहित नहीं करता उतना अहित अपना विपरीत अभिप्राय करता है। जगतको अपने विपरीत अभिप्रायकी भयंकरता भासित नहीं होती। १००.

❁ आत्मा दैवी शक्तियोंसे भरा हुआ देव है। यह आत्मा ही देवाधिदेव है। उसके अंतरसे आनन्दका स्वाद आने पर इन्द्रका सुख भी घूरे (कचरेके ढेर) जैसा लगता है। १०१.

❁ देवरानी-जेठानी आदिको अलग होना हो तब पहले से एक-दूसरेको बुरा बोलने लगती हैं, वह उनके अलग होनेके लक्षण हैं। जैसे ही ज्ञान और रागके बीच भेदज्ञान होने का यह लक्षण है कि ज्ञान में रागके प्रति तीव्र अनादरभाव जागृत होता है, वह ज्ञान और रागके बीच भेदज्ञान होनेका लक्षण है। आत्मामें रागकी गंध नहीं है, रागके जितने विकल्प उठते हैं उनमें जलन हैं; उनमें दुःख दुःख और दुःख है—विष है—ऐसा प्रथम ज्ञानमें निर्णय करे तब भेदज्ञान प्रगट होता है। १०२.

❁ दिगम्बर संतोंके शास्त्र अर्थात् चैतन्य चिन्तामणिको दिखानेवाले विशाल शिलापट! परसे हट और स्वभावसन्मुख जा! यही शास्त्रोंका कथन है। १०३.

❁ जैसे शकरकन्द अग्निमें सिक जाता है वैसे ही आत्मा विषय-वासना में सिक जाता है, परन्तु उसकी खबर नहीं है इसलिये सुख मानता है। १०४.

❁ अपने पीछे विकराल शेर झपटने के लिये दौड़ता आ रहा हो तो स्वयं कैसी दौड़ लगाता है! क्या वह आरामके लिये खड़ा रहेगा? वैसे ही यह काल झपट्टा मारने के लिये दौड़ता आ रहा है और अंतरमें कार्य बहुत करना है ऐसा उसे लगना चाहिये। १०५.

❁ भाई, तुझे बहुत पुरुषार्थ करना शेष है। हरिहरादि भी पिछड़ गये, पूरा पुरुषार्थ नहीं कर सके, तुझे तो प्रारम्भ करना है। तुझे भगवानके घर पहुँचना है इसलिये तीव्र पुरुषार्थकी आवश्यकता है। १०६.

❁ जैसा वस्तुस्वभाव है वैसा ज्ञान करना होगा, उसके बिना वस्तु उत्तर नहीं देगी। यह कोई अंधेर नगरी (पोपावाईका राज्य) नहीं है। १०७.

❁ सत्यकी बात समझनेमें लगे रहना वह भी एक पुरुषार्थ है। १०८.

❁ जितने परमात्मा हुए वे सब अंतरसे निकले हैं। आत्मा स्वयं ही परमात्माका गर्भ है, उसीमेंसे सब परमात्मा होते हैं। १०९.

❁ आत्माकी शोभा पर जिसकी दृष्टि जाती है उसे संसार के सभी सुख सड़े हुए कुत्ते और बिल्लीकी दुर्गंध जैसे दुर्गंधमय लगते हैं। ११०.

❁ भाई तेरी दृष्टि आकर्षित हो ऐसी कोई बाह्यवस्तु जगतमें नहीं है, तेरे लिए तो तू ही एक आकर्षणका केन्द्र है। १११.

❁ भाई! तू शरीरके सामने मत देख! तेरे विकल्प व्यर्थ जाते हैं और आत्माका कार्य भी नहीं होता। शरीर तो दगा देगा, इसलिये अपने आत्माका करना है वह कर ले। ११२.

❁ परसत्तावलम्बी तत्त्वोंको ग्रहण करनेका अभिमान, उनको त्यागने का अभिमान वह अभिमान ही मिथ्यात्व है, और वह सप्त व्यसनके पापकी अपेक्षा महान पापरूप है। ११३.

❁ कोई भी जीव अपने अस्तित्वके बिना क्रोधादि होने के समय यह नहीं जान सकता कि यह क्रोधादि हैं। अपनी विद्यमानतामें ही वे क्रोधादि ज्ञात होते हैं। रागादिको जानते हुए

ज्ञान....ज्ञान ऐसा मुख्यरूपसे....ज्ञात होने पर भी ज्ञान सो मैं ऐसा न मानकर, ज्ञानमें ज्ञात होनेवाले रागादि सो मैं इस प्रकार रागमें एकत्वबुद्धि से जानता है-मानता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। ११४.

❀ एक समयका भूला हुआ भगवान दूसरे समयमें भूल को छोड़कर भगवान हो सकता है। कलका लकड़हारा आज केवलज्ञानी हो जाय ऐसी घटनाएँ अच्छे कालमें दिखायी देती थी। ११५.

❀ जिनवाणीका महान लक्षण तो यह है कि राग और निमित्तकी बिल्कुल उपेक्षा कराये। लाख बातकी बात तो यह है कि आत्मा वीतराग स्वरूप है, जिन स्वरूप है, उसका आश्रय करने से संसारका अंत आता है। ११६.

❀ सुनते समय तो उसे आत्माका स्वरूप स्पष्ट लगता है, तथापि उसका भ्रमजाल बना रहता है, उसका कारण यह है कि उसने ज्ञानकी गहरी नींव डाली ही नहीं है। ११७.

❀ तीन लोकका नाथ भीतर विराजमान है उसकी उसे खबर नहीं है और बाह्य पदार्थोंका मूल्यांकन करते हुए अपने सामर्थ्यका मूल्य भूल गया है। ११८.

❀ प्रथम चारित्रदोष टालनेका प्रयत्न करता है उसकी अपेक्षा प्रथम दर्शनशुद्धि का प्रयत्न कर, तो भीतर जानेका मार्ग निकलेगा। ११९.

❀ अपने हाथका हथियार यदि अपना ही गला काटे तो वह हथियार किस कामका? वैसे ही जो विद्या-ज्ञान अपने आत्माको संसार-भ्रमण कराये वह विद्या-ज्ञान किस कामके? जो विद्या-ज्ञान संसार दुःखसे मुक्त कराये वही सच्ची विद्या और सच्चा ज्ञान है। १२०.

❀ अज्ञानी स्वयं अपनेको टगता है और मानता है कि हम लाभमें हैं, इस प्रकार जगत अनादि से टगा जा रहा है। १२१.

❀ वर्तमानमें किंचित् एक प्रतिकूलता आये तो उससे सहन नहीं होती, परन्तु भविष्यमें अनन्तगुनी प्रतिकूलताएँ आये ऐसे भावोंसे छूटनेकी उसे परवाह नहीं है। १२२.

❀ मूलवस्तु-ध्रुववस्तु इतनी सूक्ष्म है कि वह सूक्ष्म वस्तु उसके हाथमें आ जाय तो बस! उसके तो मानों अमृतकी वर्षा हो गई। १२३.

❀ स्मशानमें फूले हुए मुर्दे पड़े हों उसमें काले कौओं को आनन्द लगता है, उसी

प्रकार यह हृष्ट-पुष्ट दिखनेवाले शरीर फूले हुए मुर्दे हैं उनमें जो सुख-आनन्द मानते हैं वे सब काले कौओं के समान हैं। १२४.

❁ शास्त्रमें आता है कि इस शरीरमें ५,६८,९९,५८४ रोग भरे हैं। शरीर तो रोगोंकी मूर्ति है। भगवान आत्मा आनन्दकी मूर्ति है। परन्तु मृतक कलेवरमें अमृतका सागर भगवान मूर्च्छित हो रहा है। भाई! एकवार तू अपनेको देख! दूसरोंको देखनेमें अंध हो जा और अपने को हजार आँखोंसे देख। १२५.

❁ यह जीव लकड़ीके, लोहेके, अग्निके, जलके, बिजलीके स्वभावका विश्वास करता है; दवाकी गोलियोंका विश्वास करता है। जिनसे परमें कुछ नहीं होता फिर भी उनका विश्वास करता है, तब जिसमें एक आश्चर्यजनक ज्ञानशक्ति है ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियोंमें व्यापक भगवान आत्मा अचिन्त्य शक्ति सामर्थ्यवान है, उसका विश्वास करे तो भवभ्रमण मिट जाय। १२६.

❁ हाथमें लकड़ी रखकर शरीरका स्पर्श करनेसे ठण्डे-गर्मका ख्याल नहीं आता और बढ़े हुए नाखून से भी शरीर की शीतलता या उष्णताका पता नहीं चलता, क्योंकि वह शरीरका अंग नहीं है। वैसे ही लकड़ी समान जड़ इन्द्रियोंसे या नाखून जैसे शुभरागसे भी आत्मा ख्यालमें नहीं आता परन्तु ज्ञानका क्षयोपशम वह आत्माका अंग है, उस ज्ञानको आत्मोन्मुख करनेसे आत्माकी प्रतीति होती है। १२७.

❁ अनेक बाह्य ज्ञेय देखनेकी उसे ऐसी आदत पड़ गई है कि जिससे उसे एकरूप स्वज्ञेयमें आना भाररूप लगता है—कठिन लगता है। बाह्य अनेक ज्ञेयोंमें उसे भरा-भरा लगता है और एकरूप स्वज्ञेयमें (अंतरमें) जाना उसको खाली-खाली जैसा लगता है; परन्तु वास्तवमें बाहरके अनेक ज्ञेयों तो रीते-रीते हैं, एक स्वज्ञेयमें ही भरा-भरा है। अनन्त ज्ञेयोंको जानते हुए एक का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। एक स्वज्ञेयको जानते हुए अनन्त ज्ञेयोंका ज्ञान सच्चा होता है। १२८.

❁ हे प्रभु! आपने चैतन्यके अनंत भण्डार खोल दिये हैं! तो अब ऐसा कौन होगा कि तृण समान चक्रवर्तीके राज्यको छोड़कर चैतन्यके भण्डारको खोलनेके लिये नहीं निकल पड़ेगा। १२९.

❁ समेट....समेट....समेट, बाहरकी दृष्टिको समेट ले? तेरी सम्पत्ति, तेरा भण्डार तेरे

ही भीतर भरे पड़े हैं,.....अंतरमें दृष्टि कर! वहाँ सुधारस झर रहा है.....टपक रहा है, वहाँ दृष्टि लगा? १३०.

❁ अरे प्रभु! तू तो अमृतकुण्डमें अवगाहन करनेवाला आत्मा, तू चमारकी कुण्डी समान मृतक-कलेवर और पुण्यादि को 'मेरे-मेरे' मानकर उनमें मूर्च्छित हो गया! १३१.

❁ अहा! समयसार! वह तो अशरीरी वस्तु है, अशरीरीपना प्रगट करती है। उसकी धुन चढ़ने पर देह और आत्मा दोनों पदार्थ अलग हो जाते हैं पृथक् अनुभवमें आते हैं। १३२.

❁ दुनियाके लोग कहते हैं कि भला-बुरा समय आयेगा तो बड़ोंकी शरण लेकर समय व्यतीत कर लेंगे। वैसे ही अंतरमें महान भगवान विराजता है, उसकी ओट (आश्रय) लेकर संसारसे पार उतरते हैं। १३३.

❁ पराश्रित जीवसे ऐसा कहें कि परसे तुझे लाभ होगा; तुझे गुरुसे, भगवानकी भक्तिसे लाभ होगा, तो वह बात उसे बैठ जाती है; परन्तु स्वयं प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनन्त शक्तियोंसे भरपूर भगवान है—यह बैठना कठिन लगता है। १३४.

❁ दुनियाको भूलकर अपनी अतीन्द्रिय चैतन्यगुफामें उतर जा, तो वहाँ मात्र सुख ही भरा है। तेरा स्वरूप सुखका ही धाम है। १३५.

❁ ज्ञानकी अचिन्त्य महिमाका चिन्तन संसारके सर्व क्लेशको भुला देता है। अहो! यह बात समझकर स्वयं अपने अंतरमें उतरने जैसा है। स्वयं अपना हित करनेके लिये यह बात है। १३६.

❁ परमें से सुख लेनेकी बुद्धिवाले देव स्वर्गमें भी दुःखी हैं। और अपनेमें से सुख लेनेकी बुद्धिवाला नारकी नरकमें भी सुखी है। १३७.

❁ हे भव्य! तेरे चैतन्यस्वभावकी आशातना न हो और आराधना हो ऐसा कर। १३८.

❁ सत्स्वरूपका सत्य निरूपण भी जिसे सुननेको मिलता है वह महा भाग्यशाली है। सत्श्रवण-मननसे रहित जीवन पशुके समान है। १३९.

❁ जैनधर्ममें भगवान महावीरने स्व और परकी भिन्नताके मूलमंत्र दिये हैं। स्व और परकी भिन्नता भासित होना ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है। १४०.

❁ जैनदर्शन वह वेष या सम्प्रदाय नहीं है। प्रत्येक जीवकी शक्ति परमात्मस्वरूप है—

ऐसा बतलानेवाले धर्मको जैनदर्शन कहो, विश्वदर्शन कहो, वस्तुदर्शन कहो या आत्मदर्शन कहो—सब एक ही है। १४१.

❁ करोड़ों-करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी अपेक्षा अनन्तगुना प्रकाश ज्ञानभानुका है। करोड़ों-करोड़ों चन्द्रकी शीतलताकी अपेक्षा अनन्तगुनी शीतलता चैतन्यचन्द्रकी है। करोड़ों-करोड़ों सागरकी गम्भीरताकी अपेक्षा अनन्तगुनी गम्भीरता आत्मामें है। आकाशके अनन्तानन्त प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुने गुण आत्मामें हैं। १४२.

❁ देहरूपी मन्दिरमें जिनस्वरूप आत्मा बिराजमान है। उसका विश्वास लानेसे पर्यायमें प्रगट जिन होता है। १४३.

❁ चक्रवर्तीकी सम्पदाकी अपेक्षा भी जिसका एक समय बहुमूल्य है, ऐसा यह अति दुर्लभ मनुष्यभव अनंत भवभ्रमणके अभावके लिये है। १४४.

❁ अरबपति मनुष्य अपने जेबमें पाँच-पच्चीस रुपये लेकर साग भाजी खरीदने निकला; उसे उतने ही धनवाला माने तो उसने अरबपतिको पहिचाना ही नहीं। वैसे ही जो आत्माको वर्तमान अल्पज्ञता एवं अल्प वीर्यवाला मानता है उसने आत्माको पहिचाना ही नहीं है; आत्माकी त्रैकालिक ध्रुवसत्ताका स्वीकार करे उसीने ही आत्माको पहिचाना है। १४५.

❁ जो बारम्बार निर्विकल्प आत्मा, निर्विकल्प आत्मा ऐसा श्रवण करता है उसका अर्थ है कि वह उसे रुचता है। अंतरमें विपरीत मान्यता पर संस्कारके घन पड़ते हैं वह निर्विकल्प होगा ही। शास्त्रमें कहा है न कि—सम्यग्दर्शनके ध्यानसे सम्यग्दर्शन होता है। १४६.

❁ दूसरेके साथ लड़ना, जीतना और उस वराकाको अपमानित करना वह कायरका काम है, आत्मामें उतरना वह शूरवीरता है। १४७.

❁ सम्यग्दर्शन करनेके लिये बारम्बार इसीकी ही इसीकी स्वाध्याय, मंथन और विचार करना चाहिये। इसीकी बारम्बार स्वाध्याय करनेसे निर्णय होता है और निर्णय होनेसे सम्यग्दर्शन होता है। १४८.

❁ सम्यग्दर्शन हुआ इसलिये अनन्तानन्त करोड़ रुपयोंका देना चुक गया, मात्र आधे रुपयेका देना बाकी रहता है। १४९.

❁ अरे! उसने चैतन्य पर दोषारोपण किया है इसलिये परमेश्वरको परिभ्रमण हुआ, उसकी प्रभुता नष्ट हो गई! १५०.

❁ अहो! शरीर, संसार और भोगोंसे सावधान रहने जैसा है। १५१.

❁ बाहरकी विपदा वह वास्तवमें विपदा नहीं है; बाहरकी सम्पदा वह वास्तवमें सम्पदा नहीं है। चैतन्यका विस्मरण महान विपदा है और चैतन्यका स्मरण वह ही सच्ची सम्पदा है। १५२.

❁ एक अज्ञानी लड़की गोबरका चौथ मिलनेसे जितनी आनन्दित होती है वैसा आनन्द धर्मात्माको छह खण्डकी ऋद्धि मिलनेपर भी अंतरमें नहीं होता; और उस लड़कीको गोबरके चौथमें जितनी ममता है उतनी ममता धर्मात्माको छह खण्डकी ऋद्धिमें भी नहीं होती। ज्ञानीकी दशाका ऐसा आश्चर्यकारी स्वरूप है। उसे धर्मी जीव ही समझ सकते हैं। १५३.

❁ शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे रहित अनुभव कर लेना वही शान्ति है, अन्य कोई शान्ति नहीं है। १५४.

❁ अहा! केवलज्ञान प्राप्त करनेमें कितना धैर्य!! कितना धैर्य, क्षमा और समता हो तब केवलज्ञान होता है। निचली दशामें भी कितना निश्चित होता है! द्रव्यको प्राप्त करनेमें कितना धैर्य चाहिये तब प्राप्त कर सकता है। बाहरसे बहरा, बाहरसे गूंगा और बाहरसे अंधा हो जाता है। १५५.

❁ जिनस्वरूपकी बात सुनते हुए भी वीरता (पुरुषार्थ) जागृत होती है, तो उसको सँभालते हुए कितनी वीरता जगेगी! मामाके घर विवाह और माँ परोसनेवाली, फिर बाकी क्या रहेगा? वैसे ही यहाँ सत्य परोसा जा रहा है। १५६.

❁ आत्माके विकल्प सहित साधारण महिमा आये उसे महिमा नहीं कहते। अंतरसे रुचे तो वीर्य उल्लसित हो; परन्तु वह कहाँ उछलता है? सामान्य धारणा और माहात्म्य तो अनन्तवार आया, परन्तु सच्चा माहात्म्य अंतरसे आना चाहिये, वही तो बाकी रह गया है! पहले माहात्म्य आता है और फिर उसकी उग्रता होने पर एकाग्रता होती है। १५७.

❁ किसीको फाँसीकी सजा हुई हो तो जब उसे फाँसी घरमें ले जायँ तब कैसे थर-थर काँपने लगता है? वैसे ही जो सांसारिक दुःखोंसे अत्यंत भयभीत हो गया हो उसके लिये यह बात है। १५८.

❁ आत्मानुभवके बिना सब शून्य है। लाखों कषायकी मन्दता करे अथवा लाखों शास्त्र पढ़ ले, परन्तु अनुभवके बिना सब शून्य है। और कुछ न आता हो तथापि अनुभव हुआ

तो सब कुछ आता है। भले ही उसे जवाब देना नहीं आता हो परन्तु केवलज्ञान प्राप्त करेगा। १५९.

❁ थोड़ा परन्तु सत्य ग्रहण किया हो तो उतनेमें भी केवलज्ञान प्रगट करनेकी शक्ति है, और थोड़ा भी विपरीत ग्रहण कर ले तो उसमें अनन्त निगोदके भव करनेकी शक्ति है। १६०.

❁ जैसे आकाशमें अग्निकी ज्वालाएँ जल रही हों, फिर भी आकाशका उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही शरीरमें चाहे जैसे फोड़े हो—चाहे जैसी दशा हो तथापि आकाशके समान आत्माको उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। १६१.

❁ जैसे एक बड़ा तपेला पूरा पानीसे भरा हो, उसमें उसीके मापका लकड़ीका टुकड़ा डालनेसे पानी बाहर निकल जाता है, वैसे ही आत्मामें सिद्धोंकी स्थापना करने पर आत्मासे सम्पूर्ण विकार निकल जाता है। १६२.

❁ जितनी सर्वोत्तम, अत्यन्त विशेष महिमावान वस्तुएँ हैं वे आत्मामें नहीं होंगी तो अन्यत्र कहाँ होंगी? आत्मामें ही वह सब कुछ भरा है। आत्मा ही चन्द्र, आत्मा ही सूर्य है, आत्मा ही अतीन्द्रिय जगतचक्षु है। १६३.

❁ स्त्री, कुटुम्ब, परिवारादि तो आत्माके शत्रु जो कर्म उसके द्वारा रचे गये षडयंत्र हैं। उन्हें अपना मानना ही संसारका बीज है। पुण्य-पाप और उनके फल तो आत्माके शत्रु-कर्म द्वारा रचा गया षडयंत्र है। १६४.

❁ पात्र होना कठिन है। बातें करना सीख जाय और मान ले कि मैं समझ गया तो वह बराबर नहीं है भाई! समझना बहुत दुष्कर है। कितनी पात्रता, कितनी सज्जनता, कितनी योग्यता हो तब वह समझनेके योग्य होता है। १६५.

❁ जितने विकल्प उठते हैं उन सबमें कोई विशेषता नहीं है। वे सब तो दुःखके पंथ हैं; सब विकल्प हैरान करनेवाले हैं—ऐसा निर्णय हो तो आत्माकी ओर प्रयाण करे। १६६.

❁ अहा! जिसके आनन्दके क्षणभरके रसास्वादनमें तीनों लोकके सुख विष समान भासित हों, तृण समान तुच्छ लगें, ऐसा भगवान आत्मा है! १६७.

❁ केवली भी जिसका कथन नहीं कर सके वह वस्तु कैसी है, उसको अंतरमें प्रयत्न करके एकवार देखे तो सही कि वह क्या वस्तु है?—जिसकी ज्ञानपर्याय एकक्षणमें अनन्त

केवलियोंको देख लेती है और जिसके उदरमें केवलज्ञानकी अनन्त पर्यायें विद्यमान हैं। १६८.

❀ मनुष्य पर्यायका एक-एक क्षण विशाल कौस्तुभमणिसे भी मूल्यवान है। इसी पर्यायमें चौरासीकी खानमेंसे निकल जाना है। एक क्षण करोड़ों-अरबों रुपयोंसे अधिक मूल्यवान है। चक्रवर्तीके छह खण्डके राज्यसे भी एक समय थोड़े ही मिलता है? इसमें (मनुष्यपर्यायमें) यह एक ही कार्य करने योग्य है। १६९.

❀ उसे काल अल्प है और कार्य बहुत करना है। १७०.

❀ अहो! कठिन कार्य है भाई! अंतरमें वैराग्य! वैराग्य! यह सब बिखर जायगा। बाहरका तुझमें है नहीं और तेरे लिये आया नहीं है। तुझमें तो भ्रमणा आयी है, उसको नष्ट करनेका यह अवसर है। १७१.

❀ राग होने पर भी साधकके हृदयमें सिद्ध भगवान उत्कीर्ण हैं। १७२.

❀ हमें अपना करना चाहिये, शरीरका जो होना हो सो होगा। १७३.

❀ यह आत्मा आनन्दकी मूर्ति है, आत्माके भीतर आनन्द ही भरा है। उसकी बात सुनना वह मांगलिक है....उसकी बात सुननेके लिये स्वर्गमेंसे इन्द्र भी नीचे उतरते हैं। १७४.

❀ कागज पर बने हुए दीपक घासको नहीं जलाते, वैसे ही मात्र शास्त्रके ज्ञानसे संसार नहीं जलता। १७५.

❀ अशुभ उपयोग वह सीधा अग्निके समान जलानेवाला है और शुभ उपयोग वह गर्म घी के समान जलाता है। दोनों उपयोग हैं तो जलानेवाले ही। १७६.

❀ संक्षेपमें तो ऐसा है कि तेरे ध्रुवस्वरूपमें आनन्द भरा है, उसमें दृष्टि लगा। आकुलता होती है परन्तु वस्तु तो अनाकुलता स्वरूप है, उसमें दृष्टि लगा। लाख बातकी एक बात है.....अधिक कौन पढ़े.....यह बात है। १७७.

❀ तिर्यचको सम्यक्त्व होता है। किसीने पूर्वभवमें सुना हो कि आत्मा शुद्ध है वह सुना हुआ स्मरणमें आता है और फिर विचारमें उतरता है। फिर जिस प्रकार विजली ऊपरसे नीचे उतर जाती है वैसे ही वीर्य अंतरमें उतर जाता है। बस, करना तो इतना ही है, फिर उसमें स्थिर होना है। १७८.

❀ अहो! हमने अनन्तकालमें यह बात नहीं सुनी है—इसप्रकार प्रसन्न चित्तसे

ज्ञानस्वभावकी यह बात अंतरसे सुने, रुचि पलट कर सुने उसकी मुक्ति भविष्यमें होनी ही है। उसका पक्ष पक्का हो गया है, वह बदल ही नहीं सकता। वह अवश्य मोक्षमें जायगा। उसे तो यह काल और यह योग ही विशेष भासित होता है। नववीं ग्रैवेयकवालेने प्रसन्नतासे इस प्रकार तत्त्वकी बातका श्रवण ही नहीं किया था, क्योंकि उसकी दृष्टि पुण्य पर थी। यह तो अनन्तकालमें नहीं सुनी ऐसी अपूर्वतासे तत्त्वकी बात सुनता है उसकी बात है। १७९.

❁ राजाको एक रानी होती है, किसीके हजार होती हैं, किसीको छियानवे हजार होती हैं, परन्तु वहाँ मर्यादा आगयी। भगवान आत्माके अनन्ती पट्टरानियाँ हैं यह तो एक ही क्षेत्रमें और कहीं जायँगी नहीं। इन्द्रके करोड़ों इन्द्रानियाँ भी अमुक काल रहकर चली जाती हैं; इस भगवान आत्माके तो अनन्ती पट्टरानियाँ सादि-अनन्तकाल आनन्दका भोग कराती हैं। १८०.

❁ कर्मका अस्तित्व होने पर भी, विकारका अस्तित्व होने पर भी, अल्पज्ञताका अस्तित्व होने पर भी जिसका दृष्टिमें निषेध हो गया। विद्यमान को अविद्यमान किया और भगवान पूर्णानन्द पर्यायमें अविद्यमान, अप्रगट होनेपर भी श्रद्धा-ज्ञानमें उसे विद्यमान—प्रगट किया उसका नाम ही अमल है (-सम्यग्दर्शन है)। १८१.

❁ जैन अर्थात् जो अंतरमें उतर जाय वह जैन है। जितने बाहरी उद्वेग आयें वह तो प्रकृतिके स्वाँग हैं; विकल्प उठें वह भी प्रकृतिकी चेष्टा हैं और बाहर जो होता रहता है वह सब पुद्गल-परावर्तन अनुसार होता ही रहता है। १८२.

❁ जिसने बाह्यमें कहीं रागमें, संयोगमें, क्षेत्रमें—इसप्रकार कहीं न कहीं किसी द्रव्यमें, क्षेत्रमें, कालमें—यह ठीक है ऐसा मानकर वहाँ विश्राममें—ठहरनेमें काल गँवाया उसने अपने आत्माको टग लिया है। १८३.

❁ पहले समझे तो सही, स्वभावका पक्ष तो करे कि राग और निमित्तकी ओर ढलने जैसा नहीं है परन्तु स्वभावकी ओर ही ढलने जैसा है, ऐसा पक्का निर्णय तो करे। निर्णय का वज्रस्तंभ तो रोपे.....उसके बिना एक डग नहीं चला जा सकता। १८४.

❁ जैनदर्शनका एक भी सिद्धान्त भीतरसे बैठ जाये तो सारा सिद्धान्त बैठ जाये; —ऐसी ही वस्तुस्थिति है। १८५.

❁ जो बाहरी सुविधाओंको सुविधा मानता है और बाहरी असुविधाको असुविधा मानता है, वह प्रगटरूपसे भगवानको (आत्माको) शरीरस्वरूप ही मानता है। १८६.

❁ अरे, ऐसा नहीं मानना कि हम तो अनपढ़ हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम तो स्त्री हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम तो दीन-हीन हैं;—यह मान्यता ही तुम्हारे परमात्माकी शत्रु है। १८७.

❁ पैसेका ममत्व वह तो अग्निकी भट्टी सुलग रही है। यहाँ तो कहते हैं कि इन्द्रका इन्द्रासन हो वह भी हमें नहीं चाहिये, वह सड़े हुए तिनकोंके समान हैं; हमें तो अपने आत्माकी आवश्यकता है। १८८.

❁ जैसे मिठ्या के चूल्हे पर चढ़ी हुई उकलती कड़ाही में ऊपरसे गिरा हुआ सर्प आधा तो जल गया; परन्तु उस जलनसे छटपटाता हुआ बचनेकी कोशिशमें वह चूल्हे में घुस जाने से पूरेका पूरा सुलग गया! वैसे ही जगतके जीव पुण्य-पापमें तो जल ही रहे हैं और उसमें भी विशेष सुखकी लालसामें जिसमें विशेष जलन होती है ऐसे विषयोंमें कूदकर सुख मानते हैं। १९८.

❁ जिसे एक प्रतिकूलता में समाधान करना आता है तो वह अनंती प्रतिकूलताओंमें समाधान करनेके लिये शक्तिवान है। मुझमें प्रतिकूलता ही नहीं है, मैं तो आनन्दकन्द हूँ—ऐसी दृष्टि रखनेसे समाधान होता है। १९०.

❁ जिसके सिर पर जन्म-मरणके लड्ड पड़ रहे हैं और वह संयोगोंमें सन्तोष मान रहा है वह पागल है। १९१.

❁ सत्के लिये सारा जगत बिक जाओ.....चला जाओ.....परन्तु आत्माको नहीं छोड़ा जा सकता। १९२.

❁ समवसरण (जिनमन्दिर), जिनबिम्ब आदि वीतरागताका स्मरण करनेके निमित्त हैं। ऐसे जीव हैं उनके ऐसे पुण्य हैं वह सब देखकर, वर्तमान बुद्धि छूटकर त्रैकालिक बुद्धि होती है और उसी हेतु यह समवसरण जिनमन्दिरादि निमित्तो हैं। १९३.

❁ मेरुपर्वतको उठाना आसान है, परन्तु यह पुरुषार्थ प्रगट करना दुर्लभ है। इसीलिये शास्त्रमें इस पुरुषार्थको दुर्लभ कहा है। सहजस्वभाव से सुलभ है परन्तु अनादि अनभ्यासके कारण दुर्लभ है। १९४.

❁ मृत्यु होने पर भी जिसका मूल्य किया होगा वह नहीं छूटेगा। राग-द्वेष और संयोगका मूल्य किया होगा तो वह नहीं छूटेगा, आत्माका मूल्य किया होगा तो वह नहीं छूटेगा। जिसका मूल्य आया होगा वह छूटेगा नहीं। १९५.

❁ धन कमानेका काल तो मरनेका काल है। यह तो आत्माके आनन्दको कमानेका काल है उसे चूकना नहीं—गँवा मत देना। १९६.

❁ अनुकूलतावाले सब रतिमें सुलग रहे हैं; प्रतिकूलतावाले अरतिमें सुलग रहे हैं—सब राग-द्वेषमें सुलग रहे हैं, दुःखी हैं। १९७.

❁ सम्यग्दर्शन हो उसे तो पर्यायमें महा पामरता भासित होती है। सम्यग्दर्शन होने पर तो सरलता.....सरलता.....आ जाती है; मुझे बंध नहीं होता—ऐसा उसे नहीं लगता। १९८.

❁ जिसने अपने जीवनकालमें संयोगके साथ वियोगको भाया है, अनुकूलतामें भी उसके वियोगकी भावना भायी है, उसे उसके वियोगकालमें खेद नहीं होता। १९९.

❁ शरीर तो तुझे छोड़ेगा ही, परन्तु तू शरीरको (दृष्टिमें) छोड़ दे उसकी बलिहारी है.....यह तो शूरवीरोंका खेल है। २००.

❁ आत्मा महान परमेश्वर पदार्थ है। अनन्त केवलियोंको अपने उदरमें समा ले ऐसा महान पदार्थ है आत्मा! प्रगटमें भले ही न्यूनता-अल्पज्ञता हो, परन्तु अप्रगटरूपसे महान शक्ति विद्यमान है। प्रगट नहीं होनेसे उसे इतनी महान शक्ति है यह बैठता नहि। २०१.

❁ विकल्पसहित पहले पक्का निर्णय करे कि रागसे नहीं, निमित्तसे नहीं, खण्ड-खण्ड ज्ञानसे नहीं, गुण-गुणीके भेदसे भी आत्मा जाननेमें नहीं आता—इसप्रकार पहले निर्णयका पक्का स्तम्भ तो रोप दे! इससे परकी ओरका वीर्य तो वहीं रुक जाता है। भले ही अभी स्वोन्मुख होना शेष है.....विकल्पवाले निर्णयमें भी मैं विकल्पवाला नहीं—ऐसा तो पहले दृढ़ कर ले! निर्णय पक्का होने पर राग अपंग हो जाता है, उसका जोर टूट जाता है, विकल्पयुक्त निर्णयमें स्थूल विपरीतता और स्थूल कर्तृत्व छूट जाता है और पश्चात् भीतर स्वानुभवमें जानेपर निर्णय सम्यक् रूप होता है। २०२.

❁ अरे! प्रभुपदमें खतानेवाली वस्तु को उसने रंक खातेमें डाल दीं! मैं वर्तमानमें ही पूर्ण प्रभु हूँ—ऐसा एकवार तो श्रद्धामें ला! पूर्ण प्रभुरूपसे स्वीकार करने पर वह तो भगवानका पुत्र हो गया। सम्यग्दर्शन हुआ इसलिये उसमें गर्भितरूपसे केवलज्ञान ही आ गया। २०३.

❁ कोई पुरुष मूक, बधिर या अंध हो तो वह पंचेन्द्रिय नहीं ऐसा तो नहीं है। उस प्रकारका लब्धमें विकास तो उसके होता है; परन्तु उपयोगकी योग्यता नहीं है। उसी प्रकार

आत्मा वर्तमान पर्यायमें अल्पज्ञ होने पर भी शक्तिरूपसे अल्पज्ञ नहीं है; शक्तिमें तो पूर्ण सर्वज्ञ है। २०४.

❁ इस ओर परमेश्वर विद्यमान है उसकी अज्ञानीको कोई महिमा नहीं आती; उसका कोई मूल्य नहीं लगता, और इस ओर एक विकल्प उठता है वहाँ तो उसे आश्चर्य लगता है। विकल्पका अस्तित्व और माहात्म्य आता है वही मिथ्यात्व है। २०५.

❁ श्रोता :—तत्त्वका श्रवण-मनन करने पर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेव :—वास्तवमें अंतरसे रागके दुःखकी थकान नहीं लगी है इसलिये उसे विश्रामस्थल-शान्तिका स्थान हाथ नहीं आता। वास्तवमें जिसे भीतरसे दुःखकी थकान लगती है उसे अंतरमें जानेसे विश्रामका स्थान हाथ आ जाता है। सत्यकी खोज करनेवालेको सत्य नहीं मिले ऐसा नहीं होता। २०६.

❁ अज्ञानीकी भूल हो उसे जानना, परन्तु उसका तिरस्कार नहीं करना; वह भी भगवान आत्मा है न? वह बेचारा अज्ञानके कारण दुःखी है। दुःखमें जलते हुआंका तिरस्कार करना वह धर्मियोंका कार्य नहीं है। २०७.

❁ जैसे एक करवट सोते-सोते थकान लगती है तब दूसरी करवट बदलता है; वैसे ही परसे मुझे लाभ होगा, परसे मुझे सुख मिलेगा ऐसी मान्यतासे जिसे थकान लगी है वह करवट बदलता है, आत्मसन्मुख होता है। २०८.

❁ जैसे किसी छोटे बच्चेको कुत्ता काटनेके लिये आये तो वह तुरन्त वहाँसे भागकर अपने माता-पिताके पास पहुँचता है और उनसे चिपट जाता है। वैसे ही अपना आत्मा महान है, वही बड़ा आधार है, उसकी शरणमें जा। २०९.

❁ अनीतिसे जिसे एक पाई भी लेनेका भाव है उसे अनुकूलता हो तो सारी दुनियाका राज्य पचा लेनेका भाव है। एक मंत्री राज्यका काम करनेके लिये रात्रिके समय राज्यकी मोमबत्ती जलाकर काम करता था, और जब अपने घरका काम करना हो तब राज्यकी मोमबत्ती बुझाकर अपने घरकी मोमबत्ती जला लेता था। अपने घरका काम करनेके लिये राजकी मोमबत्ती नहीं जलाना। (ऐसा तो लौकिक नीतिका स्वरूप है)। २१०.

❁ कोई मनुष्य छह महीने तक बीमार रहे तो भी हाय-हाय करता है! परन्तु यह जो अनन्तकालसे मिथ्यात्वका रोग लग रहा है, उसके लिये क्यों हाहाकार नहीं करता। अरे

भाई! आत्मभ्रान्तिके समान कोई रोग नहीं है। २११.

❁ श्रोता:—यह स्वरूप लक्षमें आने पर भी प्रगट क्यों नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेव:—पुरुषार्थ चाहिये, पुरुषार्थ चाहिये। भीतर शक्ति पड़ी है उसका माहात्म्य आना चाहिये। वस्तु तो प्रगट ही है। पर्यायकी अपेक्षा वस्तु अप्रगट कही जाती है जैसे तो वह प्रगट ही है; कोई आड नहीं है। २१२.

❁ शिष्य गुरुसे बारम्बार सुनता रहता है तब वह खड़ा होता है। बारम्बार सुननेसे ज्ञानमें उसका माहात्म्य आता रहता है और तभी ही वीर्य उल्लसित होता है; इसीलिये योगसारमें उसका श्रवण आदि अनेक बोल कहे हैं। २१३.

❁ भगवान परम अमृत स्वरूप है, परन्तु मृतककलेवरमें मूर्च्छित हो गया है, अंतरमें मूर्च्छित होनेके बदले बाह्यमें मूर्च्छित हो रहा है। २१४.

❁ भोगके विकल्पोंकी अपेक्षा अनर्थके विकल्प आत्माको अत्यन्त हानिकारक हैं। भोगके विकल्प तो अमुक कालमें ही होते हैं। २१५.

❁ आत्मा अतीन्द्रिय अमृतका सागर है; उसमें अकेला अमृत ही भरा है, कितने ही विकल्पोंको तोड़कर उस ओर जा सकता है। २१६.

❁ यह की यही बात दो-दो चार-चार घन्टे तक सुनता है और स्वीकृति आती है, रागका निषेध आता है, इस का ही मंथन चलता है, वह क्या कोई क्रिया नहीं है? जड़की और रागकी क्रिया ही क्या क्रिया होगी? उसका (ज्ञानका) माहात्म्य नहीं आता। इस सत्यका ही स्वीकार और रागका निषेध-नकार आता है। यही तत्त्वज्ञानका अभ्यास है। २१७.

❁ जगतको अज्ञानने लूटा है न? ऐसा तो कोई लुटेरा जगतमें नहीं है। दिनके प्रकाशमें जगतको लूट रहा है। २१८.

❁ जैसे एक लोहे के बड़े गोलेमें इतना बल है कि नीचे पड़े तो, नीचेके पत्थरका चूरा कर देता है। उसी प्रकार आत्मामें ज्ञानबल, चारित्रबल, वीर्यबल ऐसे अनन्तबल है वह कर्मका और अशुद्धताका चूरा कर देता है। २१९.

❁ ज्ञानकी वर्तमान पर्याय अन्तर्मुख हो उसका नाम ज्ञातृत्व है; धारणाका हो जाना वह ज्ञातृत्व नहीं है। आत्माको अनुभवमें लेना उसका नाम यथार्थ ज्ञातृत्व है। २२०.

❁ भगवानकी वाणीमें चैतन्यहीरा सराण पर चढ़ा है, यह जो सुननेको मिलें वह भी हीरेके कण हैं। २२१.

❁ विषय-कषायकी रुचि तो छूटी नहीं है और मात्र ज्ञातृत्व (जानपना) है वह ज्ञातृत्वके नामसे आत्माको टगता है। वह ज्ञातृत्व ही नहीं है; सच्चा ज्ञातृत्व होने पर तो विषय-कषायकी रुचि छूट जाती है। २२२.

❁ वास्तवमें तो रागसे विरक्त (भिन्नता) को शील कहा जाता है। ऐसा शील नरकमें भी वेदनाको नहीं गिनता। यह तो बड़े धैर्य सहित समझनेकी बात है। जैसे समुद्रका पानी सींक (सली) द्वारा उलेचना हो तो कितना धैर्य चाहिये! २२३.

❁ निचली बातका टिकाना नहीं हो वहाँ ऊँची बात कैसे बैठेगी? पात्रतारूप निचली बात बराबर नहीं समझता हो उसे ऊँची अर्थात् अध्यात्मकी अलौकिक बात किस प्रकार बैठ सकेगी? २२४.

❁ मैं वणिक हूँ ऐसा तो नहीं परन्तु मैं मनुष्य हूँ—ऐसा माननेवालेने जीवको मार डाला है। मैं अल्पज्ञ हूँ, रागका कर्ता हूँ ऐसा माननेवालेने उसके जीवित जीवको मार डाला है; उसका अनादर करना वही उसे मारना है। २२५.

❁ इस जीवका अंतरमें रुचिपूर्वक रटन और मंथन वही अंतरमें आगे बढ़नेका मार्ग है। उसे स्वरूपके प्रति प्रेमकी आवश्यकता है; ज्ञान अल्प-अधिक हो उसकी कोई बात नहीं। २२६.

❁ स्वर्गमें जाने योग्य परिणामका भी जिसको अभी कोई टिकाना नहीं है, मनुष्यमें जाने योग्य परिणामका भी टिकाना नहीं है और धर्म प्राप्त करने योग्य परिणामोंका टिकाना हो—ऐसा नहीं हो सकता। २२७.

❁ अरे, देखो तो! वह प्रतिक्षण मृत्युके निकट जा रहा है, परन्तु यदि वह आत्माके सन्मुख नहीं जायगा तो मृत्युके समय आकुलित हो जायगा। २२८.

❁ बाह्य वैभवमें सुख मानना वह तो विष्टामें सोने और उसमें सुख मानने जैसा है। २२९.

❁ सर्व जीव साधर्मी हैं कोई विरोधी नहीं है। सर्व जीव परमानन्दको प्राप्त होओ! कोई जीव अपूर्ण न रहो, कोई जीव अल्पज्ञ न रहो, कोई जीव विरोधी न रहो, कोई जीव

विपरीत दृष्टिबन्त न रहो, सर्व जीव सत्यके मार्ग पर चलो और सुखी होओ! किसी जीवमें विषमता न रहो, सर्व जीव पूर्णानन्दरूप प्रभु हो जाओ! समयसार गाथा ३८ के श्लोकमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि सर्व जीव आत्मामें मग्न होओ! अहाहा! देखो ज्ञानीकी भावना! स्वयं पूर्णानन्दस्वरूप आत्मामें मग्न होते हैं इसलिये सर्व जीव भी पूर्णानन्दस्वरूपमें मग्न होकर सुखानुभव करो—ऐसा कहते हैं। २३०.

❁ भाई! अभी तो अपना कार्य कर लेने जैसा है। अरे! माता-पिता, भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धी आदि अनेक कुटुम्बीजन मरकर कहाँ गये होंगे? उनकी कोई खबर नहीं। अरे, मुझे अपने आत्माका हित कर लेने जैसा है—ऐसा अंतरसे लगना चाहिये। सगे-सम्बन्धी सब चले गये! उनके द्रव्य-क्षेत्र-काल, भाव, भव सब बदल गये! शरीरके अनन्त रजकण कब कहाँ जायँगे, उनका क्या होगा उसकी कोई खबर है? इसलिये जो जागता रहेगा वही बचेगा। २३१.

❁ जब देखो तब निगोदके एक शरीरमें रहे हुए जीवोंके अनन्तवें भाग ही मोक्षमें जाते हैं। अरे, उस निगोदमेंसे निकलकर ऐसा मनुष्यभव प्राप्त हुआ और वीतरागकी वाणी मिली वह तो धन्य भाग्य है! महान पुण्यकी अधिकता हो.....मेरु जैसी पुण्यकी अधिकता हो तब ऐसा योग मिलता है। अब कार्य कर लेना वह उसके हाथकी बात है। भाई, ऐसे कालमें तू अपना कार्य कर ले। २३२.

❁ एक विचार आया था कि तीर्थकर जैसोंको माताके पेटमें आना पड़े, सवा नौ महिने तक पेटमें सिकुड़कर रहना पड़े, जन्म लेना पड़े! अहाहा! इन्द्रों जिनकी सेवा करने आते हैं ऐसे तीर्थकरोंकी भी यह स्थिति! वाह रे संसार! यह सब क्या है? वैराग्य.....वैराग्य..... सर्वोत्कृष्ट पुण्यके धनी ऐसे तीर्थकरको भी माताके पेटमें रहना पड़े! अहाहा! यह तो संसारकी अन्तिम स्थितिकी बात है। अरे प्रभु! ऐसा संसार! संसारकी ऐसी स्थितिका विचार करने पर तो आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं। २३३.

❁ जैसे भोजन लिये बिना नहीं चलता, वैसे ही सदा शास्त्रस्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय तो आत्माका आहार है, इसलिये नियमपूर्वक स्वाध्याय करना, उसका व्यसन होना चाहिये। २३४.

❁ हे जिज्ञासु! तू तो निगोदमें से बाहर निकला है। मनुष्यभव प्राप्त करके पंचम परमभावको दरशानेवाली जिनवाणीका श्रवण करने आया है। श्रवण करता है तो तू अवश्य

परमात्मरूप परिणमित हो सकेगा। हम तुझे कहते हैं कि तू स्वभावरूप परिणमित होने योग्य ही है, इसलिये सन्देह मत कर, निस्संदेह हो, विश्वास ला! पंचमकाल, अल्प पुण्य या न्यूनताको लक्षमें न ले। तू पूर्ण परमात्मतत्त्व है तथा उसरूप परिणमित होने योग्य ही है। २३५.

❁ भाई! इस चौरासीके अवतारमें परिभ्रमण करते-करते बड़ी कठिनाई से यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है; परन्तु प्रतिदिन तेरे बाईस-तेईस घन्टे तो खाने-पीनेमें, कमानेमें और स्त्री-पुत्रोंको प्रसन्न करनेमें अकेले पापमें बीत जाते हैं; बाकी एकाध घन्टा श्रवण करनेके लिये मिलता है। इस प्रकार दिन भर पापकार्योंमें बीत रहे हैं जिस प्रकार एरनकी चोरी और सुईके दान जैसा है। उसे अंतर से चौरासीके अवतारोंका भय लगे तो विश्रामके स्थानकी खोज करे। २३६.

❁ चौरासीका भवभ्रमण छुड़ानेवाली, त्रिलोकीनाथकी वाणी सुननेके लिये आये उसे देव-शास्त्र-गुरुकी कितनी विनय होना चाहिये? स्वर्गसे इन्द्रादि देव आकर भगवानकी वाणी कितनी विनय, भक्ति एवं नम्रतासे सुनते हैं! जिनवाणीका श्रवण करते समय शास्त्रकी विनय और बहुमान होना चाहिये। शास्त्रको नीचे नहीं रखा जाता, शास्त्र पर कोहनी नहीं रखी जाती, पैर पर पैर चढ़ाकर शास्त्रश्रवणके लिये नहीं बैठा जाता, रूमाल या पत्रे द्वारा हवा नहीं की जाती, ऊँघते नहीं हैं, प्रमादपूर्वक बैठा नहीं जाता आदि-आदि कितनी विनय-बहुमान-भक्ति हो तब तो जिनवाणी श्रवणकी पात्रता है। व्यवहारपात्रता जैसी है वैसी जानना चाहिये। २३७.

❁ मुनि कहते हैं कि अरे प्रभु! हमें आश्चर्य और खेद होता है कि—शरीरादि परद्रव्योंसे तू प्रत्यक्ष भिन्न है, तथापि उनको अपना मानता है। अरे! क्या करता है प्रभु! चौरासीके अवतारोंमें भ्रमण करते हुए बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव प्राप्त हुआ और ऐसे सत्यश्रवणका सुयोग मिला तो अब शरीरसे भिन्न चैतन्यप्रभुका अनुभव कर! २३८.

❁ जीवने अपने सहज सुखस्वरूप हेतु एक क्षण भी धैर्यपूर्वक विचार नहीं किया है। यदि विचार करे तो वस्तु बहुत ही सहज और सुलभ है; परन्तु तीव्र जिज्ञासा, अभिलाषा और उत्साह होना चाहिये। इस संसारका रस छूट जाये तो आत्मस्वरूप अवश्य प्रगट हो। २३९.

❁ श्रद्धा ऐसी हो कि रागको कम करे, ज्ञान ऐसा हो कि रागको कम करे, चारित्र ऐसा हो कि राग घटा दे। शास्त्रका तात्पर्य तो वीतरागता है। क्रमबद्धकी श्रद्धा भी उसे कहते हैं जो रागको कम करे। क्रमबद्धकी श्रद्धामें अकर्तृत्व आता है। जो होना है उसमें करे क्या? जो होता है उसे जानता है। ज्ञाता-जाननहार रहनेसे राग टूटते जाते हैं और वीतरागतामें वृद्धि होती रहती है। वीतरागता बढ़ना वही शास्त्रका तात्पर्य है। २४०.

❁ प्रत्येक आत्मा भगवान् स्वरूप है, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप चैतन्य रसकन्द है। अरे, आजकल चतुर्मासमें तो हरियाली-घास आदि ढेरों हुई है; उस पर पाँव रखकर नहीं चलना चाहिये भाई! एक छोटेसे कणमें असंख्यात जीव हैं, वे सब भगवान् स्वरूप हैं। २४१.

❁ रागका और संयोगका भीतर निषेध होता है वह श्रद्धा-ज्ञानकी पर्याय है या नहीं? घन्टे, दो घन्टे, चार घन्टे यह एककी एक बात चलती है, वारम्बार मंथन होता है; पठन, श्रवण, मननमें यही बात आती रहे, चौबीसों घन्टे मनन-मंथन होता रहे कि—शरीरका कार्य मेरा नहीं, रागका कार्य भी मेरा नहीं तो क्या यह श्रद्धा-ज्ञानमें कोई अंतर ही नहीं पड़ा? यह क्या ज्ञानकी क्रिया नहीं है? परन्तु बाह्य क्रियाकाण्डके आग्रहवालोंको अंतरके श्रद्धा-ज्ञानका कोई माहात्म्य ही नहीं लगता। अरे भाई! यह जो श्रद्धा-ज्ञानका कार्य अंतरमें सम्यक् होता जाता है वह क्रमानुसार शीघ्रतासे विकल्पोंको तोड़कर निर्विकल्प स्वानुभवरूप हो जायगा। २४२.

❁ जिस घर नहीं जाना हो उसे भी जानना चाहिये। वह घर अपना नहीं है परन्तु दूसरेका है यह जानना चाहिये। वैसे ही पर्यायका आश्रय नहीं करना है इसलिये उसका ज्ञान भी नहीं करे तो एकान्त हो जायगा, प्रमाणज्ञान नहीं होगा। पर्यायका आश्रय छोड़ने योग्य होनेपर भी उसका यथार्थ ज्ञान तो करना ही पड़ेगा; तभी निश्चयनयका ज्ञान सच्चा होगा। २४३.

❁ श्रोता :—करोड़पति और अरबपतियोंको पुण्यशाली माना जाय कि जिनको ऐसे देव-गुरु-धर्म मिले हों उनको पुण्यशाली मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—सच्चे देव-गुरु-धर्मका योग प्राप्त हुआ हो वे ही सच्चे पुण्यशाली हैं, करोड़पति-अरबपति पुण्यशाली नहीं हैं; वास्तवमें तो वे पापशाली कहे जायेंगे। जो अपने परमात्मतत्त्वका अनुभव करें वही श्रेष्ठ हैं और अपने परमात्मतत्त्वके अनुभवकी प्रेरणा देनेवाले सच्चे देव-गुरुका योग मिलना वही सच्चा पुण्योदय है। २४४.

❁ अग्निका उष्ण स्वभाव स्थायी है, गुड़का मिष्ट स्वभाव स्थायी है, अफीमका कड़वा स्वभाव स्थायी है, सूर्यका प्रकाशस्वभाव स्थायी है, बर्फका शीतलस्वभाव स्थायी है, उसीप्रकार भगवान् आत्माका ज्ञायकस्वभाव-चेतनास्वभाव स्थायी है। ज्ञायकस्वभावी आत्मा स्व-परको जानने-देखनेके अतिरिक्त दूसरा क्या करेगा? २४५.

❁ जीव जिनवर है और जिनवर जीव है—ऐसी दृष्टि हो उसकी पर्यायबुद्धि छूट जाती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने हेतु कितने ही गढ़ पार करके भीतर जा सकते हैं। व्यवहारमें अनेक

प्रकारकी योग्यता होती है; संसारभाव किंचित् भी नहीं रुचें, आत्मा.....आत्माकी धुन लगे तब सम्यग्दर्शन होता है। २४६.

❁ सूर्यका प्रकाश और अंधकार दोनों वस्तुएँ बिल्कुल भिन्न हैं। तदनुसार सहजात्मस्वभाव वह मात्र ज्ञानस्वभाव है, सूर्यसमान है और दया-दानादिके विकल्प वह अंधकार समान है, उनकी ज्ञानसूर्यसे बिल्कुल भिन्नता है। सहजात्मस्वभाव स्वाभाविक है, अकृत्रिम है (किसीने बनाया नहीं है), उस स्वभावमें और रागमें तीनकालमें एकता नहीं है। क्या हो?.....केवलियोंका विरह हुआ, अवधिज्ञानी भी कोई रहे नहीं; जगतको चमत्कार लगे वैसा कुछ बचा नहीं। सत्यको स्वीकारना जगतको कठिन लगता है। ऐसे परम सत्यको स्वीकार करनेवाले भी महा भाग्यशाली हैं। २४७.

❁ आचार्यदेव करुणा करके कहते हैं कि हे अंध! तुझे व्यापारमें बही-खातोंकी अनेक कलाओंका पूरा ज्ञान है और तेरा सुखका निधान तेरी अपनी वस्तुका तुझे ज्ञान नहीं है! तू सचमुच अंधा है। अरे! तू तो स्वयंज्योतिरूप हो, सुखधाम हो, उसका तुझे ज्ञान नहीं है, भान नहीं है, श्रद्धा नहीं है, और दुःखके कारणभूत बाह्यपदार्थोंका ज्ञान है। अरे! यह कैसी बात है! २४८.

❁ अरे! क्षणभरमें अनेक प्रकारके विचित्र रोग हो जायँ ऐसा शरीर है। कहाँ शरीर और कहाँ आत्मा! उनका तो मेढ़ और सीमा पर कहीं मेल नहीं है। अहा! ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त हुआ है और वीतरागताका मार्ग महाभाग्यसे मिला है; उसे मनका भारी बोझ कम करके आत्माको समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। पाँच इन्द्रियोंकी ओर का बोझ कम करके आत्माको जाननेके विचारमें लग जाना चाहिये। अंतरमें अनन्त अनन्त आनन्दादि स्वभाव भरे हैं, ऐसे स्वभावकी महिमा आये उसके अंतरमें पुरुषार्थका उदय हुए विना रहेगा ही नहीं। २४९.

❁ एक विचार आया था कि सरकारी नौकरोंको ५५-५६ वर्षमें नौकरी से उतार देनेका कानून है तो सेठों और व्यापारियोंके लिये कोई नियम नहीं है कि ५५-५६ वर्षकी उम्रमें धंधासे निवृत्त होकर अपने आत्माका हित करें? आजीविका की चिन्ता न हो, रुपये-पैसोंकी कोई सीमा न हो तथापि निवृत्ति लेकर अपने आत्माका हित क्यों नहीं करते? अरे ६०-७० वर्षतक निवृत्ति नहीं लेते तो मरकर कहाँ जाना है? अरे! मोह-ममताके परिणाममें मरकर तिर्यच-बकरी आदिके पेटसे अवतार होगा। २५०.

❁ आत्मा चाहे जैसे संयोगोंमें हो तो भी अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। अपनी

शान्ति प्रगट करनेमें जगतका कोई बाह्यपदार्थ विघ्न करनेमें समर्थ नहीं है। चाहे जैसे भीषण दुःखद प्रसंग आ जायँ—पुत्रका वियोग हो जाय, पुत्रीको वैधव्य आ जाय, वनमें अकेला भटक गया हो, और हिंसक जन्तु सामने खड़े हों, हैजा आदि असाध्य रोग हो गया हो जिससे बचनेकी कोई आशा न हो, तब भी उन संयोगों का लक्ष छोड़कर आत्मा अंतरमें अपनी शान्ति प्रगट करनेमें समर्थ है। बाह्य प्रतिकूलताएँ अंतरकी आत्मशांतिको नहीं रोक सकती। शास्त्रमें तो कहते हैं कि नरककी एक क्षणकी इतनी पीड़ा है कि जिसका वर्णन करोड़ों जिह्वाओं से करोड़ों वर्षों तक नहीं किया जा सकता; तथापि वहाँ भी उस संयोगकी पीड़ाका लक्ष छोड़ दे तो आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। भाई! तेरा आत्मतत्त्व सदा सन्मुख ही रहता है उसका लक्ष करके अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है। २५१.

❁ श्रोता :—भूतकालके दुःखोंको याद ही किसलिये करें ?

पूज्य गुरुदेव :—फिर ऐसे दुःख न आयें इसलिये उनका स्मरण करके वैराग्य करते हैं। मुनिराज भी भूतकालके दुःखोंको याद करके कहते हैं कि—मैं भूतकालके दुःखोंका स्मरण करता हूँ तब हृदय पर आघात होता है। देखो! मुनि सम्यग्दृष्टि हैं, आनन्दका प्रचुर वेदन है, तथापि भूतकालके दुःखोंका स्मरण करके पुनः ऐसे दुःख नहीं आयें इसलिये वैराग्यमें वृद्धि करते हैं। २५२.

❁ भगवान आनन्दका नाथ चैतन्यचक्रवर्ती है परन्तु अपने को भूल गया है और भिखारी बनकर संयोगोंसे भीख माँगता है कि—पैसा दो, पत्नी लाओ, प्रतिष्ठा करो, निरोग हो जाऊँ। इस प्रकार भिखारीकी भाँति माँगता रहता है; परन्तु अपने में ही आनन्द भरा है उस पर दृष्टि नहीं देता इसलिये चारों गतियोंके दुःख भोगता है। शुभराग और अशुभरागकी वासना तो विष समान है। जहाँ आनन्दका नाथ बैठा है वहाँ नहीं देखता और इधर—उधर मिथ्या प्रयत्नमें लगा रहता है। २५३.

❁ आजकल तो रेलगाडियों में, हवाईजहाजों और बसों में भी दुर्घटनाओंके कारण कितने ही लोग मर रहे हैं। प्रतिदिन समाचार आते रहते हैं। जैसे आँख खुलने पर स्वप्न चला जाता है वैसे ही शरीर और भव क्षणमें चले जाते हैं। हृदयाघात से क्षणभरमें अल्पायुके लोग मर जाते हैं। अरे! यह सं.....सा.....र! नरकमें अन्नका दाना भी नहीं मिलता, पानीकी बूँद भी नहीं मिलती और प्रतिकूलताका कोई पार नहीं.....ऐसी दशामें अनन्तबार वहाँ गया है, परन्तु वहाँसे निकलते ही सब भूल जाता है। इसका किंचित् विचार करे तो उन दुःखोंसे छूटनेका

उपाय करे। अहा! ऐसा मनुष्य भव मिला और सत्य समझनेका सुयोग प्राप्त हुआ तो उसमें अपने आत्माका हित कर लेने जैसा है भाई! २५४.

❁ आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। जैसे बर्फ शीतलताकी विशाल शिला है। वैसे आत्मा शीतलताकी बड़ी शिला है। अतीन्द्रिय आनन्दकी विशाल शिला है, अनन्त सर्वज्ञताकी बड़ी शिला है, अनन्त प्रभुताकी शिला है, अनन्त विभुताकी शिला है। इस प्रकार अनन्तानन्त गुणोंकी पूर्णानन्द से परिपूर्ण विशाल शिला है। वस्तु तो सदाकाल ज्योंकी त्यों रही है। भले ही नरक-निगोदादिके अनन्त भव किये हों तथापि वस्तु तो सदाकाल ज्ञानानन्दस्वरूप ज्योंकी त्यों रही है। उसका अंतरमें विश्वास आना चाहिये। २५५.

❁ आत्मा अजायबघर है; उसमें ज्ञान और आनन्दादिके विशाल कक्ष भरे हैं जिनमेंसे ज्ञान और आनन्द आदि निकालते ही रहो, फिर भी कभी कम नहीं होंगे—ऐसा महान अजायबघर आत्मा है उसकी अंतरसे महिमा आना चाहिये। २५६.

❁ श्रोता :—सम्यक्त्व-सन्मुख जीव तत्त्वके विचारमें रागको अपना जानता है या पुद्गलका मानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—सम्यक्त्व-सन्मुख जीव रागको अपना अपराध समझता है और राग मेरा स्वरूप नहीं है, राग मैं नहीं हूँ—ऐसा जानकर उसका लक्ष छोड़कर अंतरमें उतरनेका प्रयत्न करता है। २५७.

❁ यहाँ तत्त्वकी बहुत ऊँची बात आयी है इसलिये निचली बातोंकी आवश्यकता नहीं, ऐसा नहीं होता। अपने को भीतर से विचार आना चाहिये। कोई कहे इसलिये नहीं परन्तु स्वयंको दरकार होना चाहिये। जिनको भविष्यका निर्णय नहीं है उनको तो भय लगना चाहिये कि अरे! भविष्यमें मैं कहाँ जाऊँगा? २५८.

❁ (दिन-प्रतिदिन होनेवाली शरीरान्तकी क्षणभंगुर घटनाओंको सुनकर पूज्य गुरुदेवश्री वैराग्यपूर्ण शब्दोंमें कहते हैं कि) हे भाई! यह शरीर तो क्षणमें छूट जायगा। शरीरका संयोग तो वियोगजनित है ही। जिस काल आयुकी स्थिति समाप्त होना है उस समय तेरे करोड़ों उपाय भी तुझे बचाने में समर्थ नहीं हैं। तू लाखों या करोड़ों रुपये खर्च, चाहे विलायतसे डॉक्टर बुला ले, परन्तु यह सब छोड़कर तुझे जाना ही पड़ेगा। शरीरान्तकी ऐसी नियत स्थितिको जानकर वह स्थिति आनेसे पूर्व ही तू सावधान हो जा। अपने आत्माको भवभ्रमणके चक्रसे बचा ले। आँख मिंचनेसे पहले ही जागृत हो जा। मृत्युके बाद तू कहाँ जायगा उसकी खबर है? वहाँ

कौन तेरा भाव पूछनेवाला होगा ?—तब यहाँ लोग क्या कहेंगे और समाज क्या समझेगा ऐसे मोहके भ्रमजालमें उलझकर अपने आत्माको क्यों व्याकुल कर रहा है? २५९.

❁ श्रोता :—आत्मप्राप्तिके लिये दिन भर क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—दिनभर शास्त्राभ्यास करना, विचार एवं चिन्तन करके तत्त्वनिर्णय करना और शरीरादि तथा रागादिसे भेदज्ञान करनेका अभ्यास करना। रागादिसे भिन्नताका अभ्यास करते-करते आत्माका अनुभव होता है। २६०.

❁ भाई! तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न सफल होगा; तेरी मति सुलटकर आत्मामें परिणमित हो जायगी। सत्के गहरे संस्कार डाले होंगे और इस भवमें कार्य नहीं हुआ तो दूसरी गतिमें सत् प्रगट होगा। सातवें नरकके नारकीको अपार वेदना होने पर भी अंतरमें पूर्वभवके संस्कार जागृत होनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है; इसलिये अंतरमें सत् के गहरे संस्कारोंका आरोपण कर, भाई! गहरायी से सत्के संस्कार डाल! ऊपर-ऊपरसे संस्कार अनेकवार डाले हैं, परन्तु गहरायी से एकवार यथार्थ संस्कार डाले होंगे तो दूसरी गतिमें भी सम्यग्दर्शन प्रगट हो जायगा। २६१.

❁ अरे, सारा दिन व्यापार-धंधा और स्त्री-पुत्रोंकी ममतामें-पापमें जीवन गँवा देता है, उसका क्या होगा? अकेली ममता-ममता! ममताके फलमें मरकर पशु होगा। यहाँ वणिक करोड़पति हो और मरकर शूकर होय और विष्टा खायगा? उसे अपना निर्णय तो करना चाहिये कि मेरा क्या होगा? मैं मरकर कहाँ जाऊँगा? यहाँ तो अल्पकाल रहना है, फिर मेरा क्या होगा और कहाँ जाऊँगा? यह निर्णय करना चाहिये।

श्रोता :—कहाँ जाऊँगा यह निर्णय हो सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—हाँ शास्त्रसे परिणामोंका मिलान करें तो निर्णय हो सकता है। २६२.

❁ समय आने पर वर्षा होती है, समय आने पर वृक्ष फलते हैं, समय आने पर चाँदनी खिलती है, समय पर पशु-पक्षी अपने घर लौटते हैं; स्वातिनक्षत्रमें सीपमें पानीकी बूँद गिरने से मोती उत्पन्न होते हैं; उसी प्रकार उत्तम देव-गुरुके महान योगकालमें तू आया और पूज्य पदार्थ अनुभवमें न आये वह तो अजब तमाशा है! २६३.

❁ पहले से ही संस्कार डालना चाहिये कि मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, परमात्मा हूँ। २६४.

❁ आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! तेरा आत्मा शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप है; ज्योंका त्यों है,

उसमें कोई न्यूनता आयी ही नहीं। भले वह नरक-निगोदमें भटका, परन्तु किंचित् भी न्यूनता आयी ही नहीं, इसलिये तू प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। २६५.

❁ यह तो अनादिसे नहीं किया हुआ कार्य है, यह बहुत शान्ति एवं धैर्यका कार्य है। एक ओरका पक्षघात (लकवा) हो जाना चाहिये कि शरीर-वाणी-मन-विकल्प मेरा जीवन नहीं है। २६६.

❁ मात्र दुःखका वेदन वह आत्मा ही नहीं, अनात्मा है। स्त्री-पुत्र आत्मा नहीं है; शरीर आत्मा नहीं है, परन्तु अकेले पुण्य-पापका-दुःखका वेदन वह आत्मा ही नहीं है, अनात्मा है। २६७.

❁ श्रोता :—साहब! अनुभव नहीं होता तो हमारा क्या दोष है?

पूज्य गुरुदेवश्री :—भाई! परका उत्साह आता है और अपना उत्साह नहीं आता वही ही दोष है। परमें ही सावधानी रखता है और स्वयंमें सावधान नहीं होता यही ही दोष है। परका माहात्म्य आता है और अपने स्वभावका माहात्म्य नहीं आता यही तो संक्षेपमें बड़े दोष हैं। २६८.

❁ जिसका चैतन्यके प्रति लक्ष बंध रहा है उसका जोर चैतन्यकी ओर चल रहा है। यही स्वभाव है...यही स्वभाव है; इस प्रकार स्वभावमें ही जोर होनेसे हम उसे अल्पऋद्धिवान क्यों देखें? मिथ्यादृष्टि होने पर भी वह सम्यक्त्व-सन्मुख हो गया है वह सम्यक्त्व लेगा ही। २६९.

❁ जैसे लकड़ीकी अग्निमें ऊपर सफेद रंगकी पर्त जम जाती है और भीतर लकड़ी सुलगती है, अग्निके ऊपर जमी हुई पर्त अग्निसे भिन्न ही है, उसीप्रकार राग भी चैतन्यकी पर्त समान होनेके कारण चैतन्यसे पृथक् ही है। उष्णता और अग्नि एकरूप हैं वैसे ही ज्ञान और आत्मा एकरूप हैं। २७०.

❁ मेरे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें परका अभाव है—ऐसा निर्णय करो और फिर मेरे स्वभावमें विभावका भी अभाव है—ऐसा निर्णय करो। २७१.

❁ स्वयं परमेश्वर है उसका जीवको माहात्म्य नहीं आता, और थोड़ी मन्द कषाय हो जाय उसका माहात्म्य आता है; थोड़ा शास्त्रज्ञान हो जाय तो उसे लगता है कि मैं बहुत जानता हूँ, भेदवाली थोड़ी श्रद्धा हो जाय तो उसे लगता है कि मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गई है। अरे भाई! इन परलक्षी ज्ञानादिकी कोई महत्ता नहीं है; उनकी महत्ता स्वभावकी महत्ताकी दृष्टिको रोकती है। २७२.

❁ धूलको देखना अब रहने दो और दृष्टाको देखो! दृष्टाको देखना वह वस्तुस्वरूप है इसलिये दृष्टाको देखना चाहिये। २७३.

❁ भाई तेरी जेबमें ही सब कुछ भरा है; निकालकर खाने लगे इतनी देर है। तेरी शक्तिमें अनंत ज्ञानादि भरे पड़े हैं, कौतूहल कर! २७४.

❁ अरे भाई हटना कहाँ है? मैं पुण्य-पाप रूप हो गया हूँ ऐसा जो उसने मान रखा है परन्तु वह मैं नहीं हूँ। बस, इतनी बात है। सिर्फ मान्यता ही बदलना है। तेरी दृष्टिके फेरसे संसार है और मैं पुण्य-पाप रूप हुआ ही नहीं—ऐसी दृष्टिका अनुभव करना वही मुक्ति है। ऐसे अंतरसे स्वीकार करना वही मुक्ति अथवा मुक्तिका पंथ है। २७५.

❁ अहाहा! जातिस्मरणज्ञानमें सामनेवालेका पूर्व शरीर दिखायी नहीं देता, आत्मा दिखायी नहीं देता, तथापि निर्णय कर लेता है कि यही आत्मा हमारा सम्बन्धी था! इतनी तो जातिस्मरणकी शक्ति! फिर केवलज्ञानकी शक्ति कितनी होगी?! मतिज्ञानकी पर्याय भी इतने निरालम्बीरूपसे कार्य करती है तो फिर केवलज्ञानके निरालम्बीपनेका क्या कहना?! २७६.

❁ शरीरके नाममें भी ऐसा लिप्त हो गया है कि घोर निद्रामें भी उसका नाम ले वहाँ तुरन्त उठकर बैठ जाता है! वैसे ही आत्मामें ऐसा लिप्त हो जाय कि चैतन्यकी ज्ञायकज्योति हूँ। स्वप्नमें भी यही बात आये। जिसे जिसकी लगन लगी हो उसको सपने भी उसीके आते हैं। हम तो आनन्द और शुद्ध चैतन्य हैं, पुण्य और पाप हम नहीं हैं। २७७.

❁ अरे, ८० वर्षकी आयुवाला २० वर्षसे लेकर ६० वर्षतक उस भवकी चिन्ता करता है, परन्तु ८० वर्षके बादका जो समय उसकी जरा भी चिन्ता नहीं करता, यह कैसी धृष्टता? ८० वर्षके बादका जो पहला समय वह सम्पूर्ण भव भी इसी आत्माका है; कहीं दूसरे आत्माका वह भव नहीं है। धूप-छाँव के बीच अन्तर नहीं होता, वैसे ही दो भवोंके बीच भी अन्तर नहीं होता, इसलिये दूसरे भवकी तो चिन्ता कर। २७८.

❁ यह पैसेवाला और यह अच्छे-निरोग शरीरवाला ऐसा मत देख, परन्तु यह केवली हो गये, यह पूर्ण हो गये और मेरी पर्यायमें अभी अपूर्णता है—ऐसा देख ना? २७९.

❁ जो कभी देखा नहीं है ऐसे रोकटका विश्वास करता है, परन्तु एकसमय में इन सब पदार्थोंको जान ले—ऐसी शक्तिका विश्वास तो ला! २८०.

❁ सघन वृक्षोंके वनमें छाया माँगनी नहीं पड़ती स्वयं मिल जाती है। वैसे ही

आत्मद्रव्यके पास याचना नहीं करनी पड़ती, परन्तु पूर्णानन्दके ऊपर दृष्टि पड़ते ही छाया स्वयं मिल जाती है, माँगनी नहीं पड़ती। हे जिनेन्द्र! तुम तो वीतराग हो इसलिये किसीको शरण देते नहीं हो, किसीसे कुछ लेते नहीं हो; परन्तु वृक्षकी छायाकी भाँति जो तुम्हारी शरण लेते हैं उनको स्वयं शरण मिल जाती है। आत्मद्रव्यकी दृष्टि करने पर निःशंक है कि आत्मा कृपा करेगा ही। २८१.

❁ उसे रागकी और निमित्तकी महिमा आयी है अथवा एक समयकी प्रगट पर्यायकी महिमा आयी है, परन्तु अंतरमें जो सम्पूर्ण वस्तु पड़ी है उसकी महिमा नहीं आयी। श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है न! कि—जगतको सृष्टिका गुप्त चमत्कार भासित नहीं होता अर्थात् अंतरमें जो पूर्ण शक्ति विद्यमान है उसका भास नहीं होता। २८२.

❁ ऐसी दृष्टि बनाये कि परके कार्य मेरे नहीं है, वहाँ दुःख कम हो जाता है। २८३.

❁ अपने भगवानके साथ जीवने अनवन कर ली है और सुखके लिये अन्यत्र भटकता रहता है। २८४.

❁ आत्मा अर्थात् समझका पिण्ड.....ज्ञानका पिण्ड.....बस, उसमें तो समझना.....समझना ही एक आता है, अन्य कुछ करना नहीं आता। परन्तु क्या समझना वह करना नहीं है?—समझना ही एक करना है। परन्तु समझ करना, ज्ञान करना उसका उसे माहात्म्य नहीं आता। २८५.

❁ अटकनेके अनेक स्थान हैं, भीतर पहुँचनेका एक ही मार्ग है। जीवको कहीं न कहीं मिटास रह जाती है। अरे! चालकी भी मिटास होती है! हाथी जैसी चाल हो तो उसकी भी मिटास! वह तो स्थूल है, सूक्ष्ममें तो राग की ही मिटास होती है.....धारणाज्ञान हो जाय और समझाना आ जाय तो उसकी मिटास आ जाती है। इस प्रकार कहीं न कहीं अटक जाता है। अंतरमें कोई न कोई शल्य नहीं रहती हो तो आत्मोन्मुख हुए विना रहेगा ही कैसे? २८६.

❁ सबके परिणामोंकी जिम्मेदारी सबके सिर है। २८७.

❁ (श्रद्धामें) शरीरको छोड़ दो, पुण्य-पापको छोड़ दो, अल्पज्ञता को छोड़ दो, तब छोड़ते-छोड़ते जो शेष रह जाय वह पूर्ण आत्मा है। २८८.

❁ अंतर्मुख एवं बहिर्मुख यह दो ही बड़ी बातें हैं। यह बातें जैनशासनके अतिरिक्त कहीं हो नहीं सकती। वस्तु तो सारी अंतर्मुख पड़ी है उसमें अंतर्मुख होना यह बात जैनदर्शनके

अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती; क्योंकि यह वस्तुस्थिति है। इसलिये जहाँ वस्तुस्थिति हो वहीं यह बात होगी। २८९.

❁ बड़ोंके साथ बैठनेवालेको क्या चिन्ता; सेवक होने पर निश्चितता। अरे, बच्चा माँ-बापकी गोदमें बैठा हो तो उसे भी चिन्ता नहीं होती, तब जो भगवानकी गोदमें बैठ गया उसे भव हो ऐसा हो ही नहीं सकता। जिसे भगवान समझमें आ जाये और मैं भी भगवान हूँ—ऐसी प्रतीति हुई उसके भव होते ही नहीं। २९०.

❁ यह तो ऐसी बात है कि सादि-अनन्त आनन्द-आनन्द हो जाय और संसार अनादि-सान्त हो जाय। उसका फल महान है, तो उसका कारण भी महान है तो उसका आधार भी महान है—ऐसा उसे प्रथम निःशंकरूपसे भासित होना चाहिये, पश्चात् अंतरमें प्रयोग होगा। २९१.

❁ सत् जैसा है वैसा ज्ञानमें न आये तो वह उत्तर नहीं देगा, सम्यक् ज्ञान नहीं होगा, दृष्टि नहीं होगी, अनुभव नहीं होगा। श्रीमंतको कोई भिखारी कहे तो उत्तर नहीं देगा; वैसे ही सत् को जैसा है वैसा यथार्थरूपमें स्वीकार नहीं करेगा तो सत् उत्तर नहीं देगा। २९२.

❁ जो अकेले शास्त्राभ्यासमें ही लगा रहता है उसे स्वभावमें आने हेतु शास्त्राभ्यास का निषेध किया है; परन्तु यह सुनकर कोई अनपढ़ स्वभावमें तो जा नहीं सकता और शास्त्राभ्यास में प्रवर्तता नहीं है, तो वह निश्चयाभासी है। २९३.

❁ जैसे तेल जलके प्रवाहमें उपर उपर तैरता है जलके दलमें पेटता नहीं है, ऐसे विकार चैतन्यके प्रवाहमें उपर उपर तैरता है, चैतन्यके दलमें पेटता नहीं है। २९४.

❁ विष्टाकी टोकरी में यदि रत्न पड़ा हो तब भी वह रत्न ही है। वैसे ही शरीर कैसा भी पशुका हो, व्यंतरी देवीका हो, परन्तु अंतरमें चैतन्यरत्नकी प्रतीति हुई उसे उल्लास आ जाता है कि अहो! ऐसा भगवान मेरे पास है और मैं कहाँ देखने जाऊँ! ऐसे उल्लाससे अंतरमें डोल उठता है। २९५.

❁ जिसे सचमुच ऐसा लगे कि मेरा जीवन निष्फल गया, वह तो सफलता का मार्ग अपना लेता है। २९६.

श्रोता :—इसमें (तत्त्वाभ्यासमें) कमाई क्या होगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—इसमें कमाई यह होगी कि स्वयं तीनलोकका नाथ हो जायगा,

केवलज्ञानका सम्राट बन जायगा—यह कमाई होगी। अरे! श्रद्धा-ज्ञान होते ही वह केवलज्ञानका सम्राट हो गया। २९७.

❁ जिसे ऐसा लगे कि मैं दुःखी हूँ वह सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करेगा। पर पदार्थमें अच्छा-बुरा लगना वही दुःखका लक्षण है। अपनी शान्तिके लिये परका आश्रय लेना ही दुःख है। २९८.

❁ निमित्तमें मधुरता उसे लगती है जिसे उपादानमें मधुरता प्रगट हुई हो। आत्मरसके रसिक जीवको भगवानकी वाणी मधुर-मीठी लगती है। जो आत्मामेंसे कमाई करके आया है उसे वाणीमें भी मधुरता-मिठास लगती है। २९९.

❁ अरे! क्षणमें मर जाना है और ममताका पार नहीं! ३००.

❁ धैर्य रख भाई!.....धैर्य रख! वीतरागके घरकी दृष्टि प्राप्त करना महा अलौकिक बात है। वह दृष्टि मिली उसकी तो मानो मुक्ति हो गई। ३०१.

❁ अंतरमें दृष्टि देना ही आत्माका आहार है। श्रद्धा-ज्ञानका बारम्बार अभ्यास करना ही आत्माका भोजन है। ३०२.

❁ हे भाई! सत्को समझे बिना तुझे कोई शरण नहीं होगा। जहाँ आँख मिच गई वहाँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव सब अंजान.....अंजान लगेगा.....अंतरके परिचितको जिसने पहिचाना होगा वह जहाँ जायगा वहाँ परिचित ही रहेगा। ३०३.

❁ मिथ्यात्व ही सबसे बड़ी कषाय है। तत्त्वनिर्णय करते करते वह मन्द पड़ता जाता है। पूर्ण निर्णय होने पर उसका अभाव हो जायगा। ३०४.

❁ देह-मन्दिरमें सिद्ध परमात्मा में स्वयं ही विराजता हूँ। ३०५.

❁ सब बातें करके कहना एक ही है कि द्रव्य-सन्मुख हो, पहले रुचिपूर्वक और फिर पुरुषार्थ से। यह सब (शास्त्र) उसकी टीका (विस्तार) है। ३०६.

❁ जादुगर द्वारा लड़कीके दो टुकड़े करके फिर जीवित कर देनेकी बात चलने पर पूज्यश्रीने कहा कि अरे! उसमें क्या था? विद्याके बल पर बड़ी सेना खड़ी कर दे, मार डाले और फिर जीवित कर दे; परन्तु उसमें आत्माको क्या लाभ?.....वह रागसे ज्ञानकी भिन्नताके टुकड़े कर दे तो सच्चा जादूगर कहलाये। ३०७.

❁ अपनी भूमिकाके योग्य होनेवाले विकारी भावोंको जो छोड़ना चाहता है वह अपनी वर्तमान भूमिका को नहीं समझ सका, इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है और जिसे वर्तते हुए विभावभावोंका निषेध नहीं आता परन्तु मिटासका वेदन होता है तो वह भी वस्तुस्वरूपको समझा नहीं है, इसलिये उसका ज्ञान मिथ्या है। ज्ञानीको राग रखनेकी भावना नहीं होती, और रागको टालनेकी आकुलता नहीं होती। ३०८.

❁ श्रीमद् जैसे भी ईडरके पहाड़ पर बैठकर श्लोकोंकी स्वाध्याय करते थे। कोई कहे कि निर्विकल्प हो जायँ न! स्वाध्याय तो शुभराग है! तो वह स्वच्छन्दी है, वह मिथ्यात्वमें निर्विकल्प हो गया है। ३०९.

❁ सर्वज्ञकी वाणीमें भी मैं पूरा न आऊँ—ऐसा मैं कौन? उसका जिसे माहात्म्य आया है और उस माहात्म्यका भासित होना वही उसे करने योग्य कर्तव्य है। ३१०.

❁ पूर्वकालमें जो रामचन्द्र आदि महापुरुष हुए वे सब केवलज्ञान होनेसे पूर्व मुनिदशा या गृहस्थाश्रममें वस्तुका बारम्बार स्तवन करते थे कि वस्तु ऐसी अचिन्त्य है, पर्यायका ऐसा अचिन्त्य सामर्थ्य है, परमाणुकी इतनी शक्ति है, उसकी पर्यायका ऐसा सामर्थ्य है—इसप्रकार वस्तुका चिन्तवन—स्तवन करते थे और भगवानका भी स्मरण करते थे। ३११.

❁ यह कोई जैसों—तैसों का मार्ग नहीं है परन्तु तीर्थकर और चक्रवर्ती भी जिस मार्ग पर विचरते हैं ऐसा महान मार्ग है। जिसके फलस्वरूप सादि—अनन्तकी शान्ति हो जाय ऐसा परम सत्यमार्ग है। ३१२.

❁ मुझे अपने गुण—पर्यायकी आवश्यकता है अन्य किसीकी नहीं.....उसका नाम वैराग्य है; और अपनेमें जो है उसकी अपेक्षा तथा अपने में जो नहीं है उस सबकी उपेक्षा—ऐसे अपने अस्तित्वकी प्रतीति होना वह ज्ञान है। ३१३.

❁ पूर्ण चिदानन्द पर्वत सम्मोदशिखर तो यहाँ भीतर विद्यमान है, उस ओर उन्मुख होकर अनन्त तीर्थकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं। ३१४.

❁ अपना तत्त्व सदा मुझे अनुकूल ही है। चैतन्य कल्पवृक्षमें जितनी एकाग्रता करूँ उतना मिलता ही है। मुझे अन्य की आवश्यकता नहीं है। ३१५.

❁ जैसे शरीर, स्त्री आदि परद्रव्योंके बिना नहीं चलता—ऐसी मान्यता बनाकर बैठा है; उसके बदले एकवार ऐसा विचार तो बना कि मुझे अपने आत्माकी दृष्टिके बिना एक डग भी

नहीं चलेगा। अपने द्रव्यके बिना मैं एक डग भी नहीं चल सकता—ऐसा विचार कर। ३१६.

❁ मेरुको तराजू पर नहीं तोला जा सकता—ऐसा कहते हैं, परन्तु यहाँ तो मेरुको तराजू पर तोला जा रहा है। श्रद्धाने विशाल पर्वत—चैतन्यको तोला है। ३१७.

❁ परसे एकत्व यह ही अनादिका एक रोग है और उसीका उसे दुःख है। परसे विभक्त—भेदविज्ञान वह एक ही उपाय है। बस, सम्पूर्ण समयसारमें प्रारम्भसे अन्त तक यह एक ही बात है। ३१८.

❁ भाई! तेरी परमेश्वरताका आधार तेरा द्रव्य है। तुझे परमेश्वर होना हो तो अपनी परमेश्वरताको अंतरमें खोज! ३१९.

❁ अरे जीव! अनन्त संसारमें परिभ्रमण करते हुए तूने अनेक दुःख सहन किये हैं; नरकादिके घोरति घोर दुःखोंसे भी तू पार हो गया। परन्तु....विराधकभावसे यदि एकबार आराधकभावसे उन सब दुःखोंसे पार हो जा अर्थात् चाहे जैसी प्रतिकूलता आये तथापि आराधकभावसे विचलित न हो, तो फिर इस संसारका कोई दुःख तुझे नहीं आयगा और तेरा सुखधाम तुझे प्राप्त हो जायगा। ३२०.

❁ मेरी चैतन्यस्वरूप वस्तु तो अनादिसे ज्योंकी त्यों है। मेरे धाममें किसीने प्रवेश किया ही नहीं। राग रागमें रहा है; ऊपर—ऊपर फिर रहा है। मेरे स्वरूपमें किसीका प्रवेश हुआ ही नहीं, मेरा कुछ खो नहीं गया है, कुछ कम भी नहीं हुआ है। ऐसा जानकर हे भाई! तू प्रसन्न हो, प्रसन्न हो! ३२१.

❁ भेंस आदि ढोर घास आदि खाकर फिर आनन्दसे जुगाली करते हैं; वैसे ही तत्त्वकी बात सुननेमें आये उसका मंथन करके, व्यवस्थित कर—करके जब तक भावभासन नहीं हो तब तक उसका मंथन करना चाहिये। पर्यायका विश्वास और फिर त्रैकालिक सत्का विश्वास आना चाहिये। ३२२.

❁ यह बात तो उनके लिये है जो महा भाग्यशाली पुण्यवंत हैं; जिनको अल्पकालमें अनन्तानन्त सुखका स्वामी होना है। ३२३.

❁ कोई पहले पूजा—भक्ति करता हो और फिर यह सुनकर तत्त्वविचारमें लग जाय; तब कोई कहे कि इसे यह श्रवण करनेका क्या फल?—तो कहते हैं कि भाई! पूजादिकी अपेक्षा तो तत्त्वविचारमें विशेष कषाय मन्दता है; उसमें भ्रष्टता नहीं है। तेरी दृष्टि विपरीत

है। वह तेरे साथ पूजादि कार्योंमें खड़ा नहीं दिखता इसलिये भ्रष्ट है ऐसा नहीं है; उसमें तो शुभभाव अत्यन्त उच्च है। मोक्षमार्ग-प्रकाशक में भी यह बात की है। ३२४.

❁ श्रोता :—रुचि हो और यहाँ—इस भवमें सम्यग्दर्शन नहीं हो तो अगले—दूसरे भवमें हो जाय ऐसा हो सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—रुचि हो उसे होगा ही,....होगा ही, होगा....होगा.....और होगा ही। यथार्थ रुचि और लक्ष हो उसे सम्यग्दर्शन नहीं हो ऐसा तीनकालमें हो ही नहीं सकता। वीर्यमें हीनता—हतोत्साहपना नहीं आना चाहिये। वीर्यमें उत्साह—निःशंकता आनी चाहिये। कार्य होगा ही ऐसा उसको लगना चाहिये। ३२५.



आत्मार्थी श्री दीपचन्दजी सेठिया, सरदारशहर के वचनमृत

समझकी अपार महिमा

[अटल-विश्वमर्यादा. पत्र-विभागमेंसे साभार उद्धृत]

❁ आत्मा समझ समझकर अपना हित करता हुआ आपूर्ण शांति-लाभ कर सकता है। बिना समझे कोई शांति-लाभ करनेका उपाय ही नहीं है। १.

❁ ज्ञानीजन अस्वस्थ होने पर विशेष वैराग्य धारण करते हैं स्वस्थ होने पर आत्म-अध्ययनमें डट जाते हैं। और अज्ञानी-जन शरीरसे अस्वस्थ होने पर तो ओय हाय मचाते हैं और शरीरसे स्वस्थ होने पर वह ही विषय-कषायकी उत्पात मचाते हैं; यह ज्ञानी अज्ञानीकी दशा है। २.

❁ समझको समझके लिये खर्च करना ही समझका सुन्दर और निर्मल बनकर सुखी बनना है। ३.

❁ समझको देहादि अन्यके लिये खर्च करना ही समझको व्यर्थ बरबाद करके दुःखी बनना है। ४.

❁ अपनी समझको अपने समझनेके काममें नहीं लगाय कर देहादि अन्य कार्योंमें निरंतर निर्गल लगाये रखना ही अपनी सत्य समझनेकी योग्यताको खतम कर देना है। ५.

❁ अपना स्वरूप अपनेसे कैसे छिपा रह सकता है? सिर्फ उलटी मान्यता ही अपने सत्य स्वरूपसे वंचित रखती है। ६.

❁ अपनी आत्माके सिवाय दूसरा कौन पदार्थ अपने ज्ञान श्रद्धानमें जंचता है? यह भली प्रकार अंतःकरणसे खास विचारणीय है। ७.

❁ “आत्म कल्याण दृष्टि” अपनावो। जीवन सारा खतम हो चुका है। ऐसा परम सिद्धांत समझनेका मौका परम सौभाग्यशाली जीवोंको ही मिलता है। ८.

❁ समझमें आवे, ज्ञानमें आवे ऐसा आत्म-द्रव्य है। कोई कपोल-कल्पना नहीं है। ९.

❁ देहादि पर द्रव्योंके सामने आत्म-समर्पण कर देना ही महा घोर पाप है। १०.

❁ अब तो अपूर्व भाव होना चाहिये। परवस्तु त्रिकाल अनुकूल नहीं होती; आप समझ लेता है कि 'हाँ अब ठीक' और 'अब बेठीक'। वस्तु ठीक-अठीकपनासे अतिक्रान्त है। ११.

❁ स्वाधीन दृष्टि बिना जन्म भर चर्चा करते रहने पर भी कभी निर्णय न हो सकेगा। इसलिये सर्व प्रथम अचिंत्य शक्तिमय आत्मस्वरूपको समझनेकी खास जरूरत है। १२.

❁ सत्य कभी नहीं फिरेगा, जिसको सत्यकी चाह है उसे ही फिरना होगा। १३.

❁ शुद्धोपयोगके अभावमें सम्यक्दृष्टिका ज्ञान तथा सम्यक्दर्शनके अभावमें सम्यक्-सन्मुख जीवका ज्ञान जरूर निज आत्म-निरीक्षण करता है तब अपनी कमियाँ स्पष्ट दिखते ही कोई अपूर्व सी स्थिति पैदा होती है। १४.

❁ वस्तु मर्यादा स्वीकारना ही जीवनकी सार्थकता है। १५.

❁ लकड़ी काटनेकी करोतीसे लोहा नहीं कट सकता, उसके लिये दूसरे प्रकारकी करोती चाहिये। स्थूल समझसे सूक्ष्म दोष नष्ट नहीं हो सकते। बलवान समझ चाहिये। १६.

❁ कर्तापनका जहर निकाले बिना ज्ञानकी अज्ञानता मिटेगी नहीं। १७.

❁ प्रमाण ज्ञान आत्मामें रुचि पैदा करता है। १८.

❁ एकसे लग जाना ही दूसरेसे छूट जाना है। यथार्थ श्रद्धानसे लग जाना, मिथ्यात्वसे छूट जाना है। यथार्थ ज्ञानसे लग जाना अज्ञानसे छूट जाना है। यथार्थ चारित्रसे लग जाना राग-द्वेषसे छूट जाना है। स्वको स्व माननेमें लगे रहना ही परको अपना माननेमें लगे रहनेसे छूटना है। १९.

❁ आप स्वयं भगवान होकर भी हीन बनता है यही अपराध है। २०.

❁ समझ नहीं सकता यह कैसा आश्चर्य है? आंख पर पट्टी बाँध कर कहे दिखता नहीं, दिखाओ! इसी प्रकार ज्ञानने परकर्तृत्वकी पट्टी तो बाँधी है फिर समझमें कैसे आये? २१.

❁ परम अमिट सत्य वीरतासे भरा है, उसके सामने असत् टिक ही नहीं सकता। सिर्फ सत्यकी एक अग्नि-कणिका यदि उस असत्यरूप रूईके असंख्य मनोसे अड जाय तो सत्यरूप अग्निके स्वभावमें परिणत करके ही रहती है। २२.

❁ सर्व समाधानस्वरूप अपनी आत्माको समझना और सत्य प्रकाशनेमें घबराना नहीं। जिसके पास असली चीज है वह क्यों डरेगा? २३.

❁ महिमा है सुगम चिदानंदकी! आत्माकी महिमा लावो, आत्माकी महिमा आये बिना परकी महिमा नहीं जाती। २४.

❁ आप ज्ञानका स्वभाव समझने लगे। अन्यको संभालना अनादि विपरीत अभ्यास है सो धीरे धीरे छूट जायेगा। २५.

❁ चार निक्षेप तो शुभ भाव हैं किन्तु (उनका) नकार करने वाला मिथ्यादृष्टि है और उनमें फंसा रहनेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। २६.

❁ तुम निरंतर आत्मकल्याणकी भावना करना। मनुष्यजन्म प्रायः तो खतम कर दिया है, अब थोडा सा रहा है वह भी विघ्न बाधाओंसे घिरा हुआ है, इसमें अपना कल्याण करना वीर आत्मा बिना होना कठिन है सो सावधान रहना। चारों तरफ आत्माके लुटेरे हैं। सो ज्यादा क्या लिखना; कोई साथी तो है ही नहीं, फिर किसका मुँह तकना है? विचार लेना। २७.

❁ सहज व्यवस्थित विश्वमें वह ऐसी कौनसी शक्ति विद्यमान है जो वस्तु स्वभावमें फेरफार करनेकी सामर्थ्य रखती हो? अतः स्वबलवत्तापन समझमें आनेसे ही परबलवत्तापन जायेगा और परबलवत्तापन जानेसे ही सहज तत्त्व समझमें आयेगा। और सहज तत्त्व समझमें आये बिना त्रिकाल कल्याण होगा नहीं। सो आत्मार्थीको जरूर विचारना उचित है। २८.

❁ इस गलन मिलन स्वभावी देहकी क्या तो अनुकूलता और क्या प्रतिकूलता? फिर भी चिंता कीजाय तो बतलाईये कौन सुनने वाला है? २९.

❁ ज्ञानकी पर्यायमें जिस समय यह निर्णय भया कि विश्व अपने स्वभावानुसार परिणमता तो है उसी समय अनंतके कर्तृत्वसे पिंड छुटा, ज्ञान सम्यक् भया यह सुकाल भया, सो विचारना। ३०.

❁ सत्य सिद्धांत प्रसिद्ध करनेका अवसर हो जरूर करना, डरना नहीं। ३१.

❁ वीतरागी सिद्धांतका त्रिकाल त्रिलोकमें कोई खंडन करने समर्थ नहीं है सो जानना। सत्य सिद्धांतको समझनेकी चेष्टा करना और अपना अमूल्य टाईम खोना नहीं। ३२.

❁ ज्ञानी हो या अज्ञानी हो अपनी रुचि अनुसार अपना उपयोग कार्य खोज लेता है। इसलिये रुचि बदलनेमें समझकी विशेषता चाहिये। ३३.

❁ द्रव्यदृष्टि बिना ज्ञानकी प्रमाणता नहीं; ज्ञानकी प्रमाणता बिना द्रव्यदृष्टि नहीं। ३४.

❀ जिस प्रकार पंथी रस्ते चलते थक जाता है; तालाबके किनारे थोड़ी देर वृक्षकी छायामें विश्राम करता है, इसी प्रकार विषय और कषायसे थकी आत्मा विश्रामके लिये उपवास करती है। जो विषय-कषायसे थक जाता है वही विश्रामके लिये उपवास करता है। रोटी खाना, त्यागना उपवास नहीं है सो जानना। ३५.

❀ विकल्प तथा देहादि पुद्गल तथा छवों द्रव्य अज्ञानीकी कुछ भी नहीं सुनते हैं। क्योंकि किसीको भी अन्यके सुननेकी तथा अन्यको सुनानेकी फुरसत ही नहीं है। एक अज्ञानी ही अपनी सुनाता फिरता है किंतु सुनता अज्ञानीकी कोई भी नहीं है। ३६.

❀ अज्ञानी वृथा ही क्यों दुःखकी गरज कर उसको बुलाता है। दुःख पूरा अभिमानी है, बिना गरज करे आता नहीं। सुख तो सहज सहज आता है, उसे गरज करनेकी जरूरत नहीं। किंतु इस मर्मको समझे कौन? ३७.

❀ बाह्यके कार्य आत्माको करने नहीं पडते, स्वयमेव होते हैं। आत्मा उनके प्रति मात्र श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करता है। इसी श्रद्धान, ज्ञान, आचरणमें साराका सारा सुख-दुःखका जीवन भरा पड़ा है सो विचारना। ३८.

❀ जीवको न तो भरोसा अपनी आत्माका है और न भरोसा अपने शुभाशुभ कर्मोंका (भाग्यका) है और न वस्तुस्वभावका ही है। जीवने जो मनमानी दृष्टि बनाली है, उसके अनुकूल होवे बाहिरके द्रव्य, तो हमारे बराबर बड़ा आदमी और सुखी कौन? और वें अनुकूल न हों, तो हमारे जैसा अधम और दुःखी कौन? सो भाई साहब! सारी दुनिया यह ठीक हो जाय, वह ठीक हो जाय, इस प्रकार ठीकके ठीकरेके पीछे बरबाद होकर चली गई! वस्तु तो अपनी स्वाभाविक मस्तीसे, उसी माफिक क्रमबद्ध परिणम रही है; और सहज और स्वयं परिणमते द्रव्यको जो परिणमाने वाला बनता है उसे कुछ शर्म तो होनी चाहिये! स्वयं परिणमती वस्तुओंको तुम दुबारा फिर क्या परिणमावोगे? सो विचारना! ३९.

❀ आत्महित वार्तामें उल्लास-संसार वार्तामें उल्लास! एक तो भव्य एक संसारी! ४०.

❀ हीन आत्मा अन्यकी भी हीनता चाहता है, महान आत्मा अन्यकी भी महानता चाहता है। ४१.

❀ परम सत्यको विश्वका भय नहीं। ४२.

❀ तुम वीतरागी सिद्धांतको प्राप्त करके अब चिंतामणिरत्न स्वरूप अमूल्यरत्नको खोना नहीं। ४३.

❁ विश्वका जो नियम है उसे समझना होगा, उसीके अनुसार मानना होगा, उसी माफिक आचरण करना होगा। अगर मनुष्योंकी मान्यताके अनुसार धर्म होवे तो अपने जचे अनुसार धर्म बना लेवे, अपने जचे अनुसार सुख बना लेवे; वस्तुस्वभावकी कोई पाबंदी नहीं रहे। किंतु जगतमें पोपाबाईका राज्य नहीं है; वस्तुस्वभावका साम्राज्य है और न्याय-नीति उसके रक्षक हैं। जो न्याय-नीति नहीं समझेगा, नहीं मानेगा, उसे दुःख भोगना ही पड़ेगा, विचार करो। ४४.

❁ आत्मार्थीको अपनी अंदरूनी परिस्थितियोंका खुल्ला ज्ञान होता है कि इस समय अपने द्वारा यह कार्य होवेगा अन्य कार्य नहीं। इससे कर्तृत्वका हठ नहीं होनेसे सहज-ज्ञान प्रमाण अनुसार रुचि होनेसे, रुचि अनुसार ही पुरुषार्थ होता है। हठ नहीं निभता है। काल्पनिक दृष्टिके जोरसे दोषोंकी बेपरवाही निभती रहती है। ४५.

❁ पागल आत्मा निशदिन परकी मालिक बन बन कर अपना जीवन खराब करके चली जाती है। जो ज्ञानी हैं अपना काम करके जाते हैं; अज्ञानी रोते रोते रहते हैं और रोते रोते ही जाते हैं। दिन-रात चाहनाकी ज्वालामें जला करते हैं। एक चाहना मिटी तो दूसरी तैयार। इसी प्रकार निरंतर चाहनाकी भट्टिमें अज्ञानीको सुलगना पड़ता है। दिनभर परका मुँह तकनेकी आदत पड़ गई है; सो अनुकूलता हो जावे तो नाचने लगता है, प्रतिकूलतामें माथे हाथ धरकर रोने लगता है। यह जगतके अज्ञानियोंकी दशा है सो जानना। ४६.

❁ दोषको दोष समझनेसे दोषकी शक्ति क्षीण होती है और ज्ञानकी सामर्थ्य बढ़ती है। ४७.

❁ शरीररूप पुद्गलकी सर्व रकमकी क्रियाका कर्ता-भोक्ता स्वामी स्वयं शरीर आप है; किंतु अज्ञानी यह नहीं स्वीकारता, आप उसका जबरन मालिक बनता है। इसीलिये धक्के खाता है। ४८.

❁ जीवके अंतःकरण तो एक है। वह परको दे चुका, दूसरा अंतःकरण होवे तो आत्माको देवे। ४९.

❁ ज्ञानी और अज्ञानी अपनी सुल्टी, उल्टी समझको ही कर सकता है, परद्रव्यको तो त्रिकाल नहीं कर सकता है। अपना हित करना अपने अधिकारमें है; फिर कौन मूर्ख है जो अपना बिगाडनेमें बहादुरी करेगा? ५०.

❁ ज्ञानकी स्याणप यही है कि वस्तु स्वयम् अपना कार्य करती दिख जावे। ५१.

❁ आत्मद्रव्य कृत-कृत्य है, और है वैसा जानना, मानना, आचरण करना सो ही ठीक करना है। ५२.

❁ अन्यके दोषोंका ज्ञान तो है, अपने दोषोंको नहीं समझना है। मानके वश अपना दोष दिखता नहीं है, अन्यका दोष ही दिखता है। आप गलती देखना तो जानता है; अपनी नहीं अन्यकी, यह मानका लक्षण स्पष्ट है। ५३.

❁ उलटा ज्ञान शैतानी किये बिना रहनेका है नहीं, सुलटा ज्ञान हित किये बिना रहनेका है नहीं। ५४.

❁ कोई भव्य जीव, निरंतर जिसको आत्मकल्याणकी धगस लग गई है, वह रात दिन अपने कल्याणकी भावना करता है; उसका अवश्य कल्याण हो जाता है। ५५.

❁ जो कुछ जैसी व्यवस्था बननी है वैसी बनेगी, सिर्फ यह हर दम विचार रखना कि यह शरीर रूपी जडपुद्गलकी धरोहर मेरे पास है। उसको, मैं ज्ञान हूँ इसलिये मेरा काम समझना है; किंतु इसका धनी बनना नहीं है। परकी धरोहरका धनी बनना मेरे लायक काम नहीं। अब ऐसी दशा करूँ जिससे कभी परकी धरोहर रखनी भी न पड़े सो विचारना। ५६.

❁ सर्व सार बात यह है कि जब तक विश्वका कण कण अपना काम आप करता नहीं दिख जाता तब तक मिथ्यात्व बैरी हटनेका नहीं और जन्म-मरण छूटनेका नहीं। यह त्रिकाल डंकेकी चोट परम सत्य है। कोई माने या न माने वह अपनेमें स्वतंत्र है। ५७.

❁ आत्मा आप दुष्काल पटकता है; ज्ञानी कभी अपनी आत्मामें दुष्काल नहीं पटकता है सो विचारना। कार्य करनेमें कायरता किस कामकी; महान वीरता रखना ही आपका काम है। ५८.

❁ मालकी (आत्माकी) रक्षा छोड़, विकारोंको निकालने जाना महान भूल है। जैसे दो कुत्तोंके बीच पड़े हुवे मावेके पेड़ोंकी रक्षा न करके, एक कुत्तेके पीछे भागना, दूसरी तरफसे माल दूसरे कुत्तेका खा जाना, सो विचारना। वीतरागीमार्ग संसारसे सर्व प्रकारसे भिन्न है सो जानना। ५९.

❁ क्या कहा और क्या लिखा जाय, दोनोंमें डट कर सहज युद्ध छिड रहा है कि— मैं जैसे मानता हूँ वैसे ही विश्वको होना ही पड़ेगा; विश्व प्रसिद्ध करता है कि तुझे सुखी बनना है तो हम हैं वैसे तुझे मानना ही पड़ेगा। वह कहता है कि हम माननेके नहीं; वह प्रसिद्ध करता है कि हम पलटनेके नहीं। ६०.

- ❁ वीरोंका सारा विश्व सीरी है, कायरोंका सीरी (सहायक) कोई है क्या? ६१.
- ❁ तत्त्व तो जो है वैसा ही है। किसीकी मान्यता पर द्रव्य निर्भर नहीं। ६२.
- ❁ उपयोग किये बिना निर्णयका कोई मूल्य नहीं। ६३.
- ❁ स्वसे एकत्व छूटनेका नहीं, परसे एकत्व होनेका नहीं। ६४.
- ❁ बाह्य त्यागसे आत्महित मानना अर्थात् बाह्य क्रियासे आत्महित मानना घोर मिथ्यात्व है। ६५.

❁ परके ऊपर किसी प्रकारके स्वामित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्वका हस्तक्षेप करनेसे परका तो कुछ बिगडेगा नहीं किंतु आत्माके ज्ञान पर तो सीधी थप्पड पडे बिना रहनेकी है नहीं। ६६.

❁ विश्वकी वस्तुओंका किसी भी प्रकारसे परिणमन होवे, हमने जो दुःखी बननेकी आदत डाल रखी है यह मूर्खता है। हम दुःखी बने ही क्यों और हमारे दुःखी बननेसे जगतकी वस्तुएँ हमारे अनुकूल थोडे ही हो जावेंगी? इसलिये वस्तुके स्वरूपको समझनेकी जरूरत है कि मेरा क्या स्वभाव है और देहादि जड वस्तुओंका क्या स्वभाव है तथा अज्ञानी जीवोंका क्या स्वभाव है, वें अपने स्वभावमें मस्त हैं और मैं मेरे स्वभावमें मस्त हूँ, मैं दूसरेके स्वभावको देखकर दुःखी क्यों बनूँ? ६७.

❁ जब यह शरीर परिणमता है तो मेरा श्रद्धान ज्ञान क्या मानता है, क्या जानता है? इस शरीरकी क्रियाओंको आत्मा करता है ऐसा मानता जानता है या शरीर स्वयं अपनी क्रियाओंको आप करता है ऐसा मानता जानता है तथा इन दोनों मान्यताओंमें कौनसी प्रमाणिक और कौनसी अप्रमाणिक है? इसका निर्णय करो। फिर झूटका अपने आप अनादर हो जायेगा और ज्ञान निर्मल हो जायेगा। सिवाय उल्टा सुल्टा जानने और माननेके और आत्मा कर ही क्या सकती है? विचारना, इसी पर सारा जीवन निर्भर है। ६८.

❁ वस्तुओंके परिणमनको देखकर उनका कर्ता बननेकी बहादुरी निरी मूढता है।

❁ आत्म विधान बिना परका निषेध नहीं। ७०.

❁ मूर्खको अपनेमें माल दिखे नहीं किंतु जडमें माल दिखे और जडकी मालकियत दिखे नहीं। इसलिये जड सूना दिखे, तब उधर गये बिना रहे नहीं। तब रोके भी कौन और रुके भी कैसे? यह प्रथम जीवद्रव्य संबंधी भूल है और दूसरी पुद्गलद्रव्य संबंधी भूल है सो जानना। क्योंकि अपनेमें माल समझे तो फिर जडकी तरफ जानेकी जरूरत ही क्या है और

जड मालकियत जडमें समझे; उसकी स्थितिका उसे ही कर्ता-भोक्ता माने तब वहाँ जावे ही कौन? सो विचार करना। ७१.

❁ मैं तो सर्व प्रथम यही समझता हूँ कि जिसको व्यवहारिक ज्ञान ही नहीं यानी बात बातमें दुःखी बनना, बात बातमें चिन्ता करते रहना; ऐसे जीवोंका कल्याण कैसे हो सकता है? विचार करना। सारा विश्व पलट जावे तो हम दुःखी क्यों बने और हमारे दुःखी बननेसे होता ही क्या है? सो जानना। ७२.

❁ ज्ञानी अपने भीतर सावधान वर्तता है अज्ञानी बाहर सावधान वर्तता है। ७३.

❁ जो निश्चित समझता है वही निश्चित है। ७४.

❁ आपको काय, हड्डियाँ प्रिय हैं उसके लिये सारे विश्वकी अनुकूलताकी जरूरत बना रखी है, यह सर्वथा असंभव है। आप चाहे महा दुःखी बनते रहें, कोई विश्वमें सुननेका है नहीं। ७५.

❁ हमें अपने विचार ऐसे पवित्र करने हैं जिसका दूसरा नमूना न मिल सके, तभी जन्मना सार्थक है। नहीं तो येनकेन प्रकारसे पेट तो अपने बच्चों सहित एक कुतिया भी भरती है, फिर विशेष बुद्धि पाकर क्या किया? ७६.

❁ अहो! यदि अपने हृदयमें पवित्र भाव बढ़ानेकी उमंग उठे तो कितना कार्य आगे बढ़ जाता है? लगता कुछ भी नहीं है। क्या कमी है इस चेतन द्रव्यमें? पूर्ण आनंदसे भरा है। रस नहीं आया चेतनके स्वभावका। और परको जानना स्वभाव ठहरा और उसको (परको) अपना मान बैठा, दृढ-श्रद्धा जम गई। अब दुःख पाता है किंतु छूटती नहीं, बस यही महा रोग है। ७७.

❁ परकी मालिकाईमें अनन्त जीव मर मिटे, किन्तु परकी मालिकाई किसीके हाथ आई नहीं। बाहिरमें सब जड चेतनके संयोग—पूर्व कमाईका कार्य है और उनको देखकर जो भाव करता है वह अब नई कमाई करता है; सो अच्छी तरह तुम विचार लेना। ७८.

❁ यह विश्व तो अपने स्वभावानुसार परिणमेगा ही; तुम्हें दुःखी बनना है या सुखी? इसका विचार रखो। ७९.

❁ जो पर मुँह तकते हुए अपने ज्ञान-धणीका राजी खुशी गला घोटते फिरते हैं, वह अपने जीवनको कैसे संभाल सकते हैं? ८०.

❁ श्रद्धान बिना सिर्फ ज्ञानसे अर्थग्रहण शक्तिरूप उपलब्धि नहीं होती, इसलिए ही मोक्षमार्गमें प्रथम ज्ञानकी मुख्यता नहीं होकर श्रद्धानकी मुख्यता है। ८१.

❁ जिसको आत्म प्यारा वह सबसे न्यारा। निश दिन अपनी आत्माकी संभाल करना जब ही रह सकता है जब उसका स्वरूप समझमें आ जावे। अंदाज लगाय कर कल्पनासे कोई कार्यकी सिद्धि नहीं है इसलिये समझवान है वही आत्मा है। ८२.

❁ पारिवारिक आदि तथा अन्य असुविधाके समय तो जरूर आत्माके निकट आना चाहिये। ८३.

❁ अहो ज्ञान! जब वें सब अपने अपने स्वभावमें रम रहे हैं और तुम्हारी नहीं सुनते, तो तुम भी अपने स्वभावमें रमण करो। ८४.

❁ जो अपने आपको परका मालिक समझता है या परका कर्ता-भोक्ता मानता है वह महान भूल करता है। ८५.

❁ शरीरके लिये चिंता करना आत्माका खून करना है। ८६.

❁ दोषरूपी पाप, प्रायश्चितरूप पश्चात्तापकी ठोकर खाये बिना आत्माके सिर पर चढ जानेसे, आत्मामें ज्ञानका गला घोट देते हैं। ८७.

❁ जगतको क्या देखना है? अपना हित-अहित ही बुद्धिमान लोग सोचकर पार उतर जाते हैं। जो सोचते रहते हैं, जगतकी तरफ मुँह ताकते हैं वें डूब जाते हैं। जगत राजी रहनेका है नहीं; यह तो निरंतर जलता ही रहेगा। सारी जिन्दगी बरबाद कर दो तो भी जगतको शांति नहीं। अब अपना जिसमें हित हो वही कार्य करो। दूसरोंकी तरफ मुँह मत तको। ८८.

❁ आत्मा बिगाडनेका साधन पंचम आरेमें बहुत है, किंतु वीर आत्मा बिगाडनेके साधनोंसे बचकर रहती है। हम किसी भी हालतमें अपनी आत्माको बिगाडना विलकुल पसंद नहीं करते हैं। चाहे सारी दुनिया हमारे विरुद्ध हो जावे हम हर हालतमें अपनी आत्माकी रक्षा करेंगे। ८९.

❁ हमारा जीवन बिगड गया तो हमारा धन, जन, परिवार हमारे किस कामका है? हमारे शरीरकी निरोगता भी हमारे फिर किस कामकी है? हमारा जीवन सुधर गया तो धन, जन, परिवार, शरीर आदि सारे बिगड जावें तो भी कुछ परवाह नहीं है। ९०.

❁ जब यह जंच जायेगी कि सूर्य-चन्द्रवत् यह जगत हमारा फेरा नहीं फिरेगा, तब सहज ही अपनी आत्माकी तरफ आना पडेगा। किसी वस्तुके स्वभावमें किसीका जबरन धक्का

नहीं चल सकता है। जगतको अज्ञानीजन निरंतर फेरफारमें ही स्वयं ८४ चौरासीके चक्कर लगाते रहते हैं और कर्तापनका अभिमान करके अनंत संसार पोषते रहते हैं। आज तक इस जीवने परके कर्ता बननेका और परके भोक्ता बननेका दुर्भाग्य पैदा किया और अब भी कर रहा है। जब तक कर्तापन नहीं छूटेगा, जन्म-मरणका अंत नहीं आनेका है। ९१.

❁ अज्ञानीको अनेक प्रकारकी अनुकूलता चाहिये और वह भी निरंतर चाहिये; यह कैसे हो सकता है? सारा विश्व तो भगवानके भी अनुकूल नहीं होता है, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? हम दूसरोंको अनुकूल बनाते क्यों फिरे, अपनी आत्माको ही अनुकूल बना लें तो क्या हर्ज है? पशुको कहे “तू हट जा” तो आप स्वयं क्यों नहीं हट जाता है? मनुष्य जन्म अपना काम बनानेके लिये मिला है। ९२.

❁ मनुष्य वही है जिसके विचार सुन्दर हों और जो सुन्दर कार्य करे तथा सुन्दर शिक्षा देवे एवं निरन्तर सुन्दर वार्ता करे। विपरीत बात एक क्षण भी जिसको बर्दास्त नहीं वही जीव है। व्यर्थकी वार्ता तथा अशांतिकी वार्तामें कितना अहित है तथा निकम्मा समय बितानेमें कितना पुण्य खतम होता है? आज किसीको भी चिंता नहीं है। क्या यह ऐसा मनुष्य जीवन मुफ्तमें ही मिला है, कौन विचार करता है? यों ही सारा दिन इधर-उधर भटकनेमें ही जा रहा है। ९३.

❁ जो अपने भावोंकी गतिविधिको नहीं समझता; वह निरंतर अपनी आत्मामें नुकशान पैदा करता है और निरंतर जीवनको (हित) नहीं कर सके ऐसे परभावोंमें फंसफंस कर अपना बिगाड़ करता ही रहता है। ९४.

❁ मर्म समझनेकी चेष्टा करना ही आत्मामें महान कार्य करना है। ९५.

❁ आत्मामें जब समझनेकी योग्यता रहती है तब तो यह परकी तरफ झांखता झांखता काल गमा देता है। जब समझनेकी योग्यता चली जाती है तब दुःखसे घबराकर पश्चात्ताप करता है। फिर कुछ नहीं बनता। अतः अवसर रहते रहते अपना कार्य करना उचित है। ९६.

❁ निजानंदमें निरंतर टिकनेवाले इस चेतन द्रव्यका उस निरंतर गलमिलकर भटकनेवाले पुद्गल द्रव्यसे कैसा संबंध? ९७.

❁ आत्महितकी भावना ही अपना जीवन है, बाह्य तो पुण्यपापानुसार स्वयं होता ही रहता है; किसीके किये होता नहीं। यदि किये होवे तो फिर प्रतिकूलता आने देवे ही कौन? स्पष्ट बात है। कोई माने या न माने। किसीकी मान्यता पर कोई वस्तुस्वभाव नहीं है। ९८.

❁ देखो मनुष्य जन्म केवल शरीर पोषण और परिवार पोषणमें ही घटतीको पूरा करनेमें लग रहा है तब बेचारी आत्माको कौन पूछे ? सारे दिन और सारी रातभर घाटा घडियों दूसरों ही लाग रयो है; कुछ भी सूझे नहीं है। जिसके पास सर्व सामग्री है वह भी घाणीके बलदकी ज्यों निरंतर न जाने क्या करना चाहता है ? किसमें लग रहा है ? कुछ भी पता नहीं है ! ९९.

❁ दिन दिन जो आगेका मकान बन रहा है, उसीमें जाना है। खाली हाथ जानेसे कौन चीज भेज देगा ? विचार करना जरूरी है। १००.

❁ किसी भी कारणसे कोई शुभकार्य नहीं हो सके तो अपना परिणाम विगाड कर खराब करना किसी भी प्रकारसे अच्छा नहीं। अपने परिणामोंका मूल्य ज्यादा है या बाहिरके कार्यका मूल्य ज्यादा है ? बाहिर कार्य पर तो अपना अधिकार नहीं; हाँ ! अपने भाव अच्छे रखो, कार्य होवे या नहीं होवे। १०१.

❁ कैसी भी परिस्थिति होवे, घबराने तथा दुःखी बननेसे तो उलटी हीनता ही आती है और सुननेवाला कोई है नहीं; तब व्यर्थ आत्माको विगाड कर दुःखी बननेसे क्या फायदा ? बाहर क्रिया तो पुण्य-पाप अनुसार ही होती है, आत्माका कोई अधिकार है ही नहीं। चाहे जितना आत्मा हा हू मचावे, सर्व ही व्यर्थ जाता है। उलटा अपनी आत्मा विगाड कर, पुण्य नष्ट करके पाप उपार्जन करता है। सो वीरता पूर्वक दृढ़तासे प्रसन्नचित्त ऋण चुकाना जरूरी है। १०२.

❁ “अपना कार्य करनेकी दृढ़ता, नरक जैसी विषमताको भी किस प्रकारसे कुछ नहीं समझ कर कैसे अपना कार्य कर लेती है ? यह समझने योग्य है”। १०३.

❁ “चित्तकी एकाग्रतापूर्वक, भली प्रकारसे, विकल्पोंके स्वांगोंका कौतूहल ! समझनेका उपयोग-रूप पुरुषार्थसे भेदविज्ञानका मार्ग सरल हो सकता है। जरा गंभीरतासे विचार करना”। १०४.

❁ “निकट भव्य तो “संकेत” मात्रसे समझकर अपना अन्तःकरण टटोलकर कार्यसिद्धि कर लेते हैं। भोले जीव मात्र शुभ वार्ता ही वार्तासे प्रसन्न होते रहते हैं। अपने कार्यका लक्ष नहीं रहनेसे समय व्यर्थ चला जाता है”। १०५.

❁ “बने बनाये विश्वमें इस व्यर्थके कर्तृत्व कोलाहलकी क्या जरूरत है ?” १०६.

❁ विश्व-मर्यादा तोड़ परके कर्ता बनने अनेक आये, किंतु सबके सब धक्के खा ‘खा’ कर चले गये, कुछ भी सिद्धि नहीं मिली। १०७.

❁ “देखो! जीवोंको परकी अनुकूलता चाहिये है तथा अनुकूलता भी सर्व प्रकारकी चाहिये है और सदा ही अनुकूलता रहनी भी चाहिये है, यह है अपने अंतःकरणकी दशा। शांति कैसे मिले?” १०८.

❁ कार्यविधि तो स्वरूप समझनेकी तथा अपनी आत्माको अपनाने की है और कुछ भी इधर उधर करनेकी आत्मामें कार्यविधि नहीं है। १०९.

❁ विश्व नियमको समझो, बिना समझे तो धक्के ही खाने पड़ेंगे। चाहे कितना ही पढ़ा लिखा हो, यह तो मार्ग ही दूसरा है। अज्ञानियोंकी मनमानी यहाँ चलनेकी है नहीं। वीतरागी मार्ग ही जुदी प्रकारका है। ११०.

❁ “अन्तःकरणकी परिणतियोंको टटोलनेकी आदत सर्वश्रेष्ठ प्रथम उपाय है। भाग्यशाली ही टटोल सकता है।” १११.

❁ सम्यक्दर्शन सत्य समझका फल है। सम्यक्दर्शनका लक्ष मैं स्वयम् अखंड अभेद आत्मा हूँ। ११२.

❁ ज्ञानकी बुद्धिमानी सांसारिक विषयमें लगानेसे ज्ञानकी आमदनी घटकर ज्ञान सामर्थ्य घटनेसे पूंजी पूरी हो जाती है। इसी प्रकार पुण्य-सामग्री मस्त भोगते रहने पर नई पैदा नहीं होनेसे, पाप साम्राज्य छा जाता है। अतः ज्ञानसामर्थ्यको किस प्रकारसे खर्च करना एवं पुण्यको किस प्रकार भोगना, इसमें विचारनेकी जरूरत है। ११३.

❁ “विश्व मर्यादा आपको बदलनी है या स्वयम् बदलतीको समझनी है।” ११४.

❁ निकट भव्य निरन्तर विचार करते हैं कि यह बाह्य देहादि क्रिया क्या मैं कर सकता हूँ? यदि कर सकता हूँ तो कैसे कर सकता हूँ? यदि नहीं कर सकता, तो कैसे नहीं कर सकता? इसका अपने अंदरसे सम्यक् प्रमाण करते हैं। ११५.

❁ आत्मामें श्रद्धा-चारित्र आदि अनेक गुण अवगुणरूप परिणमते हैं किंतु एक ज्ञानगुण ही अवगुण रहित होनेसे, इस ज्ञानगुणके प्रतापसे सर्व गुण अवगुण रहित हो जाते हैं। यह कोई ज्ञानकी खास महिमा है। ११६.

❁ अलौकिक सेट! आरंभ, परिग्रहसे बचकर कार्यकारी सादा सीधा जीवन पसंद करते हैं। अतः आदर्श जीवन लाओ। ११७.

❁ अपनी चैतन्यशक्तिका भरोसा यही वैराग्य है। ११८.

- ❁ “अन्तःकरणसे स्वीकारी भूल रहे कहाँ ? नहीं स्वीकारने पर जावे कहाँ ?” ११९.
- ❁ “साधारण भूलों पर हमारा लक्ष नहीं है। कार्यकारी असाधारण भूल पर लक्ष गये बिना नहीं रहता।” १२०.
- ❁ साधारण साधारण बातों पर नाराजी दिखाना तो तुच्छ व्यक्तियोंका कार्य है, मैं ऐसी बातोंका घोर विरोधी हूँ। १२१.
- ❁ भावभासन बिना कोई शब्द या लेख कार्यकारी नहीं बन सकते हैं। १२२.
- ❁ आत्म-कार्य प्रभु बनना है अर्थात् अपनी बनी बनाई प्रभुता व्यक्त करना है। यह वैसे तो साधारण सी ही बात है किन्तु आड़ मारने पर असाधारण बन जाती है। इस जीवको अनेक प्रकारसे आड़ मारनी तो आती है, किन्तु कार्य-पद्धति नहीं आनेसे, उन्मार्गमें मधुर रूपसे प्रवर्तता रहता है। १२३.
- ❁ “इन बाह्य विषयोंको ज्ञान तक ही सीमित रखिये, उनको अपनानेके लिये अपनी अंतर बाहें मत फैलाइये, इसमें बड़ा भयंकर धोखा है। आपको अपनानेके लिये बाहें पसारनी है तो अपनी ओर पसारिये यहाँ धोखा नहीं होगा। १२४.
- ❁ इस जीवको जड़की अनुकूलताकी यों जरूरत है कि यह बेचारा अत्यंत गरीब है और अनुकूलता भी सर्व प्रकारकी यों चाहिये है कि इसके पास अपना कुछ भी नहीं है। तथा यह अनुकूलता भी सदाके लिये यों चाहिये है कि इस जड़के सिवाय इसको और किसीका शरण भी नहीं है, सो उचित ही है। किन्तु यह सर्व तो पुद्गल द्रव्योंकी कृपा पर ही निर्भर रहा। परद्रव्यों सामने मुँह तकना कितना सुन्दर दृश्य है। यह तो उस वक्तकी फोटू उतरे तो ही देखने को मिले। ‘स्वयं गलन मिलन स्वभावी देहादि द्रव्योंकी क्या तो अनुकूलता और क्या प्रतिकूलता?’ १२५.
- ❁ “व्यंग चालू रखनेकी आदत आत्मार्थी घरानोंमें नहीं हो सकती; अक्षर ठीक नहीं तो व्यंग, ड्रेस अपने अनुकूल नहीं तो व्यंग, अशुद्ध लिखा गया तो व्यंग, कहाँ तक लिखा जाय, व्यंगका कोई पार नहीं; यह गंभीरता नाशक विष है। जो कि लत पड़ने पर हालत कभी नहीं सुधरती है; आत्महित कोसों दूर भाग जाता है। अभिप्रायः हितकर होना जरूरी है। देखो व्यंग करनेवाला वास्तवमें अपना ही व्यंग करता है। १२६.
- ❁ “आपके पास ज्ञान है सो अपना हित करनेके लिये है या आत्माको हैरान करनेके लिये है; इसका बड़ा गंभीर मर्म है।” समझने की चेष्टा करना।

“स्वरूप समझमें आये बिना, आत्म-स्थिति अधिकारमें नहीं रहनेसे यह अनाधिकृत वृत्तियाँ स्वच्छन्द पनप पनपकर घट्ट हो जाती हैं। वहाँ आत्माकी फिर कुछ भी नहीं चलती है। यहाँ भयंकर धोखा आत्मा खा जाता है।”

यह उपरोक्त दो वाक्य सुदर्शनचक्रवत् कार्य करनेवाले हैं। यदि अन्तःस्थलमें पहुँच जावें तो जरूर सफल होंगे। १२७.

❁ समझ सुखी बननेके लिये आती है, समझ सुखी बनना जानती है। बिना समझ सुखी बना नहीं जा सकता। जो दुःखी है वही सुखी बनने आता है। पूर्वकी समझ दुःखी है, उत्तरकी समझ सुखी बन सकती है। जो दुःखी नहीं है उसे सुखी बननेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि वह तो दुःखको सुख मानकर मस्त बन बैठा है। उसके सामने समझकी बातें करना व्यर्थ है। समझका स्वरूप समझे बिना सुख नहीं। १२८.

❁ “ज्ञानियोंने आत्माके अनन्त गुणोंको न लेकर केवल एक ज्ञानको ही पकड़ा है कारण कि ज्ञान समझ गया तो सारा द्रव्य ठीक हो गया।” १२९.

❁ “ज्ञानमें आत्माकी पूछ (महत्ता) होती है, अज्ञानमें राग-द्वेषरूप विकल्पोंकी पूछ होती है। विकल्पोंकी पूछ ही अज्ञानता है। अज्ञानता कहो या विकल्पोंकी पूछ कहो एक ही बात है। सम्यक्ज्ञानके अभावमें विकल्पोंकी ही पूछ होती है।” १३०.

❁ आत्माकी दृढ़ रुचि है तो राग होता फिरे उसका कोई मूल्य नहीं है। १३१.

❁ आत्मामें ज्ञानगुणकी समझ पर्यायकी कार्यकारी प्रधानता यों मानी गई है कि वह स्व-परका स्वरूप समझकर अपनी आत्माको सम्यक् निर्णय प्रदान करती है। इससे आत्मामें सहज ही सर्व गुण अपने अपने नियमानुसार सुलटनेसे आत्माको स्वाभाविक शांतिका वेदन होता है और सारा विश्व अपना अपना कार्य करता हुआ दिखनेसे कर्तापना मिटकर सहज ज्ञातापना रह जाता है। १३२.

❁ आत्मार्थी सज्जन अपने हितकार्यके अवसरकी पन्द्रह दिनकी सीमा नहीं बाँध सकते हैं, क्योंकि एक क्षणका भरोसा नहीं, क्या से क्या हो जाय, फिर अमूल्य अवसर बीत जाने पर न जाने कैसी स्थिति आ पड़े? आत्मार्थी, ज्यादा अवसर मिलनेकी अडीकमें, (राहमें) आया अवसर खोनेकी भूल कभी नहीं कर सकते हैं। उत्तम और हितकर कार्यके लिये महूर्त या अडीक हानिकर भावना पैदा करती है। १३३.

❀ यह मिथ्यात्व दोष समझनेसे ही जायेगा। १३४.

❀ आत्मार्थीमें अलौकिक सज्जनता होती है जिसका हरेक अनुमान भी नहीं कर सकता, आत्मार्थी रागको लंबाना कभी पसंद नहीं करता क्योंकि हिताहितका ज्ञान निरन्तर वर्तता है। अपने विचारोंके विरुद्ध होने पर भी द्वेष नहीं पैदा कर सकता, उपेक्षाबुद्धिसे ही वर्तता है। यदि योग्यता दिखे तो सुधारके भाव आ सकते हैं। १३५.

❀ स्वरूप समझना आत्माका पौष्टिक आहार है। १३६.

❀ भोले जीव बेचारे तन, धन, परिवारके भरोसे धोखा खा जाते हैं और अन्धाधुंधमें दुःखोंकी टोकरे खाते खाते चले जाते हैं। १३७.

❀ जिस प्रकार कंजूसको धनका खर्च करना बरदाश्त नहीं, उसी प्रकार आत्मार्थीको उपयोगका दुरुपयोग बरदाश्त नहीं। १३८.

❀ पुद्गलका बहुरूपियापनका स्वांग देखकर चैतन्य आत्मा चमकता है, अरे! पुद्गलिया! हमसे यह क्या? किसी और अज्ञानीको देखो। १३९.

❀ भीतरकी एक हकार बाह्य अनंत हकारसे बलवान है। १४०.

❀ आत्म भोजन समझ है। सम्यक् समझ अमृत भोजन है। और मिथ्या समझ विष भोजन है। १४१.

❀ आत्माका काम ही स्वरूप समझना, स्वभाव समझना, अपनी गलती समझना है। अन्य कुछ करने जाना नहीं। १४२.

❀ “कोई रक्तनेत्र देखकर कह दे कि यह तो क्रोधमें मस्त है तो क्या इसमें जीवकी नेत्राधीनता सिद्ध हुई, या क्रोधकी प्रसिद्धिका निमित्त रक्तनेत्र हुआ? इसी प्रकार आत्माके विभाव भावोंकी प्रसिद्धिका निमित्त कार्माण वर्गणारें हैं, वे प्रथम गुणस्थानसे लेकर १४ गुणस्थान तक आत्माके भावोंकी प्रसिद्धि करती हैं। इसको भोले जीव कर्माधीनता मानकर अपना दोष दूसरों पर मढ़ देते हैं।” १४३.

❀ झगडा बढनेका प्रकार (कारण) अपने दोष नहीं दिखना है और झगडा घटनेका प्रकार अपने दोष स्पष्ट स्वीकारना है। १४४.

❀ “अपने पास ज्ञान है सो अपना हित करनेके लिये है; विश्वकी धूल छाननेके लिये

नहीं। अतः हित करना है तो अपने ज्ञानके सामने निरन्तर विश्व-मर्यादा रखो, जरूर समाधान हो जायगा।” “घरकी खांड कडकडी, गुड चौरका मीठा।” “अपनी वस्तु अच्छी नहीं लगती, पराई वस्तु अच्छी लगती है तो जरूर दुराचार है।” १४५.

❁ “वस्तु-मर्यादा नहीं स्वीकारनेका फल ही दुःख है। आत्माकी पर द्रव्योंके बांधे पड़नेकी आदत बड़ी बुरी तरह पड़ी हुई है। जब तक अपना स्वरूप समझमें नहीं आ जावे मिथ्या श्रद्धान छूटना सर्वथा असंभव है। आत्मार्थी निरन्तर खाते पीते, उठते बैठते; अपने ज्ञानके सामने मर्यादा रखते रहते हैं। इससे अमर्यादित परिणति कमजोर होती जाती है।” १४६.

❁ सारा विश्व अपना अपना कार्य करता दिखना ही ज्ञानका अपना कार्य करना शुरु करना है। और परका कार्य करना (कर्तृत्वबुद्धि) छूटना है। १४७.

❁ आत्मार्थी विरोधीका अपमान नहीं कर सकते हैं। १४८.

❁ परको पर समझ लिया तब फंसना नहीं रहा। स्वको स्व समझ लिया तब हटना नहीं रहा। १४९.

❁ मनमानी समझ महा अनर्थ पैदा करती है। वास्तविक समझ महान जीवन प्रदान करती है। १५०.

❁ अपनी समझका सदुपयोग करना सीखना होगा। १५१.

❁ “आत्माका सारा विषय ज्ञान गम्य है। भावभाषन बिना कल्पनाओंका कोई मूल्य नहीं। निरन्तर स्व और परके स्वरूप पर विचार करते करते भेदका विशेष ज्ञान होनेसे ही अनेकान्त समझरूप अमृत वर्षता है। अपनी अपनी परिभाषामें ज्ञानीजन भीतर रहस्य स्पष्ट कर गये हैं किन्तु भावार्थ एक ही रहता है। परद्रव्य प्रति ममत्व, स्वरूप समझमें आये बिना छूटनेका नहीं, अतः निरन्तर अपने ज्ञानके सन्मुख मर्यादा रखनेकी टेव पड़नी जरूरी है। १५२.

❁ आत्मार्थीका उपयोग इधर उधर जाने पर भी रुचिका लक्ष आत्मा होनेसे पुनः पुनः आत्माकी ओर झुकता है, तो बीचमें शुभ भाव सहज आये बिना रहते नहीं, किन्तु शुभ भावको लाया नहीं जाता इसका आप प्रयोग करके देख सकते हैं। ज्ञानियोंके वाक्योंका अपने अन्दर प्रयोग किये बिना, वास्तविकता नहीं भाषती है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्दाजन कल्पनाका यह मार्ग नहीं है। १५३.

❁ विशुद्ध अन्तःकरणकी आवश्यकता है। १५४.

❁ अपने समयसे पहले किसीका कोई भी कार्य नहीं होता और अपने समय पर हुए बिना रहता नहीं; यह वस्तु-मर्यादा है। १५५.

❁ अज्ञानीजन तन, धन, परिवारको कंठस्थ नहीं करते, अंतस्थ ही करते हैं। १५६.

❁ समझमें आ जाना ही प्राप्तका प्राप्त होना है। १५७.

❁ “प्रभु है जरूर” किन्तु मिलनेकी विधि समझमें आनेसे ही मिलना होगा। साधारणसे बड़े आदमीसे मिलनेमें अनुकूल विधि अपनानी पड़ती है, यहाँ तो प्रभुसे खास मिलना है। १५८.

❁ जीवके अच्छी भावना उठती है तो समझना चाहिये पुण्यका उदय है और पापका नाश है। यदि विपरीत भावना उठती है तो पुण्यका नाश पापका उदय है। १५९.

❁ आत्मार्थीको उपयोग क्या कार्य, कैसे करता है; यह स्पष्ट सर्व प्रथम समझना होगा, क्योंकि उपयोग ही पुरुषार्थ है; यही लक्षण है; यही कर्तव्य है। जब तक अच्छी तरह उपयोग समझमें नहीं आया, तब तक कार्यविधि नहीं आ सकती है। १६०.

❁ “कोई कैसा ही बुरा व्यवहार करे, बदलेकी भावना हितकर व्यवहारोंसे होनी चाहिये।” आत्मार्थी दूसरोंके दोष देखकर, उल्टे हितकी भावना उनके प्रति विशेष बढ़ाते हैं; विरोध तो कर ही नहीं सकते क्योंकि अपने जीवन बिगडनेका भय निरंतर उनको रहता है। १६१.

❁ “व्यर्थ समय बरबाद करना जीवन बरबाद करना है।” १६२.

❁ आत्मार्थी सज्जन मर्यादित विश्वको सामने रखकर अपनी आत्माको समझनेकी अर्थात् मिलनेकी भावना रखकर ही कार्यसिद्धि कर सकते हैं। साधारणजनके पास भी मर्यादा लेयकर जाना ही कार्यकर होता है। तो फिर अपनी आत्मासे मिलना तो मर्यादा पुरुषोत्तम बनना है, विचार करना। विश्व-मर्यादा स्वीकार करनेका साहस कीजिये। फिर वह धन्य घडी निश्चय ही नजदीक है। १६३.

❁ “वस्तुस्वभावका ज्ञान होनेसे रुचि सहज अपनी ओर झुक जावेगी।” १६४.

❁ उपयोग बिना हर्ष-विषाद नहीं, उपयोग बिना जीवन नहीं। अपनी समझका उपयोग करके ही दुःखी-सुखी बनता है, प्रत्यक्ष प्रमाण है। सदुपयोग या दुरुपयोग अपने श्रद्धान-ज्ञानरूपी जीवनका निरंतर चलता है। फिर भी जीव नकार करता है सो आश्चर्य है। १६५.

❁ पुरानी समझको कैन्सल करके, नई समझ उपयोग द्वारा ही रची जाती है। सारे

विश्वमें—यानी जजोंको भी वकील समझाते हैं अपने अपने पक्षमें जजकी समझ आ जानेके लिये, ज्ञानीजन भी उपदेश ज्ञानको देते हैं समझनेके लिये। समझ पलट जाय तो सारी आत्मा ही पलट जाय। १६६.

❁ आप अपनी आत्मासे निरंतर पूछते रहिये कि आत्मा तू “समझदार है”। यह तो ठीक, किन्तु तूने समझकर किया क्या ? इसका क्या जवाब आता है, उस पर विचार कीजिये। १६७

❁ “आत्माके भाव उत्थान और अनुत्थानकी ओर निरन्तर तत्त्वकी प्राप्ति बिना रहते ही हैं। दो प्रकारकी राक्षसी आत्मघाती वृत्तियोंसे सावधान रहना जरूरी है; कल्पित संतोष वृत्ति और हताश वृत्ति। यह दोनोंकी दोनों आत्माका पतन कर देती हैं। अच्छी तरह विचार कर लेना। अहो ऐसा अपूर्व अवसर महान परम सौभाग्यसे मिलता है, किन्तु भोले जीव अमूल्य कार्यसे वंचित रह जाते हैं। अपना आत्मजीवन व्यर्थमें जाने नहीं पावे सावधान रहना जरूरी है।” १६८.

❁ व्यवहारके कथनको निश्चय मानना मोटी भूल है।” १६९.

❁ अपने लिये तो अपने भीतर ही सब कुछ है, अपने लिये बाहिर कुछ भी नहीं है। १७०.

❁ (व्यर्थ नलसे पानी बहनेके माफिक) अपना ज्ञान अपने काममें नहीं आया तो ज्ञान नलमेंसे समझ अमृत व्यर्थ बह रही है! १७१.

❁ समझ एक वस्तु है। उससे आत्माका कार्य होता है। इसलिये मुनिजन समझका सदुपयोग होवे; दुरुपयोग नहीं होवे; अतः गुफाओंमें रहते थे। इसी माफिक आत्मार्थीको अपना जीवन बचानेके लिये गृहस्थमें भी वही सावधानी वर्तनी पड़ती है। १७२.

❁ “भव्य आत्माकी करुणा भगवानके अन्तःकरणमें है; फिर अन्यकी तो बात ही क्या है? आत्मार्थीकी कसौटी तो भयंकर प्रतिकूलता पर ही होती है, अनुकूलतामें नहीं। ज्यों ज्यों प्रतिकूलता बढ़ती जाती है त्यों त्यों आत्मार्थीको अपनी आत्माकी ओर आनेका सौभाग्य बढ़ता रहता है; क्योंकि आत्माके सिवाय अन्य, विश्वमें कोई भी शरणभूत नहीं है। १७३.

❁ “डटकर मुकाबिला दोषोंसे करना सीखना होगा। दुःखी भले ही बनते रहो, कौन सुनता है? आखिर दुःखी बन बनकर भी अपने आप रह जावोगे। क्या है कोई जगतमें आपके क्रन्दन पर दया करनेवाला? यदि कोई नहीं है तो फिर व्यर्थ दुःखी बनना तो अपना प्रत्यक्ष धर बरबाद करना ही तो है। अतः भूल कहाँ है; टटोलिये। १७४.

❁ यह अपूर्व अवसर हरएक जीवको नहीं मिलता। सत्य सुनकर अन्तर प्रयोग किये बिना मात्र विनोदरूप ही रह जाता है। समय चला जा रहा है। मात्र शुभ भावोंसे आत्माके कार्यकी सिद्धि नहीं। प्रभुका सन्मान प्रभु बननेसे ही है, देहादि पौद्गलिक वस्तुओंसे नहीं। १७५.

❁ आत्मार्थी सज्जन ज्यों-ज्यों आत्माके नजदीक आते हैं त्यों त्यों अपनी रुचि दूसरी जातकी बनती है। १७६.

❁ “अनादि कल्पित श्रद्धान ज्ञानानुसार अपनी बलवान “रुचि”के सामने अन्य किसी चेष्टाओंकी नहीं चलती है। अतः इस विपरीत “रुचि” को पलटनेके लिये—वस्तुस्वरूप है जैसी “समझ”का “बलवान उपयोग” करना पड़ेगा।” १७७.

❁ अरे! भाई साहब! आप देहादि पर द्रव्योंसे कल्पनामें अपनापन रखते हैं; इसी प्रकार एक दफे आत्मामें भी अपनापनकी कल्पना करके देखें तो सही! क्या नतीजा निकलता है? १७८

❁ आप अपनी आत्माको निहारकर देखिये, कि मेरा कार्य क्या है और मैं करता क्या हूँ? कमसे कम इसका निर्णय तो होना ही चाहिये। १७९.

❁ मुझे तो, ज्यों ज्यों समझता हूँ त्यों त्यों बहुत ही समझनेकी दरकार (जरूरीयात) दिखती है। १८०.

❁ “अपना कार्य छोड़कर अन्यके कार्यमें हस्तक्षेप करना ही दुःख पैदा करना है।” १८१

❁ आत्मामें स्वके कर्तृत्वका निषेध नहीं है परके कर्तृत्वका ही निषेध है। पर द्रव्य तो मात्र स्वरूप समझनेके लिये ही है, इधर उधर करनेके लिये नहीं अर्थात् कर्ता-भोक्ता बननेके लिये नहीं। १८२.

❁ स्व-पर समझमें आ जाना चाहिये, फिर दोषोंको निकालनेकी चिंता तथा गुणोंको रखनेकी चिंता नहीं करनी पड़ती है। यह ज्ञानका कार्यकारी प्रत्यक्ष महान प्रताप है। १८३.

❁ त्रिकाली कारणद्रव्यका लक्ष कार्यसिद्धिका उपाय है। १८४.

❁ आत्मामें अपने ज्ञान श्रद्धानकी ग्राहकता क्या है इसका आत्म-निरीक्षण किये बिना सम्यक् योग्यता भी प्राप्त नहीं हो सकती है। १८५.

❁ “चिंता कहाँ? भयंकरसे भयंकर परिस्थिति सामने आने पर भी घबरानेसे क्या पिंड छूट जावेगा? सो विचार करना। “समझना आत्मस्वभाव है।” १८६.

❁ कोई द्रव्य अपना कार्य अन्यसे कराता नहीं तथा अन्यका करने जाता नहीं। और स्वयं अपना किये बिना रहता नहीं। इस महा सिद्धांतको समझना ही शांति है। १८७.

❁ आत्माके अन्दर सब कार्य ज्ञान या अज्ञान अनुसार होते हैं। १८८.

❁ समझ! समझ समझकर दृष्टिकौण बनाती है। दृष्टिकौण आत्माका जीवन है। १८९.

❁ ज्ञान यदि ज्ञानको नहीं समझता तो निकम्मा ज्ञान उत्पात मचाता है। १९०.

❁ दृष्टिकौण बनाना ही समझका सार है। एक अपने ज्ञान सिवाय शरण देने समर्थ विश्वमें कोई भी नहीं है। यह प्रत्यक्ष और स्पष्ट प्रमाण है। १९१.

❁ शुभ राग और शुभ उपयोगमें आपको कुछ फर्क लगता है या नहीं? विचार करना। १९२.

❁ “अज्ञानी जीव निरन्तर ज्ञानका घात करनेमें ही लगा हुआ है। अरे! यह “ज्ञान” यदि उठ खड़ा हुआ तो दोषोंकी क्या दशा होगी?” १९३.

❁ “ज्यों ज्यों ज्ञान समझना शुरु होता है, त्यों त्यों कितनी शांति मिलती है; इसका कोई पार नहीं; इसलिये ज्ञानकी रक्षा करो...घात मत करो। १९४.

❁ आत्मामें खेती करनी है तो समझका बीज और श्रद्धाकी वर्षासे उत्तम फसल आत्मामें पैदा हो सकती है। बिना समझे और श्रद्धाके आत्मामें अच्छी फसल नहीं उपज सकती है। १९५.

❁ ज्ञान आत्माकी जान (प्राण) है। १९६.

❁ यह अमूल्य समय मिला है। निरन्तर अपनी आत्माको निर्मल बनानेका भाव जितना बढे वही हितकर है; नहीं तो मिन्टोंमें बिगड़ते देर नहीं। १९७.

❁ विश्वमें आत्माकी सुननेवाला एक मात्र आत्मा ही है अन्य कोई नहीं। १९८.

❁ अपनी आत्मासे बढकर विश्वमें कोई वस्तु नहीं है। कोई माने या न माने, यह बात सर्व प्रकारसे सत्य है। १९९.

❁ “ज्ञानमें स्व और पर तथा हिताहित प्रमाण करनेकी सामर्थ्य है। भोले जीवोंका ज्ञान देहमें स्वपना प्रमाण करनेसे उसके हितमें प्रवर्तता है और उसके अहितसे बचता है। इसी माफिक ज्ञानी आत्मा अपनी आत्माको अपनी वस्तु जान-मानकर आत्महितमें प्रवर्तता है और अपने अहितसे बचता है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है”। २००.

❁ अपने लिये तो अपने भीतर ही सब कुछ है, अपने लिये बाहर कुछ भी नहीं है। २०१.

❁ भोले जीव अपनी बेसमझीसे अपनी समझका घात कर रहे हैं। आत्मामें समझको घातनेसे बढ़कर कोई हिंसा या कोई पाप दुनियामें नहीं है। २०२.

❁ कुगुरु तो ज्ञानके घोर विरोधी ही होते हैं। सुगुरु ज्ञानके समर्थक होते हैं। माता, पिता, मित्र, बांधव, आदि कुगुरुपना धारण कर सकते हैं। अतः कुगुरुओंसे बचो। २०३.

❁ “अपने दोषोंको प्रकट करना अन्तःकरणसे, यह निकट-भव्यके लक्षण हैं। इससे सिद्ध होता है परिवारका भार निरन्तर सर्व प्रकारसे उपस्थित रहने पर भी झुकाव जो आत्माकी ओर आते रहना, यह कोई अद्भुत भविष्यका द्योतक है। सरलता आत्मामें बहुत कार्य करती है। आज सरलता विरल है, विवेक भी कार्यकारी है। २०४.

❁ आत्माकी सत्ताका पूर्ण दृढ़ विश्वास बिना, सम्यक् भान स्वप्नमें भी नहीं हो सकता है। २०५.

❁ “सब कोई अनुकूलता चाहते हैं किन्तु अनुकूल बनना मृत्यु बरोबर लगता है तो क्या जूतोंवाले जोड़े थोड़े ही गये हैं? प्रकृति उनके जूते मारे बिना कैसे रह सकती है। दूसरा शांति तथा अनुकूलता चाहे तो उसका धूल ही मोल नहीं। ऐसे नीच विचारसे ही विश्व दुःखी है। हम अपनी शांति तथा अनुकूलताकी परवाह करना छोड़ नहीं सकते; तब दूसरा कौन मूर्ख है जो तुम्हारे अनुकूल बनता फिरेगा? जैसे तुम वैसा ही वह।” २०६.

❁ भोले जीव बाह्य परिस्थितियोंको ही संभाला करते हैं! अन्दरकी रीतियोंको समझनेका प्रयत्न नहीं करते हैं। अन्दरकी रीति संभालनेसे बाह्य परिस्थितियाँ सहज ही नियमित कार्य करती दिखती हैं। किन्तु आत्माको ना तो अपना ही भरोसा है और ना बाह्य परिस्थितियोंका ही भरोसा है। २०७.

❁ ...जीना मरना किसीके अधिकारमें नहीं है। वीरोंका मार्ग रोनेका नहीं है। २०८.

❁ “कार्यकर भावना निरंतर वर्तनेका सुअवसर मिल गया है। ऐसा अमूल्य समय व्यर्थ खोना अपना काम नहीं है। समझवालोंके लिये इशारा मात्र काफी है।” २०९.

❁ “उपयोग ही पुरुषार्थ है। ज्ञान तो मात्र जानता है, स्व-परका स्वरूप सामने रख देता है; परन्तु काममें लेना सो उपयोगरूप पुरुषार्थ है। ज्ञानके निर्णयको (इस निर्णयको) उपयोग

करनेवाला उपयोग ही है। श्रद्धान ज्ञानके बलको साथ लेकर उपयोग ही अखंड द्रव्यकी ओर एकाग्र होता है; अखंड द्रव्य स्वयं कृतकृत्य है। अन्दर प्रत्येक गुणको कृतकृत्य देखकर उपयोग स्वयं सर्व प्रकारसे अकर्ता होकर अखंड द्रव्यको स्पर्श करता है और स्वयं कृतकृत्य हो जाता है। २१०.

ज्ञान उपयोग कृतकृत्यको टच करके स्वयं कृतकृत्य हो जाता है। उपयोगके अलावा कृतकृत्यको टच करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं। अज्ञानोपयोग अकृतकृत्य है क्योंकि वास्तवमें तो जगतमें कोई भी पदार्थ अकृतकृत्य है ही नहीं; सभी अपने अपने स्वभावमें कृतकृत्य हैं, पण अज्ञानोपयोग उन्हें अकृतकृत्य मानकर टच करना चाहता है जिससे स्वयं अकृतकृत्य होता रहता है।” २११.

❁ “आत्मामें ज्ञान, श्रद्धान दोनोंकी एक्यतासे ही कार्य होता है, चाहे सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो। अकेले ज्ञानकी नहीं चलती है।” २१२.

❁ अपने जीवनको दोषोंसे बचाना ही सच्ची दया है। २१३.

❁ फालतू जीवन ही अपना भयंकर दुश्मन है। २१४.

❁ सज्जनता बिनाका जीवन अपने लिये कलंकरूप है। २१५.

❁ विवेक बिना सज्जनता नहीं निभ सकती है। २१६.

❁ विवेकपूर्वक किया गया व्यवहार ही कार्यकर होता है। २१७.

❁ अनुकूलताकी (बाह्य पदार्थोंकी) आशा प्रतिकूलताकी गंज भरती है। २१८.

❁ समझनेका अर्थ एक मात्र जानना ही नहीं है। ज्ञान श्रद्धान दोनोंमें जंच जाना ही समझमें आ जाना है। २१९.

❁ देहको जीव देहपणे माने तो देह जीवका इष्ट मित्र है; और यदि जीव देहको मेरा मान ममता करे तो वही देह बैरी है, दुश्मन है, जीवघाती है। २२०.

❁ आकुलतामें कार्य होता नहीं, होना है वहाँ आकुलता नहीं, सहज स्वभाव है। २२१.

❁ ज्ञानीजन भीतर भला-बुरा संभालते हैं, अज्ञानी बाह्य भला-बुरा संभालते हैं। २२२.

❁ सुखी बनना ज्ञानका कार्य है, दुःखी बनना अज्ञानका कार्य है। २२३.

❁ आत्माकी महिमा प्राप्त करनेका द्वार ज्ञान है। ज्ञानका कार्य, स्वपरका स्वरूप है

वैसे ही समझना है, उसमें कुछ हस्तक्षेप करना अपराध है। इसलिये पहिले ज्ञानसे समझनेकी रीतिको समझे बिना जीवनका अता-पता लगनेका नहीं है। २२४.

❁ विवेकरहित शरीर प्रिय है तो अज्ञानताकी चरमसीमा है। विवेकसहित ज्ञान प्रिय है तो ज्ञानकी अनंत महिमा है। २२५.

❁ सम्यक्ज्ञानकी प्रत्यक्ष महिमा तो देखो, स्वरूप समझमें आ जानेसे जिसे छोड़ना है वह सहज ही छूटने लगता है और जिसे रखना है वह सहज ही रहने लगता है। व्यर्थकी निकालनेकी तथा रखनेकी चिन्ता करनेकी दरकार ही नहीं रहती है। सीधी सी बात है। २२६.

❁ ज्ञान श्रद्धानकी इतनी दृढ़ता होती है कि रुचि अन्य हानि-लाभको कुछ भी नहीं धारती है। २२७.

❁ “ज्ञानकी स्याणपका सार यही है कि वस्तु स्वयं करती हुई दिखे। जब तक करती हुई नहीं दिखे, तब यही उपयोग होना जरूरी है कि मुझे स्वयं करती हुई क्यों नहीं दिखती है? मेरेमें मोटी खोट है।” २२८.

❁ आत्मा वस्तु है, कषाय अग्नि है, समझ रक्षक है। २२९.

❁ कैसी ही भयंकर परिस्थिति क्यों न आ जावे (परंतु) अंदरसे यह निकलना कि “ऐसी कोई बात नहीं,” यह एक महामंत्र है। २३०.

❁ वस्तुका स्वरूप ही वस्तुका सौंदर्य है। २३१.

❁ प्रथम समझ, फिर मान्यता, फिर उपयोग। २३२.

❁ जिस आत्मार्थीको अपनी महान आत्माका लक्ष करके प्रभु बनना है तो अपने ज्ञान-श्रद्धानादिके घातक दोषोंको समझना ही होगा; क्योंकि जिसको अपनी घातक परिणतियोंका ज्ञान नहीं है वह जरूर स्वकल्पित लक्ष पर डटा हुआ है अतः वह बेसमझीके जोरसे भले ही अपने लक्षको ठीक मानता रहे, किन्तु ऐसी स्थिति बनी रहनेसे आत्महित तो दूर रहा, उलटी स्थिति ज्यादा दृढ़ बननेका कारण बन सकती है। २३३.

❁ शुभभावरूपी बाड़से शुद्धभावरूपी धानकी रक्षा होती है। यदि शुभको ही उपादेय मान लिया जावे तो शुभ रहता ही नहीं, अशुभ हो जाता है। २३४.

❁ कार्यशीलताकी सौ गलतियाँ निकम्मेपनेकी एक अच्छाईसे बढ़कर हैं। क्योंकि

कार्यशीलतामें तो अपनी गलतीको दूर करनेकी सामर्थ्य है और निकम्मापन अपनी अच्छाईको कायम नहीं रख सकता। २३५.

❁ अनुकूलताकी उम्मेदमें प्रतिकूलताकी गूंज है। २३६.

❁ साधारणमें संतोषसे महानसे वंचित है। २३७.

❁ जीवके परद्रव्यसे (संसारसे) अंतस फट जाना ही आत्माकी तरफ आनेके सिवाय कोई चारा नहीं है। २३८.

❁ अनुभवमें लीनताके सिवाय मुनियोंको भी अपने दोषोंका ज्ञान रहता ही है। यह वीतरागी सिद्धांत है; वेदांत नहीं। दोषको कोई दृष्टिका विषय नहीं बनाना है। मूल दोषोंका ज्ञान ही न रहे तो अपनी मनमानी स्थिति अज्ञानीकी होती है। २३९.

❁ युद्धक्षेत्रमें उतरे महान-दक्ष सेनापतिको उभय पक्षका ज्ञान रहता ही है। श्री गुरु उपदेश प्रथम दृष्टिके विषयको ठीक करनेका देते हैं। किन्तु अपनेमें दोष भरा है तो दृष्टि कैसे ठीक हो सकती है? प्रथम दृष्टिजन्य दोष देखनेकी कला समझना होगा, सीखना होगा। २४०.

❁ आत्मार्थीमें किस प्रकारकी महानता होती है, यह जानना खाश शुरूआत है। यह प्रभु बनना कोई साधारण सी बात नहीं है। अनंतकालकी टेवको तोड़नेमें महान आत्मबलकी दरकार है। २४१.

❁ सम्यक्दर्शनकी रीतको समझनेवाला ज्ञान अपने श्रद्धानके घातक दोषोंको तथा ज्ञानके घातक दोषोंको और चारित्रिके घातक दोषोंको समझनेकी विशेष जरूरत नहीं समझता हुआ! क्या अरिहन्त बन सकता है? २४२.

❁ आत्मार्थीकी छोटी सी पहिचान यह है कि अपने बड़प्पनकी प्रसिद्धिका अन्तःकरणसे बिल्कुल नकार होता है, क्योंकि आत्मार्थीको अपने दोष प्रत्यक्ष स्पष्ट दिखते ही हैं तब बड़प्पनका बोझा कैसे ढो सकते हैं तथा अपनी शक्तिका प्रदर्शन करना कभी बर्दास्त नहीं हो सकता है, क्योंकि उनको ज्ञान और मानके मूल्यका भान है। २४३.

❁ आत्मार्थीको निरन्तर अपना कार्य करते रहने पर भी अपनी कमियाँ दिखती रहती हैं, तब ही अग्रसर हो सकता है। आत्मार्थीको फिजूलकी बातों तथा व्यर्थकी क्रियाओंसे पीछा छुड़ाना ही ध्येय बना रहता है तब अपने बड़प्पनकी तथा अपनी महानताकी डींग हांकनेकी फुरसत कहाँ? २४४.

❁ आत्मार्थी अन्यके कथनको, स्वयम् समझकर प्रमाण किये बिना सत्य अर्थात् प्रमाणिक नहीं मान सकता है चाहे भगवानके ही वाक्य क्यों न होवे; स्वयम् अपने निश्चय-भगवानके सामने रखने पर ही निर्णय पक्का माना जा सकता है। २४५.

❁ आत्मामें ज्ञानकी ही महान महिमा स्पष्ट नजरमें आती है। ज्ञान बिना निस्तार नहीं। अखंड द्रव्यका निर्णय करनेवाला ज्ञान प्रमाण है। २४६.

❁ आत्मार्थिके भीतर ज्ञान इतना निर्मल होता है जिससे उसको अपनी भूल या त्रुटि पकड़नेका तुरंत ज्ञान रहता है। अपनी प्रशंसा अपने मुंहसे करनेकी भावना तो दूर रही, दूसरा कोई बड़ाई करे तो भी उसमें रोचकता नहीं रहती है। २४७.

❁ आत्माकी पर्यायमें गलती हो सकती है, परंतु गलती पोषते रहना यह घाटा कभी पूरा नहीं हो सकता है। सावधान होना ही गलतीके घाटेको नफेमें बदल सकता है। दोष करना और दोष पोषना; फिर किसकी ताकत है उसे बचा सके? २४८.

❁ मैं खाता हूँ, मैं पीता हूँ, मैं हाथ हिलाता हूँ, मैं सारे शरीरका काम करता हूँ पर “मैं क्या वस्तु हूँ?” इसका तो पहले पता करना। अपने बिना ही पते, मैं यह करता हूँ और मैं वह करता हूँ यह क्या दशा? २४९.

❁ आत्मार्थियोंका दुष्काल इसलिये है कि बडप्पनकी चाहने आदर्श जीवनका नाश कर दिया है। २५०.

❁ स्त्री, पुत्र आदि धुताराओंकी टोली नहीं है। मोह अनुयायी परिणति ही धुताराओंकी टोली है। २५१.

❁ आत्मार्थी निजके थोड़े दोषको बहुत बड़ा समझता है, परके दोष देखता ही नहीं। २५२

❁ परको, मालिक बिनाका माल, निजको, माल बिनाका मालिक; आज तक यह आत्मा मानता चला आ रहा है। इसी कारण परका मालिक बननेका निरंतर प्रयत्न करता है। २५३.

❁ एक भी वाक्य बिना प्रयोजन नहीं बोलना। इससे स्मरणशक्ति बढ जायेगी और बुरी आदत छूट जायेगी। आत्महित करना हो तो अपनी बुरी आदत छोडनी होगी। २५४.

❁ मात्र आत्माके लिये जिसका जीवन हो वह आत्मार्थी है परंतु ऐसा नहीं होते हुए भी अपने आपको आत्मार्थी मानना यही अपने आपसे महा भयंकर धोखा चल रहा है। २५५.

- ❁ अबंध स्वभावी प्रत्येक आत्मा है, किंतु अबंध-परिणामी ज्ञानीजन ही हैं। २५६.
- ❁ परसे बचनेके लिये देहवीर्य चाहिये, किंतु दुःखसे बचनेके लिये ज्ञानवीर्य चाहिये। २५७.
- ❁ राग-द्वेषका विषय अच्छापना, बुरापना, अनुकूलपना, प्रतिकूलपना; यह किसी भी पदार्थमें नहीं है, अतः राग-द्वेषका विषय मिथ्या ठहरा। २५८.
- ❁ इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र (जिसको) रोकनेमें समर्थ नहीं, इसको कार्माणवर्गणाएँ रोक देती हैं। (संयोग अपेक्षा कथन) २५९.
- ❁ “अनादिसे जो टेव पडी हुई है, वह साधारण ज्ञानसे मिटनेकी है नहीं।”
- ❁ अपनेको तो इस दुष्कालमें भी अपने लिये सुकाल बनायकर कार्य सिद्ध करना है। “अपनी शक्ति अनुसार सर्व प्रथम समझनेका कार्य दृढ करना, फिर बाह्य क्रिया तो सहज होती रहेगी ही।” २६१.
- ❁ वस्तुका स्वरूप होना है वैसे ही होता है, तब ही जीव निश्चित रह सकता है और निश्चित होनेसे ही आत्मलक्ष हो सकता है तथा आत्मलक्ष बिना शांति नहीं। २६२.
- ❁ पुण्य गमे छे तो पाप बंधे छे। २६३.
- ❁ ज्ञानका खास कार्य समझकर आत्मामें रुचि पैदा करना है क्योंकि रुचिके अनुसार ही आत्मामें परिणतियां होती हैं। मेरी समझके अनुसार बाह्यदृष्टिसे ज्ञान निर्णायक होनेसे अंदरकी अपनी वर्तमान परिणतियोंकी अब यह स्थिति क्यों हैं; किस कारणसे यह विकल्प चल रहे हैं? इनके निर्णयकी पद्धतिसे वंचित रहता है जोकि खाश जरूरी है। अपने अंदरकी परिणतियोंका निरन्तर ख्याल रखनेके अभ्याससे किस प्रकार कितना हित सहज ही होना शुरु होता है यह तो ऐसा करनेवाला ही समझ सकता है। २६४.
- ❁ आप अंतर-अवलोकन ज्यादा करनेकी आदत डालिये; चाहे विकल्प किसी भी प्रकारका होवे या कोई कैसी भी बाह्य घटना होती रहे, आप तत्काल अंतर-अवलोकनकी आदत डालिये। फिर कुछ समय बाद आप खुद अपना नवजीवन अनुभव करेंगे; क्योंकि आपको अपने ज्ञानसे स्वयं सहज ही मदद मिलने लग जावेगी। २६५.
- ❁ आत्मामें श्रद्धा और चारित्रादि सर्व दोष सहित हैं। एक ज्ञानगुण ही दोष रहित होनेसे सर्व गुणोंको सुधारनेका प्रताप रखता है। २६६.
- ❁ आत्मामें ज्ञानपर्यायको समझना होगा कि द्रव्य-स्वभाव कृतकृत्य और चिरंजीवी तथा

स्वाश्रित है और पर्यायस्वभाव अकृतकृत्य और जन्म-मरणरूप पराश्रित है। अतः द्रव्यस्वभाव अपनाना होगा, तब पर्यायस्वभाव मात्र जानना रहेगा। २६७.

❁ समझवानको ही अपना सर्वस्व समझनेवाली समझ सम्यक् समझ है। २६८.

❁ आत्मार्थी गरीब नहीं होते, किसीकी कृपाकी भीख नहीं मांगते हैं, अन्यायसे कोसों दूर रहते हैं। विनय न्यायका होना ही श्रेयकर है। चाहे सारा विश्व विरुद्ध हो जाय, न्यायपथसे ज्ञानी नहीं डिगते हैं। २६९.

❁ आत्मार्थी जब हितका कार्य हो रहा है तो मृत्युकी भी परवाह नहीं करता है। २७०.

❁ उपयोग आत्माका लक्षण है; उपयोग आत्माका पुरुषार्थ है; उपयोग आत्माका प्राण है; इस उपयोगको समझो। २७१.

❁ अंधश्रद्धालु समझनेकी जरूरत ही नहीं समझता है। २७२.

❁ ज्ञानी कोई भी बात बिना समझे नहीं स्वीकारता है। २७३.

❁ ज्ञान ही उपयोगकी संभाल रखता है कि उपयोग किधर जा रहा है। २७४.

❁ अज्ञान अपने उपयोगकी संभाल नहीं कर सकता है; इसलिये दुरुपयोग होता है। २७५

❁ अपने लिये अपनी समझ ही काम आती है, सदा, सर्वदा, सर्वत्र। २७६.

❁ जहाँ समझका मूल्य है वहाँ देहादि पुद्गलोंका मूल्य नहीं, जहाँ देहादि पुद्गलोंका मूल्य है वहाँ समझका मूल्य नहीं। २७७.

❁ “ज्ञान आत्मामें प्रत्यक्ष निर्णायक वस्तु होनेसे प्रमुख है अतः पूज्य है।” २७८.

❁ जब अपना चेतन द्रव्य स्वयं निरंतर मौजूद है तथा अपने काममें आनेवाली अपनी समझ भी निरंतर अपने पास मौजूद है और विश्वकी कोई भी वस्तु कभी अपने काममें आनेवाली है नहीं; तब यह जीव किस कार्यमें लगकर अपनी किस इष्ट-सिद्धिमें अमूल्य समय लगा रहा है? २७९.

❁ यदि अपनी आत्मा अपनेको अच्छी नहीं लगती है तो जरूर अन्य वस्तु अच्छी लगती है। ऐसी परिस्थितिमें जो अपने अधिकारमें अपनी आत्मा थी, वह काममें ली नहीं गई और दूसरी वस्तु अपने अधिकारमें आई नहीं, तब जीवकी दोनों तरफसे कैसी दुर्दशा घटती है यह खाश समझनेकी बात है। २८०.

❁ “वस्तुस्वरूप समझनेवाला मूल्यवान अविनाशी ज्ञान और स्वयं बिगड़कर नष्ट होनेवाला यह मुर्दा शरीर, दोनों परस्पर घोर विरोधी होने पर भी एक साथ रहनेसे, ज्ञान स्वयं अपने स्वरूपको भूलकर, इस मुर्दे शरीरके पीछे इस प्रकार पडा हुआ है कि अपना स्वरूप समझनेका कार्य ही छूट गया है।” २८१.

❁ अपनी आत्मासे ही अपना संबंध रहेगा, अन्यसे कभी संबंध होगा ही नहीं। इसलिये पदार्थका स्वरूप समझो, परसे घालमेल छोड़ो क्योंकि सर्व पदार्थ अपना कार्य स्वयं आप ही करते हैं, किसी अन्यको छूने ही नहीं देते हैं। ऐसी ही सत्य स्थिति स्पष्ट होने पर; अब आत्माको छोड़कर, परकी आशा कैसे रह सकती है? २८२.

❁ जीवित आत्मा मुर्दा देहकी शरणमें मूर्छित हो गया है सो अज्ञान है। सम्यक् और सत्य ग्रहण करना ही आत्मार्थीका काम है। २८३.

❁ “आत्मामें प्रमुख कर्ता-भोक्ता ज्ञान ही है।” २८४.

❁ “अपनी आत्मा पर, परकी मालिकाई किसी भी प्रकारसे कही जा सकती नहीं और परद्रव्य पर अपनी मालिकाई जम सकती नहीं। ज्ञान महापुरुष है और समझना महापुरुषार्थ है। किसी भी परद्रव्यसे अपना किसी भी प्रकारसे लेन-देन नहीं है। विश्वमें परस्पर पदार्थोंमें ग्रहण-त्यागका संबंध व्यवहार है ही नहीं। अपनी आत्मा नापसंद हो तो छुटकारा नहीं, अन्य वस्तु अच्छी होवे तो हाथ आनेकी नहीं।” अब आप अपनी परिणतियोंको समझकर सावधान हो सकते हैं। २८५.

❁ अपने चिदानंदघनका आन्तरिक बहुमान होना खाश जरूरी है। २८६.

❁ सर्व प्रथम हमें अपने अज्ञानका ज्ञान करना है; क्योंकि आत्मा संबंधी अज्ञानकी स्वीकृति बिना हम आत्माको समझनेके लिये तैयार ही नहीं होते। २८७.

❁ सारा विश्व अपने स्वभावकी तरफ झुक रहा है किंतु अज्ञानी अपना स्वभाव छोड़ परकी तरफ झुककर झांख रहा है। २८८.

❁ विश्व नियमसे चलता है, धक्केसे नहीं चलता। २८९.

❁ सत् अपने सहज स्वभाविक नियमोंसे डटा है; व्यवस्थित विश्व अपने सहज स्वभाविक नियमोंसे टिका है। २९०.



आत्मार्थी श्री दीपचन्दजी सेठिया, सरदारशहर के वचनामृत

समझकी अपार महिमा

[अटल-विश्वमर्यादा हस्तनोंधमेंसे साभार उद्धृत]

❀ जिसको अपनी आत्माका हित करना है, अशांति टालनी है, शान्ति लानी है, वह अपनी आत्मासे पूछता है कि अरे आत्मा! अरे ज्ञान! अपने लिये क्या किया? और हे आत्मा! यहाँ कब तक रहना है, इसका कभी कुछ आज तक विचार भी किया है कि नहीं? इसका अंतरसे विचार तो कर! यह क्या चल रहा है, धीरा होकर शांत चित्तसे सोच! यह शरीरादिका कार्य सोना, खाना, आदि स्वयं चल ही रहा है परन्तु अपने लिये क्या कार्य किया? कलका भी दिन गया, आजका भी दिन गया; इस प्रकार करते करते तो हे आत्मा! आयु पूरी हो जायेगी। दिन रातमें अनेक संयोग आते हैं, इनकी तरफ देख देख कर दुःखी बनना क्या? १.

❀ आत्माका गुण आत्माके लिये घातक नहीं, किन्तु आत्माके गुणकी अवगुणरूप अवस्था आत्माके लिये घातक है। पर द्रव्य (कर्म) आत्माके घातक या रक्षक नहीं हो सकते क्योंकि वें तो पर द्रव्य और जड वस्तु हैं किन्तु उनको घातक या रक्षक मानना यह (श्रद्धान गुणकी अवगुणरूप अवस्था ही) घातक है इसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। २.

❀ मृत्युको साथ रखके कार्य करना। मृत्युके लिये विटां (विस्तर) बांधकर तैयार रहना। दुःखी बननेसे क्या लाभ, यह विचार करना, कौन सुनता है? अंतमें तो हारकर रहना ही पडेगा। मृत्यु आनेसे पहले ही सावधान रहना। मृत्युके कालमें कायरोंको अपने पास नहीं आने देना। मृत्यु किस समय आवे, यह निश्चित नहीं। (तुझे पता नहीं) ३.

❀ आत्मार्थीको पक्षपात नहीं होता, आत्मार्थी भगवानका भी पक्ष नहीं करता। एक अपने आत्माका ही पक्ष करता है। बिना पक्षपात छूटे अपनी आत्माका लक्ष हो ही नहीं सकता। अनादिकालसे आज तक आत्माने पक्ष किया, यह मधुर विष है, महा भयंकर है। यह मरणको ही प्राप्त कराता है और छोड दे तो पूर्णताको प्राप्त कराता है। ४.

❀ आत्मा अनुकूलताके लिये परकी ओर मुँह तकता फिरता है तो उधर पुद्गल फटकारता है कि अरे ओ समझवानके बच्चे! तू किस मुँहसे परकी अनुकूलता चाहता फिरता

है? तू समझवान होकरके भी समझता तो कुछ भी है नहीं कि कौन वस्तुका क्या स्वरूप है? पहले वस्तुका स्वरूप समझना तो सीख, फिर अनुकूलताकी बात करना। हम तो मूढ हैं कुछ भी नहीं समझते हैं, तू तो समझवान है ना? तू मनमानी समझ करके विश्वको अनुकूल बनानेका क्या स्वपन देखता है? क्या विश्व तेरा गुलाम है जो तेरी समझ बिनाकी इच्छाके अनुसार नाचता फिरेगा! सावधान होकर विवेक कर! ५.

❁ विषय यदि सुखस्वरूप हों तो उन्हें भोगते भोगते अरुचि नहीं हो सकती। भोगते भोगते अरुचि होना उनका सुखपनेका निषेध प्रसिद्ध करता है। समझका स्वरूप जैसे जैसे समझमें आता जाता है उसमें अरुचि न होकर, विशेष विशेष महिमा बढ़ती जाती है, रुचि बढ़ती जाती है। अतः समझ स्वयं सुखरूप है। ६.

❁ एक दूसरेका करने धरनेकी बात सिद्धांतरूपसे स्वीकार कर भी ली जावे तो कर्तृत्वकी दौडमें विश्व-व्यवस्था समाप्त हो जावेगी; किंतु विश्व-व्यवस्था तो अनादिसे जीवित है और अनंतकाल तक जीवित रहेगी। ७.

❁ अपने अस्तित्वका स्पष्ट भान नहीं होने पर भी वस्तु तो है अर्थात् मैं हूँ तो जरूर, अब भूल अपने स्वरूप समझने संबंधी कहाँ है यह उपयोग लगाकर देखना है। ८.

❁ “चाहूँ” जैसा करना यही दुःख है, और “है” जैसा समझले यही सुख है। ९.

❁ आत्माके परकी ज्ञाताई हैं, मालिकाई नहीं। अतः ज्ञाताई और मालिकाई बीच झगडा लग रहा हैं; मालिकाईने ज्ञानसे संबंध तोडकर शरीरादि पर द्रव्योंसे संबंध जोडकर ज्ञानको दबा रखा है। यदि मालिकाई ज्ञानकी ज्ञानमें आ जावे तो शरीरकी मालिकाई छूट जावे और परम आनंद हो जावे। यह इतना सा खेल अनंत पुरुषार्थ बिना होनेका नहीं। १०.

❁ कर्म हटाये नहीं हटते किंतु स्वयं आप सुधरनेसे कर्म स्वयं सहज हटते हैं और स्वयं आप बिगडनेसे कर्म स्वयं सहज चिपटते हैं। सुधरना क्या है—स्व और परकी (अर्थात् सारे विश्वकी) स्वतंत्रता स्वीकारना ही प्रथम सुधरना है; यही सम्यक्दर्शन है और एक दूसरेकी आधीनता स्वीकार कर परतंत्र बनना ही बिगडना है; इसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। ११.

❁ ज्ञानीजन स्वके कर्तृत्वका निषेध नहीं करते, परके कर्तृत्वका ही निषेध करते हैं। स्वके कर्तृत्वमें परके कर्तृत्वका सहज ही निषेध स्वयं हो जाता है यह प्रमाण है। परके कर्तृत्वसे वह अपने काममें नहीं आता और अपने कर्तृत्वकी समझ छूट जानेसे वह (स्व) भी हमारे काम नहीं आता; अतः यही दुःख है। १२.

❁ परको पररूप जाननेमें दोष नहीं, परके मालिक बननेमें अपराध है, क्योंकि परका मालिक बन नहीं सकता। परका मालिक तो पर ही रहेगा, वह तुझे मालिक कैसे बनने देगा ? उसे तुझे मालिक बनानेकी जरूरत भी क्या है ? तू अपने श्रद्धान-ज्ञानमें झूठमूठ परका मालिक बना रहे, इससे परका कोई नुकशान है नहीं, तेरा ही नुकशान है क्योंकि तुझे तेरी सम्पत्ति नहीं सूझती और परकी सम्पत्ति तेरे हाथ आई नहीं। १३.

❁ व्यवस्थित विश्वको अव्यवस्थित समझकर उसको व्यवस्थित करनेके भाव स्वयं अव्यवस्थित हैं और अव्यवस्थित भाव ही दुःखरूप हैं। १४.

❁ पानीका बहाव धीरे धीरे बह रहा हो तो वह पालको नहीं तोड़ सकता है, परंतु जोरसे पानीका बहाव हो तो पालको तोड़ सकता है। उसी प्रकार ज्ञान धीरे धीरे हो तो पहली विपरीत दशाको नहीं तोड़ सकता; परंतु सावधानीपूर्वक जोरदार हो तो पुरानी भूलको तोड़कर नई स्थिति कर सकता है। हर समय एक समझको ही समझना, इसी प्रकार ज्ञान किसी दिन अंदरकी तरफ आ जायेगा। १५.

❁ पुण्यका ही मात्र नहीं, तीव्र पुण्यका उदय आनेवाला है, यदि सप्रेम, सावधानीसे बुराई-भलाई अर्थात् लाभ-नुकशानकी गुंजाईसको पूरा टटोलकर कार्य किया तो अनिवार्य आनंदमय विजय-महाविजय है। १६.

❁ मनाही करनेसे दोष छूट सकता है क्या या त्याग करनेसे दोष छूट सकता है क्या या भयसे तथा प्रलोभनसे और नम्रतासे दोष छूट सकता है क्या ? यदि दिखाऊ छूट भी जाय तो उसको छूटना नहीं कह सकते हैं। दोषसे हानि समझमें आजाय तो उसे ही दोष छूटना समझ सकते हैं। दोषको समझे बिना दोष छूटता नहीं है। १७.

❁ निकम्मा उपयोग विपरीतता पैदा करता ही है; ज्ञान, श्रद्धान और उपयोगको समझना चाहिये। उपयोग जिस तरफका जोरदार होता है उधर दृढ होता है। उपयोग अन्यकी तरफ फिर कमजोर ही बना रहता है। ज्ञान-श्रद्धानके अनुसार रुचि होती है और रुचि अनुसार ही उपयोग नियमसर होता है। १८.

❁ जब बाह्य पदार्थोंका अपनी समझ अनुसार सदुपयोग करना जानते हो तो अपनी आत्माका सदुपयोग क्यों नहीं करते ? इसका कारण यही है कि आत्माका तथा अपनी समझका कुछ भी मूल्य नहीं समझते हो, अन्य वस्तुका मूल्य ही तुम्हारे अंतःकरणमें है। ज्ञानियोंका वचन तुम्हारे ज्ञान-श्रद्धानमें टकराकर यों ही फालतू चला जाता है। १९.

❁ प्रश्न :—स्वके स्वपनेका लक्षण क्या ?

उत्तर :—शरीररूपी स्व पचास वर्ष पहिले नहीं था और पचास वर्ष बाद रहेगा भी नहीं, तब काहेका स्व ? ज्ञान तो पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा; यह मेरे निश्चयका स्वकार्य है। २०.

❁ पर विश्वमें है कि नहीं या तुम अकेले ही हो ? फिर तुमने परको क्या समझ रखा है ? परको पर समझना कि वह मेरा नहीं हो सकता, यही तुमको समझनेकी बात है। वह मेरे काम आनेका नहीं, यह समझ लोगे तो बच जाओगे, नहीं तो मर जाओगे। २१.

❁ मनुष्यके अन्तःकरणके भावोंमें बुराई भरी होनेसे अन्यमें बुराई तो बिना सोचे-विचारे ही दिखने लगती है। लेकिन अन्यकी भलाई तो गुण-ग्राहकता आने पर ही तथा गहराईसे सोचने समझने पर ही दिखती है। २२.

❁ जब अपनी परिणति ही आत्माको-निजको भोगनी पडती है तो सुन्दर परिणति क्यों न भोगे ? सुन्दर परिणति वर्तमान सुखरूप है और भविष्यमें सुखरूप है तब फिर सुन्दर परिणति क्यों न करे ? सुन्दर परिणति विवेकसे होती है। २३.

❁ पूंजी धरोड (वारसो) तो पुत्रको अनेको पिता सौंपते हैं, किंतु सुगुणविद्या-धरोड तो महा अनुभवी पितासे ही मिलती है और भाग्यशाली पुरुषार्थी भव्य पुत्र ही उस विद्याधनको धारण करता है और काममें लेता है। २४.

❁ देहादिक अन्य कार्योंमें समझको बरबाद करना ही, सत्य समझनेकी योग्यताको खत्म कर देना है। २५.

❁ उपयोग हर समय हाजिर है, काम करे तो करो, नहीं करे तो ना करो। २६.

❁ ज्ञान जीवन प्रदान करता है और मृत्युसे बचाता है। २७.

❁ जानना एक ज्ञानगुणकी पर्याय है, वह जहाँसे आती है उसका लक्ष करना ही पुरुषार्थ है। २८.

❁ मान ज्ञानका दुश्मन है, ज्ञान मानका दुश्मन है। २९.

❁ खोटी आदतोंसे बचो, खोटी आदत विवेकको खा जाती है और अच्छी आदत विवेकमें छा जाती है। ३०.

- ❁ हमारा विवेक हमारे काम आना चाहिये, यही आत्मार्थीको इष्ट है। ३१.
- ❁ ज्ञानका अनंत बल है; ज्ञानको समझना ही ज्ञानका बल है। ३२.
- ❁ कषायसे थका ज्ञान अपने आत्मामें लग जाता है। ३३.
- ❁ हम श्रद्धान-ज्ञान करनेके अधिकारी हैं, श्रद्धान-ज्ञानके अनुसार सर्व सहज होता है। श्रद्धान-ज्ञानानुसार ही हमारा जीवन है। ३४.
- ❁ आपकी अमूल्य पूंजी श्रद्धान-ज्ञान है, उसका स्थान मोहने ले लिया है। ३५.
- ❁ अपनी समझ अपनेमें हिताहित समझनेके लिये उपयोग नहीं लगाती तो मूढवत् परको झांकती ही रहती है। ३६.
- ❁ बानगीसे पूरे मालकी पहिचान हो जाती है। बानगी जाने और माल न जाने यह नहीं बन सकता। ज्ञानको जाने और आत्माको न जाने यह नहीं हो सकता। ३७.
- ❁ अहो ज्ञान! जब वे सब अपने अपने स्वभावमें रम रहे हैं और तुम्हारी नहीं सुनते तो तुम भी अपने स्वभावमें रमण करो। ३८.
- ❁ निश्चित समझे बिना निश्चित नहीं, निश्चित हुवे बिना सुख नहीं! ३९.
- ❁ समझकी कौनसी खान है, यह समझ कहाँसे आ रही है? यह कभी खत्म होगी क्या? इसी प्रकार (निर्णय करते) ज्ञान किसी रोज अन्दर आ जायेगा। ४०.
- ❁ वस्तु स्वभावानुसार तो होयकर ही रहेगी, आत्मा दुःखी बने या सुखी बने; इसका वस्तुमें कोई मूल्य नहीं। यह समझना ही होगा। यह मानना ही होगा। ४१.
- ❁ समझ जब बाह्य पर द्रव्योंको और अंतरमें सर्व गुणोंको निरंतर अपना अपना कार्य करती हुई समझ लेती है तो परका कर्तृत्वपना सहज छूट जाता है और ज्ञाता-दृष्टापना सहज रह जाता है। ४२.
- ❁ आत्मा समझनेसे ही सुलट सकता है। ४३.
- ❁ जीवकी सारी स्थिति ज्ञान-श्रद्धान पर ही निर्भर है। ज्ञान-श्रद्धानके अनुसार ही सारा जीवन निभता है। ४४.
- ❁ हित करना है तो अपने ज्ञानके सामने निरंतर विश्व-मर्यादा रखो, जरूर समाधान हो जायेगा। अब बारम्बार समझके सामने विश्व-मर्यादाको समझना ही रह गया। ४५.

- ❁ शांति निभे ज्ञानसे, मानी निभे मानसे, देह निभे धानसे। ४६.
- ❁ भावभासन बिना कोरी कल्पना कभी भी कार्यकारी सिद्ध नहीं हो सकती है। ४७.
- ❁ ज्ञानसे दोष क्षीण होता है, अनुभवसे दोषसे संबंध छूटता है।
- ❁ दूसरेके भविष्यकी चिंता करनेवाला ज्ञान अवश्य ही स्वयं अपनी बरबादी कर रहा है। ४८.
- ❁ देखो! लौकिक चतुराईवाला ज्ञान किस किस प्रकार नई नई रीतिसे अपना घात करता है। ४९.
- ❁ शरीर, नोट, परिवार ज्ञानको पागलपनके निमित्त बनते आ रहे हैं; क्योंकि यदि विवेक हो गया तो फिर उन्हें कौन पूछेगा? विवेकका समय तो यों चला गया, टगा गया। ५०.
- ❁ ज्ञान पुद्गलसे ज्ञाता-दृष्टाके सिवाय स्व-स्वामी आदि संबंध रचता है, तो पुद्गल भी ज्ञानसे वैसा ही संबंध रचता है। ज्ञान पुद्गलसे उदासीन हो जाय तो पुद्गल भी ज्ञानसे उदासीन हो जाय, पीछा छोड़ दे। ५१.
- ❁ ज्ञानकी महिमा नहीं आई है, पर वस्तुकी महिमा बनाई हुई है। ज्ञानकी महिमा लाओ। देखो! लौकिक विषयोंमें भी तो ज्ञानका प्रताप है। ५२.
- ❁ बारम्बार समझको, समझसे, समझ समझकर, समझको ही ठीक करना है। बाह्य पदार्थका प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु अपनी समझका ही प्रभाव पड़ता है। ५३.
- ❁ आत्मार्थी निरंतर समझ समझकर अर्थग्रहणसे अनर्थग्रहण तज देता है, यह सम्यक् पुरुषार्थ है। ५४.
- ❁ त्याग कैसा? कि ज्ञानके जोरसे छोड़ी हुई वस्तुकी ओर आँख भी उठाकर नहीं देखना। ५५.
- ❁ जब हमारे पास ज्ञान है तो अन्यकी जरूरत ही क्या है? ज्ञान रह गया तो सर्वस्व रह गया है। ५६.
- ❁ ज्ञानसे निर्णयका कार्य ज्ञानोपयोगकी एकाग्रतासे होता है। ५७.
- ❁ रुचिके विषयका निर्णय होने पर प्रमोद आये बिना रहता नहीं। ५८.
- ❁ घूसखोर ज्ञान निष्पक्ष निर्णय करनेमें असमर्थ है। अतः ज्ञानको घूसखोरी छुड़ाकर (निष्पक्ष जज बनाकर) फैसला करानेका अभ्यास करना। ५९.

- ❁ बिना समझे, दोष अपनाना ही घोर दुःखोंकी जननी है। ६०.
- ❁ समझके साथ श्रद्धान, वीर्य, उल्लास और शांतिका परिणमन अवश्यम्भावी है; नहीं तो समझ ही नहीं। ६१.
- ❁ जिसके घरमें दो पैर रखनेकी जगह भी नहीं, उसको कन्या कौन देगा? अर्थात् जिस आत्मामें श्रद्धान-ज्ञान ही ठीक नहीं, वहाँ वीतराग परिणति कहाँसे आवेगी? ६२.
- ❁ जगत कहता है कि हे ज्ञान! हम तुम्हें अपना स्वरूप अर्पण करते हैं, आत्म-समर्पण नहीं। ज्ञान उनसे आत्म-समर्पण चाहता है, यह घोर अन्याय है। ६३.
- ❁ बाह्य अनुकूलताके लिये अपनी अमूल्य वस्तुको क्यों बरबाद करते हो? ६४.
- ❁ आत्मामें ज्ञान ही बूझबुझकड है अर्थात् खास कर्तमकर्ता है। ६५.
- ❁ समझको समझनेकी समझ ही विधि है। ६६.
- ❁ समझको समझकर ही दोष-निर्दोषता समझ सकता है। ६७.
- ❁ ज्ञानके समझमें आते ही कितनी ही मोटी भूल हो तुरन्त खत्म हो जाती है, जडसे उखड जाती है। अतः ज्ञानकी महिमा लाओ। ६८.
- ❁ स्वरूप समझनेसे ही जब कार्यकी सिद्धि होती है तब परके पीछे पडकर व्यर्थकी हैरानी तथा कार्यकी असिद्धि और विपरीतताकी वृद्धिसे क्या फायदा? ६९.
- ❁ परको पर स्वको स्व जानना मानना ही विश्वमें आत्माका सुन्दर व्यवहार है। ७०.
- ❁ अंदर समझे बिना हाँ-नाका अपनी आत्मा कोई मूल्य नहीं करती है। ७१.
- ❁ समझके जोरसे ही परका स्वामित्व टूट जाता है। ७२.
- ❁ आत्मामें प्रवेश ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। ७३.
- ❁ अव्यवस्थित समझ मर्यादामें नहीं है और दुःख पाती है। व्यवस्थित समझ ही मर्यादा स्वीकार कर मर्यादामें आ जाती है। ७४.
- ❁ अपने आपको अखंड, अभेद, पूरा द्रव्य स्वीकारे बिना सम्यक्-पुरुषार्थ होनेका ही नहीं है, इसे स्वीकारना ही दृव्यदृष्टि कहते हैं। ७५.
- ❁ उपयोग हरदम तैयार है; तू उपयोग भूतकालमें किधर लगा, अभी किधर लग रहा

है और भविष्यमें किधर लगनेका विचार है हितमें या अहितमें? उपयोगको इस प्रकार काममें लेने वाला आत्मा सुधर सकता है, संभल सकता है। ७६.

❁ जीवनका दिन छिपता जा रहा है। ७७.

❁ हित सुहाता है, हित बताता है, हितरूप प्रवृत्त होता है; हितमें स्वयं प्रवर्ते, हित सुहावे, हित बतावे सो गुरु। ७८.

❁ सज्जनता बिनाका जीवन कलंकरूप है। विवेकपूर्वक किया गया व्यवहार ही कार्यकर है; उद्देश्य बिनाका व्यवहार दुर्व्यवहार है। ७९.

❁ जीवनको दोषोंसे बचाना ही सच्ची दया है; फालतू जीवन ही भयंकर दुश्मन है। ८०.

❁ परका पता हो जावे तो स्वका पता हुवे बिना रहे नहीं; स्वका पता हो जाय तो परका पता हुवे बिना रहे नहीं। हितका पता हो जाय तो अहितका पता हो जाय; अहितका पता हो जाय तो हितका पता हुवे बिना रहे नहीं। ८१.

❁ शान्तिदातार आत्माका निरंतर अपमान करके, उससे शांति प्राप्त करनेकी आशा करना महान अनीति है। ८२.

❁ पर द्रव्यका स्वामित्वपना—यही आत्माका सबसे बड़ा अपमान है; व्यभिचारिणी स्त्रीका दृष्टांत!

आत्मकार्यमें भोलेपनसे कार्य नहीं चलता, होश्यारीसे काम चलता है। आत्मकार्य यों ही नहीं हो जाता, इसके लिये दुनियाके सर्व कामोंसे अधिक और विशेष प्रयत्न होता है। ८३.

❁ इस घरको धर्मशाला समान समझना। ८४.

❁ अज्ञान कारण, मिथ्यात्व कषायादि कार्य और ज्ञान कारण, सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि कार्य हैं। ८५.

❁ मरणसे फुरसत नहीं सो निगोद, दुःखसे फुरसत नहीं सो नर्क, शांतिसे फुरसत नहीं सो मोक्ष है। ८६.

❁ अन्तरमें लक्ष ही विपरीत है; अंतःकरणमें तो औरको बिठाया है। दो नावों पर पैर नहीं रखा जा सकता। ८७.

❁ एक आत्मा ही विश्वमें आत्माकी सुननेवाला है। ८८.

❁ फूटी माटली और फटी गुदडी वालेको राजगद्दी और राजकन्या देवे तो भी पसन्द नहीं; छोड छोड़कर भागता है! ऐसी दशा अज्ञानीकी है। ८९.

❁ अशुभसे बचनेके लिये शुभ भाव ज्ञानीको आ जाता है, किंतु निषेध है; सांडसे डरकर चांडालके घरमें घुसनेवत्। ९०.

❁ स्वच्छंद वृत्ति पुन्य-नाशक है। ९१.

❁ समय समयके परिणामोंकी स्थिति देखते हैं यह कैसे? इसका कारण क्या? ऐसे परिणाम क्यों आये, ऐसे विचार क्यों आये? ९२.

❁ पर-द्रव्यको अपनाना कालकूट जहरसे भी भयंकर विष है। ९३.

❁ अरे! हितकी बात होने पर भी तुम नहीं सुनते तो तुम्हारा दुर्भाग्य है। (गुरु-वाणी)। ९४.

❁ अरे! तेरे अन्दरमें क्या है? उसको तो संभालो! ९५.

❁ जमाने गया जडाधिकार, खो बैठा स्वाधिकार! ९६.

❁ अज्ञानीका अज्ञान उपयोग राग द्वेष पैदा करता है। (कषाय गर्भित उपयोग!) ज्ञानीका ज्ञान उपयोग शान्ति पैदा करनेवाला है। (निखालिश उपयोग!) ९७.

❁ पुद्गलस्कंध-वैभव स्वयं अशरणरूप है। ९८.

❁ प्रमादका भोजन बाह्य अनुकूलता है। ९९.

❁ आत्माके भीतर गुण ही गुण हैं; पर्याय अपने गुणकी प्रसिद्धि करती हुई अपने गुणमें (शक्तिरूपसे) समा जाती है, किसी अन्यकी ओर झांखती भी नहीं। १००.

❁ पुन्यमें फंस गये तो सहज ही पाप आ धमकेगा। पुन्य-पाप दोनोंका निषेधक ही अपनी ओर आ सकता है। १०१.

❁ मंदाग्निमें माल हजम कैसा? (बिना पात्रता तत्त्व परिणमते नहीं)। १०२.

❁ खावे पीवे स्वामीका, गीत गावे वीरेका! (जीव ज्ञानसे सब काम करते हैं फिर भी महिमा संयोगकी है) १०३.

❁ शरीरके लिये चिंता करना अपनी आत्माका खून करना है। १०४.

❁ एक भवावतारीमें नम्बर होना चाहिये, अपनी आत्मा पर करुणा करो; ऐसा सुअवसर नहीं मिलेगा। १०५.

❁ पुण्य भोग्य नहीं, कार्य कर लेने योग्य है। १०६.

❁ चिद्रूप संसार, चिद्रूप मुक्ति! १०७.

❁ अज्ञानी पुन्यभक्षी है, पुन्यसे ही निभता है; ज्ञानीजन ज्ञानसे निभते हैं। १०८.

❁ आपके यहाँ अपना कोई काम नहीं है क्या, जो फालतू बातोंमें लगे रहते हो? आपके यहाँ अपना काम होवे तो आप फालतू बातोंमें कैसे लगे रह सकते हैं? १०९.

❁ संयोग और रागका लक्ष करनेवालेको संयोग (शरीरादि)की प्राप्ति होती है और स्वभावका लक्ष करनेवालेको अशरीरी निज-चैतन्यकी प्राप्ति होती है। ११०.

❁ अपने चैतन्यकी रक्षासे महावीरकी अहिंसा है अर्थात् अपनी अहिंसा है। १११.

❁ सिद्धकी भाव-स्तुति और द्रव्य-स्तुति का अर्थ—अपने चैतन्यकी स्तुति-भावस्तुति; और विकल्पसे सिद्ध भगवानकी स्तुति-द्रव्यस्तुति। ११२.

❁ भीतरकी एक हकार! बाह्य अनंत हकारसे बलवान है। अपनी आत्मामें अपनापन आने पर अनंत बाह्यकी मालिकाई नहीं रहती। ११३.

❁ शरीरसे अपवित्र वस्तु और क्या हो सकती है? रज-वीरज घृणित पदार्थसे तो बना है और विष्टा पैदा करता है और विष्टासे निरंतर भरा रहता है और वह भी रहेगा नहीं, जायेगा! और तू निर्मलानंद है। ११४.

❁ निरंतर ज्ञायक रहना ही जीना है। (आत्माका जीवित रहना है)। ११५.

❁ रुचिवाला जीव रुचिसे भिन्न अन्य किसी भी प्रकारकी हानि-लाभका कुछ भी मूल्य रखनेमें समर्थ नहीं है। ११६.

❁ अंतःकरणमें अपना देखना, व्यवहारिकमें अगलेको देखना, अंतःकरणके लिये बाहरका देखता है तो गलत तरीका है। ११७.

❁ किसका दर्द और किसकी देह, चाल म्हारी आतमा अपने गेह। ११८.

❁ द्रव्यके यहाँ अन्यको कुछ भी देनेको नहीं है, अपना सब कुछ अपने लिये है। ११९.

❁ शरीर प्यारा कि आत्मा प्यारा? १२०.

- ❁ गतिकी ईंट पड रही हैं। (वर्तमान जीवपरिणामके फलरूप)! १२१.
- ❁ ठीक-बेठीक तो अपनी समझ ही है, उसे ठीक कर ली तो सारा विश्व ठीक है। १२२.
- ❁ विश्वमें वस्तुस्वभावका साम्राज्य है अन्य किसीका नहीं। १२३.
- ❁ विश्व-मर्यादा विरुद्ध आत्मभावसे कार्यकी सिद्धि तो दूर रही, आत्माको घोर संताप पैदा होनेका लक्षण है। १२४.
- ❁ बादामकी गिरीके पानीसे स्पर्श करनेके बाद छिलका नहीं रह सकता, इसी माफिक सम्यक्दर्शनके बाद देह सदा चिपका नहीं रह सकता।
- पर्यायदृष्टिसे सारे पदार्थ संयोगरूप दिखते हैं, असंयोगी-तत्त्व भूतार्थस्वरूप भूल जाते हैं। १२५.
- ❁ आत्मा अपने परिणामोंका अधिकारी है अन्य किसी पर भी आत्माका अधिकार नहीं। १२६.
- ❁ यदि दोषोंको तथा दुःखको नष्ट करना है तथा शांति व सुख प्राप्त करना है तो ज्ञान (के) सामने आओ, यदि विपरीतता करनी है तो बाहर रहो। १२७.
- ❁ बुलाये सुख आता नहीं, धक्केसे दुःख जाता नहीं; १२८.
- ❁ ज्ञायकमें विकार हो जाय सो उपसर्ग; १२९.
- ❁ ज्ञायक वधतो जाय सो परिषहजय; १३०.
- ❁ अपनी तुच्छ वृत्तियाँ देखना सो आत्मनिंदा; १३१.
- ❁ आत्म-निर्णय सो कारण; आत्मानुभव सो कार्य; १३२.
- ❁ सुख गुणकी पुष्टि सो अहिंसा; दुःखकी पुष्टि सो हिंसा; १३३.
- ❁ ज्ञानकी पुष्टि सो अहिंसा; कषायकी पुष्टि सो हिंसा; १३४.
- ❁ विश्व-मर्यादा पलटनेका भाव सो हिंसा, विश्व-मर्यादा समझना सो अहिंसा; १३५.
- ❁ स्वपरका भेदविज्ञान सो आत्मा; स्वपरका ज्ञान नहीं सो जड; १३६.
- ❁ चैतन्य सो जीव, जडता सो अजीव; अशांति सो आस्रव, तीव्र अशांति सो पाप, मंद अशांति सो पुण्य, अशांतिका टिकना सो बंध, शांति सो संवर, शांतिका बढ़ना सो निर्जरा, पूर्ण शांति सो मोक्ष। (नव पदार्थ); १३७.

- ❁ शरीर में हूँ ऐसा मानना जीव तत्त्वकी भूल; १३८.
- ❁ शरीर उपज्या, में उपज्यों यह अजीव तत्त्वकी भूल; १३९.
- ❁ पुन्य-पाप भावोंको सुखदायक मानना यह आस्रव तत्त्वकी भूल; १४०.
- ❁ पुन्य अच्छा, पाप बुरा यह बंध तत्त्वकी भूल; १४१.
- ❁ आत्मा समझना कठिन है यह संवर तत्त्वकी भूल; १४२.
- ❁ इच्छामें सुख माने, यह निर्जरा तत्त्वकी भूल; १४३.
- ❁ मोक्षमें आकुलता माने यह मोक्ष तत्त्वकी भूल; १४४.
- ❁ स्वरूप-प्रत्यक्ष सो आत्मज्ञ; सकल-प्रत्यक्ष सो सर्वज्ञ; १४५.
- ❁ ज्ञान समझे तब शिष्य, ज्ञान समझावे तब गुरु; १४६.
- ❁ पराधीन दृष्टि सो बंध, स्वाधीन दृष्टि सो मोक्ष; १४७.
- ❁ गलत ज्ञान सो अपमान, सही ज्ञान सो सन्मान; गलत ज्ञान सो दुःख, सही ज्ञान सो सुख; १४८.
- ❁ वस्तुकी स्थिति सो वस्तुकी पुकार; पर वस्तुमें आत्माके स्वामित्वकी पुकार सो व्यर्थ विलाप; १४९.
- ❁ अस्ति पक्ष संभाले सो आस्तिक, नास्ति पक्ष संभाले सो नास्तिक; १५०.
- ❁ प्रसन्नता आई तो दोष गया; १५१.
- ❁ आत्मलक्ष है तो विश्व स्वयं अनुकूल; १५२.
- ❁ उपादानका लक्ष है तो निमित्त स्वयं अनुकूल; १५३.
- ❁ उपकारी वस्तुका देना सो दान, अपकारी वस्तुका छूटना सो त्याग; १५४.
- ❁ आत्मिक सुखके ग्रहण बिना पौद्गलिक-सुखका त्याग नहीं; १५५.
- ❁ आत्मा मोक्षका बीज है, विकारका बीज नहीं; १५६.
- ❁ जहाँ ज्ञानका जोर है वहाँ रागका जोर नहीं. १५७.



आत्मार्थी श्री दीपचन्दजी सेठिया, सरदारशहर के वचनामृत

समझकी अपार महिमा

[अटल-विश्वमर्यादा. चर्चा-विभाग में से साभार उद्धृत]

❁ आत्माकी गरज होनी चाहिये। आत्माकी गरज हो तो आत्मा मिलता ही है। क्यों न मिले? १.

❁ अपनेको अपनी पहिचान नहीं यह तो बहुत शर्मकी बात है। जैसे कोई अपना नाम नहीं जानता हो तो कैसा कहा जाय? इसमें भी ऐसा है। २.

❁ हमें किसकी बात देखनी है? किस साधनकी हमारे पास कमी है? ३.

❁ ज्ञानमें एक भी बातका स्वीकार करे तब तो अपना कार्य होवे ही होवे। ४.

❁ रुचि है तब तक ही अपना काम हों सकता है, रुचि बदल जानेके बाद काम नहीं हो सकता। बड़े बड़े सामर्थ्यवाले हों तब भी द्रव्य पलट जाता है तो उसका भी भान नहीं रहता। इसलिये रुचि है तब तक ही काम कर लेना चाहिये। ५.

❁ भाईसा'ब! देवोंको दुर्लभ ऐसा योग यह मिला है। ६.

❁ जो बाहरका पदार्थ दिखता है उससे अपना प्रयोजन सधता नहीं और अपना आत्मा देखनेमें आता नहीं, इसलिये आत्मार्थी सोचता है कि क्या है; मुझे शांति चाहिये कैसे मिले? ऐसे अंदर विचार करते करते मार्ग शोध लेता है। ७.

❁ बडप्पन धन-वैभव से नहीं, मान-सन्मान से नहीं; लेकिन स्वभावका स्वामित्व स्वीकार करनेसे है। ८.

❁ ज्ञानकी वर्तमान पूंजीसे निर्णयका व्यापार करना चाहिये। उपयोगसे किया हुवा निर्णय ज्ञानकी लब्ध-पूंजी बन जाती है। फिर इस लब्ध-पूंजीसे व्यापार बढ़ता है। इस प्रकार निर्णयकी लक्ष्मी बढ़ते बढ़ते स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है। दो व दो चार जैसी बात है। ९.

❁ आत्मार्थीको सत्की झुरणा होनेसे सत्-समागम प्राप्त हो ही जाता है। १०.

❁ भाईसा'ब! हमें अनादि कालकी भूल मिटानी है तो साधारण पुरुषार्थसे कार्य नहीं चलेगा। कार्य तो बहुत सरल है लेकिन इसके लिये असाधारण पुरुषार्थकी आवश्यकता है। ११.

❁ तीव्र आत्मार्थीको दिन-रात स्वरूपकी रटण होती है; खाते, पीते, सोते, उठते, बैठते सभी समय स्वरूप प्राप्तिकी ही धुन रहती है। खाते समय उपयोग निर्णय करता है कि मैं खाना खा रहा हूँ या खाना खाने के विकल्पका स्वामी बन रहा हूँ या खाना खानेकी तथा विकल्पकी क्रियाको मात्र जान रहा हूँ। स्वरूप-प्राप्तिकी यह धुन ही किसी भी अवस्थामें उसे स्वरूपकी प्राप्ति करा देगी। १२.

❁ स्वरूपका निर्णय करनेमें पुण्यका भी बहुत बंध होता है। परंतु आत्मार्थी पुण्यसे प्राप्त इस अनुकूलतामें अटकता नहीं और प्रतिकूलता उसको डिगानेमें समर्थ नहीं। (नरकके तीव्र आत्मार्थीका दृष्टांत) १३.

❁ राग-द्वेष तो आत्माका मल मूत्र है, यह कैसे आदरणीय हो सकते हैं? १४.

❁ भूख मिट जावे तब ही भोजन किया कहा जाता है। ऐसे आनंदका अनुभव हो जावे तब ही ज्ञान हुवा कहा जाता है। १५.

❁ धूवां देखनेसे यह कहाँसे आता है यह विचारनेसे अग्निका निश्चय होता है। ऐसे यह समझ-उपयोग चल रहा है यह कहाँसे आता है, किसमेंसे आता है? यह विचारो। १६.

❁ अपनेको प्रभु माने सो हमारा परिवार है। १७.

❁ प्रदर्शनीमें सिर्फ देखनेका अधिकार है, छूनेका नहीं। ऐसे सारे विश्वको देखनेका ही आत्माको अधिकार है। १८.

❁ समझसे ही सब काम सर जाता है। १९.

❁ आत्माकी बात ही न्यारी है। कब कौन आत्मा कैसा भी काम कर लेता है। आत्मा है न! हम सबको प्रभु ही देखते हैं। २०.

❁ समय पर भोजन न मिले तब क्षुधा खतम हो जाती है। ऐसे जब भी अपना परिणाम अच्छा होवे तब चिंतनमें बैठ जाना। हर समय परिणाम ठीक नहीं होता। इसलिये जब परिणाम ठीक होवे तब रात भी क्यों न हो, चिंतनमें बैठ जाना। रातके समय कोलाहल आदि नहीं होनेसे ठीक होता है। २१.

❁ मेरा निर्णय ठीक है तब तो आगे बढ़ेगा ही नहीं। निर्णयकी गलती पकड़ेगा तब ही आगे बढ़ सकता है। गलती तब पकड़नेमें आती है जब सही होता है। सही होता जाता है और गलती पकड़नेमें आती रहती है। ऐसे ऐसे निर्णयका कार्य आगे बढ़ता जाता है। २२.

❁ यह तो अनंत भव के नाश करनेका महान कार्य है, इसलिये इसमें महान पुरुषार्थ चाहिये। २३.

❁ जितना जितना निर्णय होता जाता है उतना उतना मिथ्यात्व टूटता जाता है। जितना निर्णय हुवा उतनी शांति तो मिलती है, परन्तु कार्य सिद्ध हुवे बिना वास्तविक शांति नहीं होती। २४.

❁ बहुत काम बाकी है ऐसा लगना चाहिये। २५.

❁ मुनियोंको उपसर्ग आ पड़ते हैं तब, जैसे वाघ सिंहके आते हम लोग घरमें चले जाते हैं वैसे मुनिराज अपने अंतरमें चले जाते हैं। तलवारसे काटनेवाला और पैरकी चंपी करनेवाला, दोनों उनको समान हैं। २६.

❁ अंतरमें प्रवेश हुए बिना प्रमाण (सत्य) होता नहीं और अंतरमें प्रवेश किये सब प्रमाण हो जाता है। २७.

❁ आग कहती है मैंने जलको उष्ण किया; तपेली कहती है कि मैंने जलको उष्ण किया, मैं बीचमेंसे निकल जाऊँ फिर तू आग जलको गर्म करके दिखादे। (जल स्वयं उष्ण हुआ है तब अग्नि, तपेली आदि उसमें निमित्त मात्र हैं) २८.

❁ निर्णयमें तो गलती है और सही मान लिया है तब तो फिर अपना काम रुक ही गया, आगे बढ़ेगा ही नहीं। आत्मार्थी तो अपने निर्णयको गलत मानते हैं और गलती दूढ़ते हैं कि मेरेमें क्या गलती है। २९.

❁ आगे आगे बढ़ते भी अटकनेकी बहुत जगह हैं। जलाशयके पास जा करके टंडी हवा आ जानेसे संतोष हो जाये तो भी तृषा नहीं बुझे। ऐसे कषायकी मंदता और शास्त्रज्ञान होते संतोष हो जावे तब भी आत्मप्राप्ति नहीं हो सकती। ३०.

❁ शरीरके ममत्वसे दुःखका भोग तो अनादिसे करते आये हो। अब एक दफे शरीरका ममत्व तोडकर अनुभव करके देखो क्या लगता है? ३१.

❁ अपना माल अकेला ही खा लेना! ३२.

- ❁ मुनियोंकी दशा ही वज्र जैसी होती है। ३३.
- ❁ एक दवासे दर्द न मिटा तो दूसरी दवाका प्रयोग करते हैं। उससे दर्द न मिटा तो तीसरी दवाका प्रयोग करते हैं। ऐसे यहाँ भी एक प्रयोगसे अपना कार्य नहीं हुवा तो दूसरी रीतिसे, तीसरी रीतिसे; ऐसे प्रयोग करते करते अपना कार्य हो जाता है। ३४.
- ❁ आत्माके पीछे पडनेसे आत्मा मिले ही मिले। ३५.
- ❁ इस गलीमें न मिला तो दूसरी गलीमें, दूसरी गलीमें न मिला तो तीसरी गलीमें। इस तरह खोज करनेवाला घर जरूर ढूँढ लेता है। ऐसे आत्माको प्राप्त करना है तो भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रयोग करते करते आत्माको प्राप्त कर लेता है। ३६.
- ❁ यह तो प्रभु बननेकी विधि है। भूखे मरनेकी बात नहीं। ३७.
- ❁ भगवानका वचन अंदरके भगवानसे प्रमाण करना। ३८.
- ❁ शरीरमें भोजन मुखद्वारसे ही पहुंचता है और उसीके द्वारा ग्रहण किया हुआ भोजन स्वयमेव शरीरके प्रत्येक अंगको पहुंच जाता है। इसी प्रकार ज्ञान आत्माका मुख है। बात ज्ञानके लक्षमें आ जानेसे आत्मामें प्रवेश हो जाती है और तद्अनुकूल आत्माके सभी गुण परिणमन करने लगते हैं। जैसे खीर शरीरके उपर उपर लपेट दी जाय तो अन्दर नहीं पहुंचती है। इस प्रकार ज्ञानमें निर्णय किये बिना उपर उपर जाननेसे काम नहीं चलता है। ३९.
- ❁ क्या धूल कमानेके लिये पढाई है? ४०.
- ❁ कोई टीका (चांदला) करे तो अच्छा समझते हैं। ऐसे कोई टीका (निंदा करे-दोष बतावे) करे वह अच्छा समझना। ४१.
- ❁ आत्मार्थी ज्ञानीके आधीन होता है। ४२.
- ❁ अपने अंतःकरणको टटोलना। ४३.
- ❁ अरे! नोटोंसे सैट कैसा? परकी महिमासे अपनी अधिकता यह तो लज्जाकी बात है। जैसे किसीके घरमें वेश्या हो और उसे कहे, लालाजी तो बहुत बडे हैं क्योंकी उनके घरमें वेश्या है, सो यह कैसी लज्जाकी बात लगे? किसीकी किसी डाकूके साथ मित्रता हो और कोई उसको कहे कि तुम तो बहुत बडे आदमी हो क्योंकि तुम्हारा तो डाकू दोस्त है। सो कैसा लगे? ऐसे यहाँ भी समझना। ४४.

❁ प्रभु बनने जा रहे हो, याचना नहीं करना, आत्मार्थता ही करनी होगी। ४५.

❁ चाह पडी है सो सेठ कैसे? दृष्टांत फरमाया कि रूस, अमेरिका और अंग्रेज तीनोंसे कोई देव प्रसन्न हो गया और इनसे कहने लगा, मांगो क्या चाहते हो? तब रूसने कहा कि अमेरिकावालोंका सर्वनाश हो जावे। फिर अमेरिकावालोंसे देवने कहा कि मांगो; उन्होंने कहा कि रूसका सर्वनाश हो जावे। फिर अंग्रेजसे कहा कि तुम क्या चाहते हो? तब अंग्रेजने कहा कि हमें कुछ नहीं चाहिये, सिर्फ इन दोनोंकी मांग पूरी करो। इन दोनोंकी मांग पूरी कर दो, क्या यह मांग नहीं? यह भी तो चाह ही है। चाह है वहाँ सुख नहीं। ४६.

❁ आत्मार्थीको ठट्टा, मज़ाक, फिजूलकी अनर्थदंड क्रिया, ज्यादा अदवा तदवा बोलना इत्यादि नहीं होता। ४७.

❁ कोई एक शब्द सुनते ही संसार-विषयक सारी घटना समझमें आ जाती है, ऐसे तत्त्वमें भी एक शब्दके उपरसे पूरा तत्त्व पकड़ लेना चाहिये। ४८.

❁ ज्ञानका माहात्म्य आते ही सारे विश्वका माहात्म्य छूट जाता है। ४९.

❁ विकल्पोंकी तो कोई गिनती ही नहीं है; ज्ञानकी ही सारी महिमा है। ५०.

❁ सम्यग्दर्शन होनेमें देरी भी लग जाय तो भी कोई हर्ज नहीं परंतु समझ चालु हो जानी चाहिये। सम्यग्दर्शन तुरंत भी हो जाय या रातके बारह बजे उठे और रातके बारह बजे सम्यक्त्व हो जाय। सम्यक्त्व कभी भी हो सकता है। ५१.

❁ अनादिसे चली आती हुई गलती तोड़ना बड़ा भारी कठिन काम है। आत्मार्थी ही यह गलती तोड़ सकते हैं। आत्मार्थी ही अपनी गलतीको स्वीकार सकते हैं। हरेक जीव अपनी गलतीको स्वीकार नहीं सकता। ५२.

❁ गुणकी चिंता नहीं है, दोषोंकी चिंता रखनी चाहिये। गुण प्रगट हुवा है वह चले जानावाला नहीं है। परंतु दोषकी बहुत चिंता रखनी चाहिये। (गैहूंमेंसे कंकर निकाल निकाल कर फैंक देते हैं यह दृष्टांत दिया था।) ५३.

❁ स्टेशन पर प्लेटफोर्मको सब देखते हैं परंतु सामानकी संभाल रखकर देखते हैं। ऐसे अपनी आत्माकी संभाल रखकर दूसरे दूसरे पदार्थको देखना। परंतु अपनी आत्माका लक्ष नहीं चूकना चाहिये। ५४.

❁ इन सब बातोंकी इसलिये जरूरत है कि मरण समय आ जावे फिर मरणके साथ भी लड सके। ५५.

❁ ज्ञान दान वह ही सबसे महान दान है, उसमें सब दान समा जाते हैं। उसके समान और कोई दान नहीं है। ५६.

❁ नमस्कार मंत्र जपनेमें आता है इसका क्या अर्थ है? असलमें इससे अपने स्वरूपका स्मरण होता है कि मैं ऐसा हूँ। ५७.

❁ अपने स्वरूपकी प्राप्ति न होवे तब तक ऐसा ही लगना चाहिये कि अरे! मैंने कुछ भी नहीं किया, मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ, ऐसा रहना चाहिये। ५८.

❁ जैसे सूर्य आते ही अंधकार चला जाता है, अंधकारका नाश करना नहीं पडता। ऐसे ज्ञान होते ही अज्ञान तत्काल नाश हो जाता है, नाश करना नहीं पडता है। ५९.

❁ बाहरके सभी द्रव्य भी ज्ञानके अनुकूल होकर ही परिणमते हैं। जैसा ज्ञान होता है उसके अनुसार ही ज्ञेयका परिणमन होता है। जब बाहरके द्रव्य भी ज्ञानके अनुसार ही परिणमते हैं तब अपने सब गुण ज्ञानके अनुसार क्यों न परिणमे? अर्थात् आत्माके सभी गुण भी ज्ञानके अनुसार ही परिणमते हैं। ६०.

❁ अच्छे कार्यमें इस कालमें बाधा आती ही है। इसलिये अच्छे कार्यमें देरी नहीं करना। जो कार्य अच्छा लगता है तो उसके करनेमें देरी क्यों? अच्छा लगे वह कार्य अभी ही करना, नहीं तो अच्छा लगा ही नहीं! ६१.

❁ दृष्टिका दोष यही सबसे बडा दोष है। यही तोडनेकी बात है। फिर चारित्रिका दोष रह जावे उसकी कोई बात नहीं। (वह भी छुट जायगा।) ६२.

❁ रेलगाडीमें नींदमें भी (जाग जागकर) सामानका लक्ष और संभाल रखते हैं। ऐसे यहाँ नींदमें भी अपनी वस्तुकी संभाल रखनी चाहिये। ६३.

❁ आत्माकी बात चलती हो तो तीन चार घंटे चले जावें तो भी मालूम नहीं पडता। ६४.

❁ आत्मार्थी होवे उसका इस भवमें काम नहीं होवे तो दूसरे भवमें मनुष्य होकर एकावतारी हो जाता है। इसलिये चिन्ता नहीं करनी, यह चिन्ता करनेका विषय नहीं है, वस्तुस्वरूप समझना है। आकुलतासे क्या होता है? ६५.

❁ आत्मार्थीका आदर्श व्यवहार होता है। वह साधारण साधारण बातोंमें नहीं रुकता, नहीं अटकता, नहीं लक्ष देता। जैसे अबजपति होनेवाला पैसे पैसेको नहीं पकडता, वैसे आत्मा अनंतपति होने जा रहा है, प्रभु बनने जा रहा है तो बहुत ही आदर्श व्यवहार होता है। ६६.

❁ सामनेवाला चाहे जितना कटोर हो जावे परंतु हमें अपनी सज्जनता ही रखनी। ६७.

❁ जैसे हिन्दुस्तानवाला पाकिस्तानवालोंसे मैत्री कर लेवे तो राजाका बडा द्रोही है। ऐसे चैतन्य राजाकी प्रजा-परिणति पुद्गलके साथ मित्रता करे, वह चैतन्यका बडा द्रोह है, महान अपराध है। इससे बढकर कोई भयंकर पाप नहीं है। ६८.

❁ यह शरीर चला जायेगा, परिवार विनष्ट होगा, संपत्ति चली जायेगी, मान चला जायेगा, रोग हो जायेगा, ऐसे पाँच प्रकारसे भय होता है तो आत्मार्थी उससे घबराते नहीं हैं। चाहे जो हो जावे। ६९.

❁ जैसे अपने घरमें जावे तब ही शांति होती है, दूसरेके घरमें शांति नहीं होती। ऐसे अपने आत्मघरमें आवे तब ही शांति होती है। ७०.

❁ “विकल्पोंसे भिन्नता हुई वह तो प्रभु हो गया।” ७१.

❁ आत्मार्थी तो वीर होते हैं, माय-कंगला (हीनवीर्य) नहीं होते। क्योंकि मिथ्यात्वमें अनंत दोष हैं इसलिये उसका नाश करनेमें अनंत पुरुषार्थ होता है तो आत्मार्थी बडे वीर होते हैं। ७२.

❁ प्रश्न :—स्वरूपका विचार करते हैं परंतु विकल्प चलते रहते हैं, वह टूटते नहीं हैं, तो कैसे करना ?

उत्तर :—विकल्प तोडनेकी दृष्टि ही विपरीत है। विकल्प तोडने नहीं पडते हैं। परंतु ज्ञानकी सामर्थ्य बढनेसे विकल्पोंको स्वयं ही टूटना पडता है, टूट ही जाते हैं, तोडना नहीं पडता। ७३.

❁ जैसे समुद्रमें तो जल ही भरा है, ऐसे आत्मामें ज्ञान ही भरा है। ज्ञान अंदरसे ही आता है। ज्ञान क्षणे क्षणे कहाँ से आता है यह निर्णय करना है और ऐसे निर्णयसे ज्ञानकी ताकत बढती जाती है। ज्ञान उपयोग करते करते ज्ञानकी पूंजी बढती जाती है। ध्रुवमें सब ताकत भरी पडी है। वह समझना है। ७४.

❁ आत्मामें विकल्प करनेका स्वभाव है ही नहीं, फिर भी विकल्प होते तो हैं ? इसलिये

उनका स्वरूप समझके विकल्पोंसे भेदज्ञान करना। आत्माका विकल्प करनेका स्वभाव है ही नहीं, यह बात खास समझनेकी है। ७५.

❁ जिसमें विकारका जरा भी प्रवेश नहीं है, वह शुद्धनयका विषय है। जिसमें कभी भी विकारका प्रवेश हुआ ही नहीं है वह शुद्धनयका विषय है। जिसमें सुख-शांति हो वह शुद्धनयका विषय है। जिसमें विकल्प मात्रका निषेध हो, जो वचनातीत हो वह शुद्धनयका विषय है। शुद्धनयके विषयमें फिरसे स्पष्टता करते हुवे फरमाया कि “विकारका जरा भी, कभी भी प्रवेश हुआ ही नहीं, हो सकता ही नहीं, और होगा ही नहीं वह शुद्धनयका विषय है। वह विकारको प्रवेश करने देवे ही नहीं। शुद्धनयके विषयमें विकारके प्रवेशके लिये दरवाजे सदा बंद ही रहते हैं।” ७६.

❁ किसी भी प्रकारका शुभभाव ले लो। दर्शन, पूजन, प्रवचन, श्रवण, चर्चा आदि सबमें घंटे, दो घंटे, तीन घंटेके बाद थक लगेगी ही और विश्राम करनेका भाव आयेगा। धर्ममें ऐसा नहीं होता है। धर्म आनंदमय है। उसमें थक नहीं लगती, कंटाला नहीं आता (जी नहीं भरता), उसमेंसे तो च्युतिका पश्चात्ताप होता है। शुभभाव आते हैं परंतु आदर नहीं होता है। स्वरूपमें स्थिति नहीं होती इसलिये आते हैं परन्तु उनका आदर नहीं होता है। ७७.

❁ सत्य है उसमें भय नहीं है। सौ टक्का सोना हमारे पासमें है और चोरीका माल नहीं है फिर भय किसका? ऐसे सत्यमें भय नहीं होता है। ७८.

❁ जिसको मुक्ति चाहिये, वह सबसे पहले स्वपरका भेदज्ञान करो। मैं तो चैतन्यमूर्ति हूँ और शरीरादि मैं नहीं। बस ऐसा भेदज्ञान करना। बाकी तो जाननेका विषय तो केवलज्ञान तक पडा है। अपनी आत्माको समझो और अपनाओ फिर दूसरे सब तो अपने आप समझमें आ जायेंगे। ७९.

❁ सारे शरीरमें अपनापन है, ऐसे सारे आत्मामें अपनापन हो जाना चाहिये। बस! इसके लिये भेदज्ञान करो, यह प्रयोजनभूत बात है। ८०.

❁ कागज पढते समय देखो तो अकेला समझका ही कार्य दिखता है, परंतु कागज लिखते समय ऐसा मानता है कि मैं लिखनेका काम कर रहा हूँ, परंतु हर समय ऐसा रहना चाहिये कि मैं तो समझका ही काम कर रहा हूँ। दूसरा कोई काम मेरा है ही नहीं।

कागज पढनेका दृष्टांत वह समझका स्वरूप समझनेका दृष्टांत है और कागज लिखूँ,

मैं कागज लिखता हूँ यह कर्तृत्वबुद्धिरूप अज्ञानके स्वरूप समझनेका दृष्टांत है। ऐसे इन दोनों दृष्टांतोंसे समझका और अज्ञानके स्वरूपका ख्याल आता है। ८१.

❁ अपनी वस्तुका माहात्म्य आना चाहिये। उग्रसे उग्र जितनी उसकी मर्यादा है उतना बेहद माहात्म्य आनेसे विकल्प टूट जाता है और माहात्म्य समझसे ही आयेगा, दूसरा उपाय नहीं है। ८२.

❁ बाहरकी संपत्तिसे अपनेको सेठ मानना वह तो अपनेको गाली है, उससे भी बढकर है, और पैसेसे सेठ होवे तो पैसा सरकार ले लेवे तो सेठपणा चला जाय। परंतु विवेकसे सेठपना है और विवेकको कौन ले जा सकता है? ८३.

❁ मिथ्यात्व अवस्थामें अपनापन (स्वामित्व) बेचा जाता है, खरीदा भी जाता है। अपनापन जन्मता भी है और मरता भी है। जैसे कोई मकान लिया तो उसमें अपनापन आया, फिर बेच दिया तो अपनापन भी बेच दिया। बालक जन्मा तो अपनापन भी साथमें जन्मता है। बालक मरते अपनापन मर जाता है, परन्तु वास्तवमें अपनापन बेचा नहीं जाता है, अपनापन खरीदा नहीं जाता है। अपनापन जन्मता नहीं है, अपनापन मरता नहीं है। अपनापन शाश्वत वस्तु है। ८४.

❁ प्रतिकूल प्रसंगमें अपनी कसौटी होती है, वह तो अच्छा है। ८५.

❁ भगवानके पाससे उठनेका मन नहीं होता है क्योंकि भगवानने सब चिंताएँ नष्ट कर दी हैं और अपनेको सब चिंताएँ नष्ट करनी हैं इसलिये भगवानके पाससे उठनेको मन नहीं होता है। फिर भी जबरन उठना पडता है। ८६.

❁ ममत्व है सो ही बडी भयंकर चीज है। एक बच्चेके ममत्वसे अपने अंदरमें चैतन्यके अनंत बच्चोंका घात करना पडता है, वह अज्ञानीको खबर नहीं है। ८७.

❁ शरीरके लिये, बच्चेके लिये, स्त्रीके लिये रात्रिके डेढ बजे उठते हैं। क्या अपनी आत्माके लिये ऐसे उठते हैं? अपनी रुचिका मुकाबला करो! ८८.

❁ परकी करुणा आ जाय परंतु अधिक तो अपनी आत्माकी ही करुणा होनी चाहिये। आत्मार्थी कषायको बरदास्त नहीं कर सकते हैं। ८९.

❁ कुटुंबके प्रति मोहसे नहीं देखो, करुणासे देखो। रास्तेमें किसीका बच्चा हो और करुणा आ जावे और उपचार भी करे, परंतु दुःखी नहीं होता; क्योंकि ममत्व नहीं है। ऐसे

अपने बालबच्चोंके प्रति भी ममत्व नहीं होना चाहिये, करुणा जरूर होती है क्योंकि हम निष्ठुर नहीं हैं। उनको अपनी तरफसे दुःख नहीं होना चाहिये, बस यही करुणा है। उनको हित-शिक्षा न रुचे तो हित-शिक्षा भी नहीं देनी चाहिये। ९०.

❁ माताका, स्त्रीका, पुत्रका सबका स्वभाव जान लेना चाहिये। भोजनके समय, निद्राके समय जो कलहकी बात करे, यह क्या? एक बार स्वभाव जान लेना है। फिर उनका अनुकूल वर्तन होने पर भी अपने अंतःकरणमें उनका स्थान नहीं होना चाहिये और समाधान करके उनका स्वार्थी स्वभाव भूल नहीं जाना चाहिये। ममत्ववाला जीव सब भूल जाता है और मोह करने लगता है। आत्मार्थी जीव परिवारवालोंका अनुकूल वर्तन देखकर भी ममत्व नहीं करता है और अपने अंतरमें स्थान नहीं देता है। ९१.

❁ हमें तो स्वर्ग भी नहीं चाहिये, नरक भी नहीं चाहिये। हमें तो अपनी आत्माकी अनुकूलता चाहिये। ९२.

❁ यह बात जो कहते हैं वह कभी फिरनेवाली नहीं है। आज तो कहते हैं और कल फिर जाय ऐसी बात नहीं। शरीर भी अपनी बात बदलता नहीं। वह कहता है कि मैं तुम्हारी नहीं मानूँगा और नहीं टिक्ूँगा, तो यह बात कायम रखता है। तो हम हमारी बात क्यों फेर दे? हम भी हमारी बातको कायम रखेंगे। ९३.

❁ परिणामकी एकाग्रताके लिये एकांतकी जरूरत है। कोई स्त्री, पुत्रादि रोकते नहीं। मुनि जंगलमें चले जाते हैं, इसलिये कोई रोकता है ऐसी बात नहीं है। परंतु अपने परिणामकी एकाग्रता नहीं होती है, इसलिये जंगलमें चले जाते हैं। ९४.

❁ हम पैसेके नौकर नहीं हैं, पैसा हमारा नौकर है। हम तो मालिक कहलाते हैं न! तो पैसेके लिये हम दुःखी क्यों बने? ९५.

❁ आत्माकी तीव्र लगनी और जिज्ञासा होनी चाहिये। रात-दिन यही (तत्त्व- विचारादि) चलता रहना चाहिये। ९६.

❁ प्रश्न :—शरीरमें रोग होने पर दुःख क्यों होता है?

उत्तर :—शरीरमें अपनापन स्थापित किया है, इसलिये दुःख होता है। आत्मामें अपनापन स्थापे तो दुःख न होवे।

❁ प्रश्न :—आत्मामें अपनापन तो अनुभव होवे तब होवे न?

उत्तर :—ऐसा नहीं है, आत्मामें अपनापन स्थापे तब अनुभव होता है, ऐसा है। ९७.

❁ समझदार बननेमें तो मैं घाटा समझता हूँ, समझनेवाला बननेमें ही लाभ है। ९८.

❁ समझका जोर होता है तो वह मिथ्याश्रद्धाको पलट देता है और मिथ्याश्रद्धाका जोर होता है तो वह समझको पलट देता है। ९९.

❁ खुदको पूछना चाहिये कि यह नशा तो नहीं चढा है न? नशेका भान होगा तो नशा उतर जायेगा। १००.

❁ प्रसन्नता उठना समझमें आनेका चिह्न है। प्रसन्नता नहीं उठती तो समझमें आया ही नहीं है। ज्ञान शुष्क नहीं है। ज्ञान अकेला नहीं होता है, साथमें प्रसन्नता और वीर्य होते ही हैं। १०१.

❁ फालतू वस्तुओंसे क्या प्रयोजन है? जरूरतकी चीजें न मिले तो भी चला लेते हैं। मूंगकी दाल भी न मिले तो नमक रोटी खा लेवें। १०२.

❁ रुचि तो खुदको ही करनी पडती है। यह चीज जेबमें थोडे डाली जाती है? १०३.

❁ शांति तो भीतरमें ही है, उसको ही देखना है। कोई कैसे भी कहे तो उसमें घबराना क्यों? अरे! इसने ऐसा ऐसा कह दिया, क्या करें? ऐसे विकल्पोंमें क्यों लगा रहे? उन विकल्पोंको नहीं देखना, अंदरमें शांति पडी है, उसको देखना। यह खास बात है। १०४.

❁ रात्रिके १२ बजे टंडमें, बरसातमें टट्टी पेशाब करने जाना पडता है। नींदसे उठकर जाना कोई पसंद नहीं करता, फिर भी जाना पडता है। ऐसे आत्माकी रुचिवालेको विकल्प पसंद नहीं है, फिर भी होते हैं। १०५.

❁ मोहको नष्ट करनेका सामर्थ्य ज्ञानके सिवाय अन्य किसी भी गुणमें नहीं है। ज्ञानसे ही मोह नष्ट होता है। १०६.

❁ अनुकूलता जुटानेके भाव ही आत्माको प्रतिकूलता है। १०७.

❁ संसारका स्वरूप समझ लिया, फिर वहाँ फंसे कैसे? पुत्रादि कभी तो अनुकूल वर्ते, कभी प्रतिकूल, अपने आधीन हैं ही नहीं। अग्निका उष्ण-स्वरूप जान लिया, तो क्या फिर अग्निको टंडी मानता है? १०८.

❁ (जो) अपनी आत्माकी अनुकूलता देखते हैं उनको सारा विश्व भी अनुकूल हो

जाता है। देखो न! तीर्थकर के लिये इन्द्रादि उपरसे आ कर कैसे अनुकूल वर्तते हैं और जो बाहरकी अनुकूलता चाहे उसको अनुकूलता नहीं मिलती है। १०९.

❁ देखो! क्षण पहले तो छ खंडका अधिपति चक्रवर्ती, क्षण पीछे सातवीं नरकका नारकी। संसारका तो ऐसा स्वरूप है। ११०.

❁ रुपियोंकी नोटोंसे प्रेम करते हैं क्योंकि उनसे संसारिक सुखकी सब सामग्री मिलती है। नोट चाहे मैला हो फिर भी प्रेम करते हैं। ऐसे हम तो आत्मासे प्रेम करते हैं क्योंकि आत्मामें हमें सब कुछ मिलता है। हमें जो चाहिये वह सब आत्मामें मिलता है। १११.

❁ अपना अच्छा बुरा परिणाम ही अपने काममें आता है, दूसरी कोई वस्तु अपने काममें नहीं आती है। ११२.

❁ अपनी वस्तु प्राप्त करना ही सबसे सुगम काम है, परंतु कठिन मान लिया है तो कौन छुडावे? अपनी वस्तु प्राप्त करना ही सुगम है, उसमें किसीका आश्रय नहीं लेना पडता है, कहीं दूर जाना नहीं पडता है। नजदीक और प्रत्यक्ष ही है। कोई बोझा उठाना पडता नहीं। बोझा उठाना हो तब तो कठिन लगे। परंतु यहाँ तो सिर्फ स्वरूप ही समझना है, दूसरा कुछ नहीं करना है तब कठिन कैसे? कठिन मान लिया है तो कौन फेर सकता है? ११३.

❁ अपनी आत्माको दुःखी क्यों बनाना? दूसरा स्वयं अपने कारणसे दुःखी बने तो बनों, परंतु इससे हमें दुःखी क्यों बनना? ऐसी विद्या सीखनी कि दुःखी न बने। शरीरमें रोगादि आ जावें फिर भी दुःखी न बने, ऐसी विद्या सीखनी। ११४.

❁ भगवान बात करते हैं वह भले ही प्रमाणिक है; परंतु इससे यह हमारे लिये प्रमाण नहीं हो सकती है। अपने भगवानसे जब प्रमाण होवे तब ही अपने लिये प्रमाण होती है। ११५.

❁ भैया! अपनी परिणतिको सुधारना है, यही अपनेको करना है। तो क्या अपनी परिणतिको आप न सुधार सके? अपनी परिणतिको आप न सुधार सके यह कैसी शरमकी बात है? जैसे अपनी स्त्री बाहरचली (आवारा) हो जावे तो सारा परिवार बिगड जावे ऐसे अपनी परिणति बाहर जानेसे अपने सब गुण बिगड जाते हैं। (श्रद्धान संबंधी बात है।) ११६.

❁ प्रश्न :—आत्माकी रुचि कैसे होवे?

उत्तर :—आत्माकी महिमा आनेसे आत्माकी रुचि होती है। आत्माका स्वरूप समझनेसे आत्माकी महिमा आती है। प्रथम सातों तत्त्वोंका स्वरूप समझना चाहिये। ११७.

❁ लब्धपूंजी भी बहुत बड़ी है। ११८.

❁ अपना कार्य करनेमें बनिया होना। बनिया नफे-टोटेका सब हिसाब रखता है न! और बाहरमें कोई प्रतिकूल प्रसंग आ जावे तब क्षत्रिय बनना, सामना करना। ११९.

❁ अपना अंतर देखनेकी विधि आ जानी चाहिये। अपना अंतर देखनेसे सबका अंतर मालूम हो जाता है। नकलीपनेसे काम नहीं चलता है। स्वीकृति अंतरसे होनी चाहिये। वैसे बाहरसे तो सब हां हां करते हैं, पर अंतरसे स्वीकृति होनी चाहिये। १२०.

❁ श्रोता :—अपनी उल्टी समझ ही दुश्मन है न ?

उत्तर :—अपनी समझ दुश्मन लगे तो दुश्मन रहे ही नहीं। विच्छुसे कैसे दूर भागते हैं ? ऐसे जिसको अपनी समझ दुश्मनरूप लगे उसे ऐसी दुश्मनरूप गलत समझ रहवे ही नहीं। १२१.

❁ बचपनकी अणसमझ बड़े होने पर समझसे छूट जाती है। ऐसे पूर्वकी छोटी समझ सच्ची समझसे छूट जाती है। १२२.

❁ आत्मार्थी जीवमें सज्जनता बढ़ती ही जाती है—बढ़ती ही जाती है। पता ही नहीं लगता कि उसमें कितनी सज्जनता है। १२३.

❁ आत्मार्थीका यही लक्षण है कि अपने दोषोंको देखता है और स्वरूप समझनेका निरंतर प्रयत्न करता है। १२४.

❁ जैसे नोटोंका (रुपयोंका) हिसाब रखते हैं, जहाँ तहाँ नहीं फेंक देते। ऐसे आत्मार्थी अपने उपयोगको जहाँ तहाँ नहीं लगाते हैं। आत्मार्थी निरर्थक कार्योंसे अपने उपयोगको हटा लेते हैं, तब ही उनके ज्ञानमें राग और ज्ञानकी भिन्नता करनेकी सामर्थ्य आती है, यह पहली पात्रता है। १२५.

❁ अपना अंतःकरण तो अपने बालबच्चोंको और शरीरको दे दिया है तो अपनी आत्मा कैसे देखनेमें आवे ? १२६.

❁ अग्नि और बरफ दोनों एक साथ नहीं रह सकते। फिर भी यह दोनों कदाचित् एक साथ रह भी जावें परंतु अपना अंतःकरण दो जगह नहीं रह सकता है। अंतःकरण या तो अपनी आत्माको दे सकते हैं या परको दे सकते हैं। दोनोंको एक साथ दे ही नहीं सकते। १२७.

❁ बोम्बाइंटिंग अपने उपर कोई कर ही नहीं सकता। अपना परिवार (पर्याय) ही अपने

उपर बोम्बाइडिंग कर सकता है। यह शरीर छूट जावे तो क्या है? यह शरीर तो बम्बका ही परिवार है। अपना नहीं है। १२८.

❁ बाहरसे सब अनुकूलता मिल जावे तो अपना काम कर लेना। अपना काम नहीं करे तो बाहरकी अनुकूलतासे क्या अर्थ है? अपना काम कर लेनेमें ही बाहरकी अनुकूलता मिलनेकी सफलता है। १२९.

❁ अपनी समझको अपने काममें लेनेका कार्य चालु हो जाता है तो शरीर, धन आदि सबका बाहरके लिये कैसा अच्छा उपयोग होवे ऐसा ही भाव आता है। अपनी वस्तुसे अपना काम करते हैं और शरीर, धन आदि बाहरकी चीज दूसरेके काममें, अच्छे उपयोगमें लगानेका भाव आता है। १३०.

❁ अपना कार्य करने लग जावे तो अपने अंदरसे भी मदद मिलने लगती है। जैसे पूर्वकी ओर देखनेसे, थोडा थोडा प्रकाश आनेकी वजहसे सूर्यका पता लगता है। बाजरेकी सुगंधसे, उस दिशामें ५-१ कोस दूर बाजरेका खेत है ऐसा पता लगता है। टंडी हवासे उस दिशामें थोडी दूर जलाशय है ऐसा पता लग जाता है, ऐसे अपनी समझका कार्य चालु होनेसे सब पता लग जाता है। १३१.

❁ अज्ञान है वह बडा राक्षस है। वह पीछे पडा है। अपने आत्मा सिवाय दूसरा कोई शरण नहीं है। अज्ञान है वह राक्षस लगना चाहिये। कहनेकी बात नहीं है, खरेखर राक्षस लगना चाहिये तब ही उससे बच सके। १३२.

❁ सर्प बाहरमें बांका टेढा चलता है परंतु अपने विलमें जाता है तब सीधा ही चल सकता है। ऐसे अपने घर (आत्मा)में जानेमें टेढाई आदि नहीं चल सकती है। १३३.

❁ यह कार्य-पद्धति (समझनेकी सही पद्धति) आ जावे तो सिद्धपद पाये बिना छूटे ही नहीं। १३४.

❁ सच्ची समझ अनुकूलतामें संतुष्ट होकर या प्रतिकूलतामें हताश होकर अपनी आत्माको सत्यसे वंचित नहीं रखती है, अनुकूलतामें संतुष्ट होकर, या प्रतिकूलतामें हताश होकर अटक नहीं जाती है परंतु अपना कार्य करके ही रहती है। तत्त्व समझनेमें कल पर टालनेवाला काम नहीं कर सकता है। यह तो तत्काल करनेका काम है, अभी ही करनेका काम है। १३५.

❁ आत्मार्थीका लक्ष हितमें प्रवर्तना और अहितसे बचनेका निरंतर रहता है। आत्मार्थी

बाहरके प्रयोजनभूत कार्यसे भी छूटना चाहते हैं तो अप्रयोजनभूतकी तो बात ही क्या ? शुभभाव भी प्रयोजनभूत नहीं हैं इसलिये उनका भी निषेध चलता है। १३६.

❁ अपने ज्ञानका, वचनका, और परिणामका निर्गल उपयोग नहीं करना। जैसे रुपयेका खोटा उपयोग नहीं करते ऐसे अपने ज्ञानका, वचनका और परिणामका खोटा उपयोग नहीं करो। १३७.

❁ जिनके पास अपना काम है वह कलहको अपने पास नहीं आने देते हैं। निकम्मा जीव ही कलहमें पडता है। १३८.

❁ प्रश्न :—विकल्प तो भासता है परन्तु आत्मा नहीं भासता है ?

उत्तर :—विकल्पको कौन देखता है ? विकल्पको देखनेवाला ही तो ज्ञान है, समझ है, वह ही आत्मा है। १३९.

❁ बाहरकी अनुकूलताका क्या काम है ? चाहे जैसी अनुकूलता हो इससे आत्माको क्या ? आत्माकी अनुकूलताकी हमें जरूरत है; जिससे आत्मशांति मिले वह आत्माकी अनुकूलता है। १४०.

❁ सर्वार्थसिद्धिका देव भी निरंतर अपने उपयोगकी संभाल रखता है। अपनी आत्माके उपर दया है। १४१.

❁ जैसे पानीका नल खुला हो और पानी व्यर्थ चला जावे तो यह बरदास्त (सहन) नहीं होता है। और घीके घडेमेंसे घी व्यर्थ चला जाता हो तो यह बरदास्त नहीं होता है। ऐसे अपना उपयोग बाहर ही बाहर चल रहा है, यह बरदास्त कैसे हो सकता है ? आत्मार्थीसे यह बरदास्त नहीं होता है। “उपयोग ही जीवन है” इसलिये उपयोगकी बरबादी वह ही जीवनकी बरबादी है। १४२.

❁ अपनी आत्माके उपर अपनेको दया नहीं है। अपनी आत्माका महान घात कर रहा है। निर्दयतासे घात कर रहा है और अपनी हिंसा हो रही है। यह सूझता-दिखता ही नहीं है। हिंसा हो रही है ऐसा सूझे तो हिंसा करे ही नहीं।

जैसे चीटियाँ चली जाती हों, यह नहीं सूझे तो उनके उपरसे चले जाते हैं और अपना पुत्र आदि सोता हो तो उसके उपर पैर रखकर नहीं चलते। ऐसे अपनी आत्माकी निर्दयतासे खुद ही हिंसा कर रहा है। यह हिंसा उसको हिंसा लगती ही नहीं है। पहले तो हिंसा लगे

तो अपने उपर दया आ जाय और तब हिंसा छूट जाय, परंतु जीवको अपनी हिंसा लगती ही नहीं और अपनी दया आती ही नहीं है। १४३.

❁ एक तरफ अपनी आत्मा है दूसरी तरफ शरीर आदि सारा विश्व है; सारा विश्व कैसे भी परिणमो परंतु इससे मुझे क्या? परंतु शरीरमें गडबड हो जाय तो टें टें करने लग जाता है तो यह आत्मार्थी नहीं है। प्रतिकूलता सामने आनेसे आत्मार्थी हो तो पराक्रम उठता है, घबराता नहीं है। १४४.

❁ गर्भमेंसे आया तब आंख, कान, नाक, मुंह सब-सारा शरीर तैयार हो करके बाहर आया है। अब उसकी वृद्धि भी क्या स्वयं नहीं होगी? जो स्वयं ही बना है, तेरा बनाया नहीं है, तो उसकी वृद्धि भी स्वयं ही होगी। १४५.

❁ शक्कर मीठी लगती है इसलिये मीठी मानते हैं। क्या शास्त्र कहते हैं कि शक्कर मीठी है इसलिये शक्करको मीठी मानना? ऐसे आत्माको जैसा है वैसा अपने अनुभवसे मानना, शास्त्र कहते हैं इसलिये नहीं मानना है। १४६.

❁ प्रश्न:—वस्तु दिखती नहीं है तो रुचि कैसे करें?

उत्तर:—क्यों नहीं दिखती है? वस्तु तो विद्यमान ही है। धन, पुत्रादि सामने नहीं होते हुवे भी ज्ञानमें दिखते हैं कि नहीं? वस्तु प्रत्यक्ष नहीं है परंतु अपना ज्ञान प्रत्यक्ष है, परंतु (ज्ञान) नेत्र खोले बिना दिखता नहीं है, ऐसे समझे तो अपनी वस्तु दिखनेमें आवे। १४७.

❁ संसारमें तो उसको अपनी चीज चुराई जानेका, नष्ट हो जानेका, टूट फूट जानेका आदि अनेक प्रकारके भय रहते हैं। परंतु अपनी आत्माके लिये निर्भय हो गया है अर्थात् पर्यायमें आत्माका भावमरण आदि होता है उससे भय नहीं लगता। जैसे संसारमें सावधानी रखते हैं ऐसे आत्मिक विषयमें भी सावधानी रखनी चाहिये। १४८.

❁ परद्रव्योंको अपनानेकी आदत पडी है वह बडी बुरी है। परद्रव्योंको अपनाना वह तो डाकुओंका काम है, मेरा नहीं, ऐसा निर्णय करे तो फौरन अपनापन छूट ही जावे। परद्रव्योंका स्वामी बनने गया तो उनका स्वामी तो हो सकता ही नहीं और अपना स्वामीपना भी चला गया। १४९.

❁ जहाँ जावो वहाँ एक समझनेका ही काम है। तार-डाक वांचो, अखबार वांचो, जहाँ तहाँ एक समझनेकी ही बात है। ऐसे यहां भी एक वस्तुस्वरूप समझना यही पुरुषार्थ है और इससे ही शांति मिलेगी। पुत्र मानता न हो तो अपना है ही नहीं, ऐसी समझ करो तो शांति

हो जायेगी। शरीरमें गडबड होवे तो अपना है ही नहीं ऐसा मानो तो शांति मिलती है। बस! ऐसे जैसा स्वरूप है वैसा समझनेसे ही शांति मिलती है। १५०.

❁ आत्मार्थी सारे विश्वका अध्ययन करता है, छहों द्रव्योंका अध्ययन करता है। १५१.

❁ अपने अंतरमेंसे निकली हुई परिणतिको (समझको) अपने काममें लेना यही उपयोग है और यही पुरुषार्थ है। १५२.

❁ प्रश्न :—अंशसे अंशी कैसे पकडमें आवे ?

उत्तर :—समुद्रका थोडा जल पीनेसे सारा समुद्र खारा है यह पकडमें आता है। ऐसे उपयोग रूप वर्तमान सामर्थ्य द्वारा पूरा आत्मा पकडमें आता है। १५३.

❁ एक समयकी समझसे अनंती कर्मवर्गणाका नाश हो जाता है। यह उपयोगकी सामर्थ्य है। एक समयके उपयोगकी कितनी सामर्थ्य! १५४.

❁ शरीर मेरा नहीं, राग मेरा नहीं, बस! परके मालिक मत बनो। यही एक बात समझमें आ जावे तो सब शास्त्र समझ लिया। १५५.

❁ बाहरमें नोटोंसे सबकी सब चीज मिलती हैं ऐसे यहाँ ज्ञानसे सब मिलता है। १५६.

❁ जिसकी पद्धति दूसरेका दोष देखनेकी है, वह आत्मार्थी नहीं हो सकता है और अपने दोष देखनेकी पद्धति नहीं जानते वह भी आत्मार्थी नहीं हो सकते हैं। १५७.

❁ अपने आत्माकी अपने उपर करुणा होगी तब ही अपना भवपार होगा। आत्मा तो करुणासागर है न? सबका आत्मा करुणा सागर है, इसलिये यह तो करुणा करेगा ही! अपनी आत्माकी करुणा नहीं आती है। अपने उपर करुणा आवे तो अपना काम जरूर हो जावे। आत्माकी हिंसा चल रही है, हिंसा ख्यालमें आवे तब करुणा होगी। १५८.

❁ अपनी समझ गलत काम कर रही है, पहले तो यह समझना पडेगा। अपने आप अपनी समझको फिटकार मारता है, अरे यह क्या? ऐसे नहीं चल सकता है, यह गलत पद्धति है, सही पद्धति तो ऐसी है। ऐसे ऐसे समझका काम चलता है। नई समझ पहली समझको तोडती जाती है (पूर्व गलत समझको)। बस! यही पुरुषार्थ चलता रहता है। १५९.

❁ अपनी रुचिका मुकाबला करो कि मेरी रुचि संसारके विषयमें अधिक काम करती है या आत्माके विषयमें? १६०.

❁ अंतःकरण तो परको दे रखा है, तो अपना काम कैसे होवे? जहाँ अंतःकरण दे रखा है वहाँ ही वहाँ रुचि काम करेगी और दूसरे दूसरे विषय तो उपरसे चलेंगे। १६१.

❁ यह अध्ययन निरंतर चलते रहना, यह तो बड़ा महान शास्त्र है। किसी भी प्रसंगका तत्त्वदृष्टिसे अवलोकन करना यह तो शास्त्र-अध्ययन ही है। १६२.

❁ जैसे पूंजी हो और दुरुपयोग करने लग जाय तो पूंजी खतम हो जावे और व्यापार करने लगे तो बढ जावे। ऐसे अपने पास ज्ञान मौजूद है उसका उपयोग करनेसे ज्ञान सामर्थ्य बढ जाती है और दुरुपयोग करनेसे ज्ञान सामर्थ्य खतम हो जाती है। १६३.

❁ चैतन्य अनुविधायी उपयोग है यह नहीं समझता तो जड अनुविधायी हो जाता है। १६४.

❁ अनुकूलतासे बचना पडता है और अनुकूलता छूट जाती है तो ठीक हुवा, पिंड छूटा ऐसा लगता है। १६५.

❁ पुत्र हजार रुपिया खर्च देवे यह चिंता नहीं, परंतु व्यापारको ही समाप्त करने लगे तो बरबादी हो जाती है। ऐसे राग होवे यह मूलसे घात नहीं, परंतु रागका स्वामित्व रहना यह मूलसे घात है। १६६.

❁ आत्मा कैसे कैसे टगा जा रहा है? यह समझना चाहिये। १६७.

❁ जिसको अपनी आत्माकी करुणा जागे वह तो महाभाग्यशाली जीव है। १६८.

❁ अपनी दशाका ख्याल करे तो अपनी दशा अपनेसे छिपी नहीं रहती है। १६९.

❁ बाहरमें उपयोग ज्यादा नहीं टिक सकता है और अंदरमें उपयोग त्रिकाल टिकता है। बाहरमें उपयोग जाता है तो आखिरमें थक जाता है, मन भर जाता है और उपयोगको अंदरमेंसे बहार निकलने पर तो पश्चात्ताप होता है, यह खास बात है। बाहरमें उपयोगको कटांला (मनहटना) आयेगा ही और अपनेमें से निकलनेका तो पश्चात्ताप होता है। १७०.

❁ भोजन तो खाया और भूख न मिटी तो यह तो स्वप्नका भोजन हुवा या कागजका लड्डु खाया। ऐसे यहां भी समझे तो शांति मिले ही; शांति न मिले तो वह समझ ही नहीं है। १७१.

❁ बाहरमें तो अपने भरोसे ही सब काम करते हैं। ट्रेनमें जावे तो फर्स्ट क्लासकी टिकिट खुद ही ले लेते हैं। दूसरेकी टिकिट मिल जावेगी इस भरोसे मुसाफिरी नहीं करते।

ऐसे यहाँ भी अपनी आत्माका भरोसा करना चाहिये। दूसरेके भरोसे नहीं रहना चाहिये। अपना कार्य खुदसे ही होगा। १७२.

❁ सौ रुपयेकी तनखाह वालेको पाँच हजारकी तनखाह मिल जावे तो सौ रुपयेकी नौकरी तुरन्त छोड देता है। ऐसे आत्मशांति अंतरसे बढती जाती है जैसे जैसे बाहरकी सामग्रीका त्याग सहज हो जाता है। इसको सच्चा त्याग कहते हैं। त्याग करना नहीं पडता है, सहज हो जाता है। १७३.

❁ आत्माके यहाँ पोल (कपट-छल) नहीं चल सकती। रुचि तो परकी रखे और अपना काम हो जावे ऐसा नहीं हो सकता है। १७४.

❁ अपनी समझको फटकारना चाहिये कि अरे! यह काहेकी समझ? जो अपना कार्य न होवे। अपने पास अपनी वस्तु मौजूद ही है, फिर भी यह नपुंसकता क्यों? नपुंसकताको तोड देना चाहिये। संसारके कार्योंमें चाहे भले नपुंसकता ही हो, यह तो ठीक है, परंतु इसमें कायरता—नपुंसकता नहीं रखनी चाहिये। साधारण पुरुषार्थसे तो काम नहीं चलता है, महान पुरुषार्थ चाहिये। छ मास एकधारा प्रयत्न करो तो जरूर अपना काम हो जावे। १७५.

❁ अभी तो रुचि है, इसलिये अपना काम कर लेनेका काल है। यदि यह अवसर चला गया तो फिर कन्ट्राक्ट (टेका) तो नहीं है। रुचि भी सदा ऐसी नहीं रहती है, इसलिये वर्तमानमें ही काम कर लेना चाहिये। १७६.

❁ प्रश्न:—क्या पहले परद्रव्योंमेंसे अपने उपयोगको हटाना है?

उत्तर:—पहले तत्त्व-निर्णय करना है, उपयोग तो जब निर्विकल्पता होती है तब परद्रव्योंमेंसे सहज हटता है। पहले निर्णय ठीक करना है। १७७.

❁ अपने उपयोग उपरसे अपनी रुचिका पता लग जाता है। जहां रुचि होती है वहाँ उपयोग बार बार जाता है। इस परसे अपनी रुचिका ख्याल आ सकता है। १७८.

❁ लडका गुम हो गया हो और कोई उसका फोटु दिखा देवे तो संतुष्ट नहीं होता, परंतु लडकेको प्रत्यक्ष करना चाहता है। ऐसे विकल्पसे निर्णय होनेसे आत्मार्थी संतुष्ट नहीं हो जाता है, परन्तु आत्माको प्रत्यक्ष करनेका प्रयत्न करता है। १७९.

❁ जैसे अपनेको अपने शरीरके नामका कितना विश्वास और दृढता है कि मैं फलाणा

ही हूँ और दूसरा नहीं हूँ। ऐसे आत्माका पक्का निश्चय हो जाना चाहिये तब ही आगे काम चल सकता है। १८०.

❁ भाई साब! समझसे तो बहुत कार्य होते हैं। समझ अर्थात् मात्र समझना ऐसा नहीं है। समझमें तो सारेका सारा कार्य होता है। १८१.

❁ उल्टे वासणमें शीरा नहीं होता है और फूटे वासणमें भी शीरा नहीं होता है। ऐसे विपरीतता होवे उसमें अपना कार्य नहीं होता है। १८२.

❁ कार्य नहीं होवे फिर भी भावना तो चालू ही रखनी चाहिये। भावना ही छूट जायेगी तो काम होगा ही नहीं और भावना चलती ही रही तो कार्य तो होगा ही। १८३.

❁ समझसे ही अभिप्राय बदलता है, दूसरा कोई उपाय ही नहीं। पूर्वका जो अभिप्राय था, वह अब नहीं है। समझसे ही वह अभिप्राय पलटा है। समझके अर्थात् समझके उपयोगके सिवाय दूसरा कोई साधन ही नहीं है। समझ तो सबके पास मौजूद है, परंतु समझका उपयोग अपने लिये करनेसे ही अपना काम होता है। १८४.

❁ कभी भी वीर्यहीनताकी बात नहीं लेना। हमारा कार्य नहीं होगा यह बात ही नहीं लेना। सीमंधर भगवानके पास जाकर हम उसी भवमें मोक्ष चले जायेंगे ऐसा ही भाव रखना। वर्तमानमें ही काम करना है तो, यह तो अच्छी बात है परंतु वर्तमानमें काम न किया तो भगवानके पास जाकरके मेरा काम तो मैं जरूर करूँगा। मैं आज काम नहीं किया तो कल करूँगा, परसों करूँगा, परंतु छोड़ूँगा नहीं। हीणी बात तो लेना ही नहीं; सिंहवृत्ति रखना। १८५.

❁ मालिक हाजिर है तो चोर चोरी कैसे करेगा? ऐसे ज्ञान सावधान है तो गलती नहीं होती है। १८६.

❁ समझ बदल जाना यह तो राजा बदल गया। सिंहासन पर राजा आया। आत्मामें समझ ही सर्वस्व है। समझ बदल जानेसे सबके सब गुणका परिणामन बदल जाता है। आत्माको समझके सिवाय कुछ नहीं करना है। १८७.

❁ अपना मालिक हो जावो तो परका मालिकपना छूट जायेगा। बस दूसरा ज्यादा ज्ञान न होवे तो कोई बात नहि। १८८.

❁ निरंतर मरणको समीप ही समीप देखो। एक क्षणके बाद ही मरण होने वाला है ऐसा लगना चाहिये। १८९.

❁ मूसलधार बरसात पडने लग जाय, उस समय पाल नहीं बांध सकते। ऐसे शरीरादि प्रतिकूल हो जायेंगे उसी समय काम नहीं कर सकोगे; इसलिये अब ही अपना काम करो! १९०.

❁ शरीरमें नब्ज (नाडी) की धडकन, आहारमेंसे भिन्न भिन्न धातु मल आदि तो स्वयं हो रहा है, वह तो ख्यालमें आता है। परंतु वचन और हाथ पैरके हलन चलनका कर्ता बन बैठता है। १९१.

❁ दो हथेली जुडनेसे आवाज निकलती है। देखो इसमें किसको कर्ता कहोगे? यह दृष्टांत बहुत बढ़िया है। दोनों हाथ साथ साथ काम कर रहे हैं इसमें कर्ता किसको कहोगे? बस इससे सिद्ध होता है कि अपने आप परिणमता है तब दूसरेको निमित्त कहते हैं। १९२.

❁ विश्व-मर्यादा तो वज्रसे भी बढकर है। उसको कोई भी नहीं तोड सकता है। जैसे जो राजाके कानूनको नहीं तोडते, उनको हथकडी नहीं लगती ऐसे विश्वकी मर्यादाको जो नहीं तोडते, समझते हैं तो उनको बंधन नहीं हो सकता है। १९३.

❁ वस्तुस्वभाव समझना ही पडता है। यदि कमरेमें प्रवेश करना है तो दरवाजेसे ही प्रवेश कर सकते हैं, दरवाजेको छोडकर प्रवेश नहीं कर सकते। ऐसे वस्तुस्वरूप समझनेसे ही अंदरमें प्रवेश हो सकता है। १९४.

❁ गुण तो दूसरेसे हुवा ऐसे कहते हैं और दोष तो अपने उपर लेते हैं। जैसे गुण दूसरेके उपर डालते हैं, ऐसे दोष भी दूसरेके उपर डालना वह तो सज्जनता ही नहीं। १९५.

❁ निरंतर घातक पद्धति ही चल रही है। घातकपणा होता है परंतु ख्यालमें आ जाना चाहिये। तब फिर घातकपना नहीं रह सकता है। १९६.

❁ अपना दुश्मन तो अपने अंदर ही है। राग-द्वेष चलता है वह दुश्मन लगना चाहिये, बरदास्त नहीं होना चाहिये। कांटेकी माफिक खटकना-चुभना चाहिये। क्योंकि वह शल्य-शूल है न! १९७.

❁ बालक घरकी सब सामग्री तोडफोड देवे तो कैसे धमकाता है कि अरे! तुमने यह क्या किया? बस! ऐसे खुदको ही गम्भीर उलाहना देना कि अरे! तुमने यह सब समझ कर क्या किया? चर्चा कर करके किया क्या? सब बात लेकरके पूछना कि अरे! तुमने किया क्या? और तत्काल जवाब मांगो तो फौरन काम हो जाय। देरी लगे, यह कोई ऐसा काम नहीं है, घरका काम है न इसलिये। १९८.

❀ यह (तत्त्व समझना) तो रोकडिया धंधा है। बस! कल उपर बात नहीं है, वर्तमान ही देखते हैं। १९९.

❀ अपने अन्तःकरणको टटोलनेकी बात है। सच्चे हृदयसे अपना अन्तःकरण देखे तो जरूर अपना काम हो जावे। कैसे न होवे? २००.

❀ भूमि ही कंकरीली हो तो बीज बोनेसे भी कैसे उगेगा? ऐसे घरमें भी झगडा-टंटा चलता हो, (अंतरमें) मान-सन्मानकी बुद्धि हो, तो वह तो पात्रता ही नहीं। उसमें अध्यात्मका बीज बोनेसे उगता नहीं है। २०१.

❀ यह मनुष्यभव अंतिम ही क्यों न समझना? दो हजार सागर त्रसकी उत्कृष्ट स्थितिमें ४८ मनुष्यभव होते हैं। उनमें १६ पुरुषभव, १६ स्त्रीभव, और १६ नपुंसकभव होते हैं। इनमें भी हलके चांडाल आदि सभीका भव आ जाता है। यह मनुष्यपर्याय बहुत दुर्लभ है। यह जो समय मिला है वह बहुत कीमती है और अपना स्वरूप समझे तब ही उसका मूल्य है-सार्थकता है। २०२.

❀ आत्मा तो अनंतपति है उसको कोई करोडपति कहे तो उसको गाली लगनी चाहिये। २०३.

❀ अपने छोटे बालकको कोई मसलके मार देवे तो कैसा लगे? ऐसे खुद ही अपनी आत्माको मार पीट कर रहा है। २०४.

❀ शरीरको मल लगा हो तो कहे कि पहले मल धोना है, पीछे हम भोजन करेंगे। हम बिना मल धोये भोजन नहीं कर सकते। ऐसे यह मिथ्यात्व-मल है वह टले बिना चैन नहीं पडती। २०५.

❀ अपनी सम्पत्तिको संभालना। बस! यह बात है। २०६.

❀ असाधारण ठपका (डांट) आत्माको देना पडेगा। साधारण ठपकेको नहीं गिनेगा। असाधारण काम करना है तो असाधारण ठपका जरूरी है। जैसे पापड तोडने हों तो साधारण हाथ लगाते भी टूट जावें परंतु लोहेका एरण वैसे नहीं टूटता उसके लिये तो बडा हथोडा चाहिये। २०७.

❀ लडका गुम हो गया हो तो उसका पता लगे बिना चैन नहीं पडती। ऐसे यहाँ भी आत्माको प्राप्त किये बिना चैन नहीं पडनी चाहिये। २०८.

❁ जैसे कांटोंका समूह पडा हो तो वहाँ बैठते नहीं। ऐसे मिथ्यात्व है वह कांटा है तो उस दशामें नहीं रह सकते। २०९.

❁ दूसरेका महल होवे और अपनी झोंपडी होवे, फिर भी अपनी झोंपडीमें जाते हैं, तो यहाँ तो अपनी कितनी महान वस्तु है, साधारण वस्तु थोडी ही है? फिर भी अपनी महान वस्तुको ठोकर लगाते हैं। अपने घरमें तो आते नहीं और दूसरे अपने घरमें आने देते नहीं तो अशरण दशा हो रही है। २१०.

❁ हम किसकी बात देखते हैं? यह अपनेको पूछना चाहिये। हमारे पास समझ भी है और पूर्ण वस्तु भी मौजूद है फिर हम किसकी बात देखते हैं? विलंब हो रहा है यही कुछ गडबडी बताता है। २११.

❁ कोई हमें गाली देवे तो हम दुःखी क्यों बने? अपने पास समझ मौजूद है तो ऐसा समझते हैं कि यह मुझे कहाँ गाली देता है? वह तो खुदको ही गाली दे रहा है, ऐसे समाधान करना। २१२.

❁ कोई अपने हाथसे अपने हाथ पर छुरी नहीं चलाता, परंतु यहाँ तो निरंतर अपने आप ही अपना घात कर रहा है। २१३.

❁ परद्रव्योंके विश्वासमें रहना, उनके भरोसे रहना यह तो भयंकर दशा है। एक दिन भी बिताना बडा मुश्किल लगना चाहिये। २१४.

❁ नकली उल्लास होता है वह भी छिपा नहीं रहता। यथार्थ रुचिवालेको तो गंभीरता आ जाती है। २१५.

❁ दुर्जनताको सज्जनताके व्यवहारसे जीतो, दुर्जनताका बदला दुर्जनतासे नहीं होता। दुर्जनताका बदला सज्जनतासे ही होता है। सज्जनतासे दुर्जनको भी शरमाना पडेगा, रोना पडेगा, हार होगी। इसलिये आप सर्व परस्परमें सज्जनताका व्यवहार करो। २१६.

❁ अपनी आत्माका गौरव आना चाहिये। २१७.

❁ जैसे सूर्य, चंद्र अपने आप उदय होते हैं और अस्त होते हैं। ऐसे सब द्रव्य अपने आप परिणमते हैं, किसीको किसीकी जरूरत नहीं। २१८.

❁ संसारमें तार आदिमें रसीद मिल जाती है तो वह पक्का काम हो जाता है। ऐसे

यहाँ सिद्धपदकी रसीद मिल जानी चाहिये, तब ही पक्का काम हुवा है। सिद्धपदकी रसीद (सम्यग्दर्शन) मिले उसका अपनेको पता लग जाता है। २१९.

❁ एक अपने आत्महितकी ही रुचि होनी चाहिये। एक अपनी आत्माका ही ध्येय होना चाहिये। बात करनी भी तो उसकी ही करनी। निरंतर आत्मा....आत्मा....आत्माकी ही रटण चलती है। २२०.

❁ आत्माकी भूख लगना, प्यास लगना; उस भूख-प्यासकी तो जाति ही दूसरी है। वास्तवमें आत्माकी भूख-प्यास लगे तो आत्मा प्राप्त किये बिना छोडे ही नहीं। २२१.

❁ देखो न! सोम, मंगल, बुध आदि वार चले ही जाते हैं। आयुष्यका काल नजदीक आता जाता है और अपना हित करनेका काल कम होता जा रहा है। २२२.

❁ परका पीछा नहीं पकडते हो इसलिये जाना जाता है कि तुम दुःखी नहीं हो और परके पीछे पडे हो इससे जाना जाता है कि तुम दुःखी हो। १०० रुपयेकी तनखाहवालेको ५००० रुपयेकी कमाईका धंधा मिल जावे तो नौकरी छोड देवे। ऐसे जिसे आत्मिक सुख प्राप्त होता है, वह इन्द्रिय-विषयोंका पीछा छोड देता है। २२३.

❁ आत्मार्थीको बस! मैं समझुं, समझुं यही भावना निरंतर चलती है। है तो वह भी विकल्प परंतु उसमें कषाय बहुत मंद हो जाती है और ज्ञानका सामर्थ्य बढ जाता है। तो ज्ञानका सामर्थ्य बढते बढते अपना काम हो जाता है। समझका सामर्थ्य इतना है, इतना है कि वह समझमें आ जाय तो ऐसा लगेगा कि हमारे पास चिंतामणि है। २२४.

❁ करोडपति हुवा तो क्या हुवा? और अबजपति हो गया तो भी क्या है? २२५.

❁ सच्चे गुरुका यही लक्षण है कि शिष्यको कहते हैं कि तुम समझो और मिथ्यादृष्टि गुरु शिष्यको कहते हैं कि तुम मानो-आस्था रखो! यह खास लक्षण है। २२६.

❁ भोजन मुखसे ग्रहण होता है पेटसे नहीं, पुष्टि सब अंगोंको मिलती है। ऐसे ज्ञान ही स्वरूप समझता है तो सब गुणोंका परिणमन भी सुधर जायेगा। २२७.

❁ भाई साब! मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि वस्तुकी पुकारको आप सुनो। वस्तु अनंतकालसे पुकार करती है—क्रन्दन करती है, परंतु अब तक उसकी पुकार सुनी नहीं, वस्तुकी पुकार सुनो। सभी वस्तुएं विश्व-मर्यादाकी पुकार करती हैं। आत्मा भी मर्यादाकी पुकार करता है परन्तु उसका क्रन्दन भी साथ है, तो उस क्रन्दनको आप सुनो, मेरा तो

आपसे यही निवेदन है कि अपनी आत्माकी पुकारको सुनो। २२८.

❁ जैसे जैसे समझ आती है वैसे वैसे सज्जनता बढती जाती है। वस्तु जैसी है वैसी मानना वही सज्जनता है। वस्तुको पराधीन मानना, परवस्तुको अपनी मानना, यह सज्जनता ही नहीं है। २२९.

❁ लाख रुपयेकी कमाई होने पर भी, एक रुपिया पुत्र जला देवे उसका दुःख वेदते हैं उसको समाप्त नहीं कर देते हैं। अज्ञानी दुःखको ही हंमेशा आगे करता है। ज्ञानी आनंदको आगे करता है, बाहरमें दुःख होवे फिर भी उसको आगे नहीं करता है। २३०.

❁ परमें उपयोगको खर्च करनेसे अपनी पूंजी घटती है और स्वमें उपयोग खर्च करनेसे अपनी पूंजी बढती जाती है, ऐसा नियम है। २३१.

❁ सत्संगमें कोई तो एक बात करे, दूसरा दूसरी, तीसरा तीसरी बात करे तो ऐसे ऐसे ज्ञानका (कार्यकारी) क्षयोपशम बढता जाता है; उसको ही सत्संग कहते हैं। २३२.

❁ पहले जो रोग है वह निश्चित करना, उसका निदान करना। पीछे उसको (आत्मभ्रांतिरूप रोगको) टालनेका उपाय निश्चित हो सकता है। २३३.

❁ थोडे कालकी आदत भी तोडनी कठिन पडती है तो अनादिकालसे परद्रव्योंमें अपनेपनकी आदत है, वह तोडनी बडी भारी मुश्किल है। ज्ञानके सामर्थ्यसे ही गलती टूट सकती है। परंतु बड़ा भारी पुरुषार्थ चाहिये, यह तो वीरताका मार्ग है। २३४.

❁ अग्निकी पुकार सुनते हैं, इसीसे तो इससे दूर भागते हैं। बच्चा रोता हो तो उसकी पुकार सुनते हैं। परंतु अपने अंतरमें आत्मघातसे जो क्रंदन चल रहा है—आत्मा पुकार कर रहा है, उसको नहीं सुनते हैं। २३५.

❁ बच्चा घरमें आ गया है और खिडकी आदि सब बंद हैं। अब तो घरमें ही ढूंढना रहता है। ऐसे जिसको अपनी आत्माके अस्तित्वका निश्चय हो गया है कि मैं आत्मा हूँ शरीरादि नहीं हूँ। ऐसा पक्का निश्चय हो गया है, फिर तो रात-दिन आगेका समझनेका प्रयत्न चलता रहता है। २३६.

❁ एक समझ ही त्रिकाल टिकनेवाली है और सब—शरीर, वचन, आदि सबके सब तो क्षणिक हैं, क्षणमें चले जाते हैं। एक समझ ही त्रिकाल टिकती है। तो इस त्रिकाली समझका ही माहात्म्य है। यह ख्यालमें आ जावे तो अपना काम हो जावे। २३७.

❁ समझ तो सेनापति है। सेनापति हार जानेसे सारी सेना भाग जाती है। ऐसे समझ ठीक नहीं तो सब गुण ठीक नहीं होते हैं और समझ ठीक हुई तो सब गुण ठीक हो जाते हैं। “आप भला तो जग भला” ऐसी कहावत है। ऐसे एक समझ ठीक हो गई तो आत्माके सबके सब गुण ठीक हो जाते हैं। २३८.

❁ उपयोग आत्मामें कैसे होवे उसकी तो चिंता करते हैं; परंतु स्वपरका भेदविज्ञान प्रथम होना चाहिये, यह प्रयास नहीं करते। भेदविज्ञानके पीछे अनुभव तो अपने आप होता ही है। उपयोगको अंदरमें लानेकी चिंता नहीं होती है, परंतु पहले स्व-परका भेदविज्ञान करना यह खास बात है। २३९.

❁ अपना काम करनेवालेकी सिंहवृत्ति होती है। वह मूल कारणको पकडता है। उसकी कुत्ते जैसी दृष्टि नहीं होती है। २४०.

❁ बाह्यमें कुछ भी हो जावे, शरीर छूटनेका समय आ जावे, तो भी ज्ञानमें शरण लेनेसे कोई दुःख नहीं होता है। २४१.

❁ समझका इतना सामर्थ्य है, इतना सामर्थ्य है कि यह सामर्थ्य ख्यालमें आते, कितनी भी समझ होगी फिर भी कम ही लगेगी और आगेका प्रयत्न चलता रहेगा। केवलज्ञान तक समझ पूरी नहीं होती है। समझ पूरी होवे तब तो केवलज्ञान हो जाता है। २४२.

❁ प्रश्न :—ज्ञानमें निर्णय होना और रागमें निर्णय होना उसका क्या लक्षण है ?

उत्तर :—ज्ञानमें निर्णय होने पर तो यह निर्णय अकाट्य हो जाता है और कर्तृत्व खतम हो जाता है। ज्ञानमें एक भी विषयका निर्णय आ जाय तो कर्तृत्व खतम होकर शांतिका वेदन आता है और रागाश्रित निर्णय होता है वह तो फिर जाता है और उसमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी है, इसलिये शांति भी नहीं आती है। २४३.

❁ हमारी एक नासमझीका ही हमको दुःख है ऐसा निर्णय होते ही बाहरमें देखनेको तो रहता ही नहीं है। २४४.

❁ निद्रा मृत्यु है और यह स्वरूप समझना जीवन है। २४५.

❁ अपने अंतःकरणमें ऐसा है कि “शरीर मैं हूँ” तो सारी दुनिया आ जाय, फिर भी फिरनेवाला नहीं और अपने अंतःकरणमें यह आ जाय कि “शरीर मेरा नहीं” तो यह बात भी फेरनेके लिये कोई समर्थ नहीं है। अपने अंतःकरणमें—श्रद्धा-ज्ञानमें जो बात बैठ

जाती है उसको सारी दुनिया भी फेरनेके लिये समर्थ नहीं है। २४६.

❁ जो गुरुवाक्य समझमें आ गया वह अपनी आत्माको समझा देवे तब अपना आत्मा ही गुरु है और तब बाहरमें गुरुने समझाया ऐसा कहनेमें आता है। २४७.

❁ आत्मार्थी जब तक अपना आत्मा लक्षमें नहीं आया है तब तक अपने निर्णयको यथार्थ नहीं मान लेते हैं, परंतु यथार्थ निर्णय करनेका प्रयत्न करते हैं। सारी दुनिया उनको कहे कि तुम्हारा निर्णय ठीक है, फिर भी वह अपने निर्णयको ठीक नहीं समझते हैं। जब यथार्थ निर्णय होता है तो मिनटोंमें आत्मा लक्षमें आ जाता है तथा कार्य-सिद्धि हो जाती है। २४८.

❁ कषाय मंद भी वैसे ही नहीं होती है। इस तत्त्वको समझनेमें लगनेसे कषाय मंद सहज होती है। प्रायोगलब्धिमें जीव सुनी हुई बातका विचार कर अपना प्रयोग करनेमें लगा है, इसलिये कषाय मंद सहज हो जाती है। २४९.

❁ बात तो इतनी ही है कि समझ उलटी है तो उसे सुलटी करना है। २५०.

❁ आत्माको कोई छू सकता ही नहीं, काट सकता नहीं, ले जा सकता नहीं। यह ही अपनी वस्तु हो सकती है। धन आदि तो दूसरा ले जाता है, शरीरको भी काट देते हैं, शरीर छूट जाता है, इसलिये यह अपनी चीज नहीं है। जो त्रिकाल हो, जिसको कोई छू सकता नहीं, ले जा सकता नहीं, जो कभी अलग नहीं पड़े ऐसी अपनी वस्तु है, यही आत्मा है। २५१.

❁ वर्तमानमें करोडपति होवे, मोटर, नौकर, चाकर सब होवे, इसलिये अपनेको दुःखी न माने। परंतु भाई! यह सब छूट जावेगा तब तो तुझे दुःखी बनना पडेगा या नहीं? इसलिये इनका शरण छोड! २५२.

❁ दुःखका कारण विश्वका कोई पदार्थ नहीं है। अखंड आत्मा भी दुःखका कारण नहीं है। अपनी गलत समझ ही दुःखका कारण है, यह बात ही सिद्ध होती है, सीधी बात है। २५३.

❁ खाना, पीना आदि विकल्पकी बजाय निरर्थक वार्तालाप आदिमें आत्माका घात अधिक होता है। इसलिये यह निरर्थक प्रवृत्ति ही आत्माको अधिक अहितकर है। २५४.

❁ त्रिकाली द्रव्यको लक्षमें लेवे तो उसमें रत्नाकर ही भरा है। ज्ञानके सामने यह आ जाना चाहिये। द्रव्यका स्वरूप, पर्यायका स्वरूप सब ज्ञानके सामने आ जाय। फिर किसको अपनाना और किसको मात्र जानना, यह सब विवेक ज्ञानमें आ जाता है। २५५.

❁ अपनी समझके सामने अज्ञानका स्वरूप भी रख दो, अज्ञानका स्वरूप समझमें आ जानेसे अज्ञान छूट जायेगा। २५६.

❁ एक करोडपति शेठने दूधवालीसे कहा कि ज्यादा दूध लावो। दूधवाली बोली कि समय थोडा है (सायंकालमें) और गांव हमारा दूर है। यह बात सुनते ही वह सेट सावधान हो गया कि हमारे पास समय थोडा है—वृद्धावस्था हो गई है और आत्महितका काम बडा है। ऐसे सब प्रसंगमेंसे सावधानी आनी चाहिये! (हितशिक्षा लेनी चाहिये) २५७.

❁ मेरी समझमें नहीं आता, मेरी समझमें नहीं आता ऐसा करोगे तो समझ नहीं होगी। परंतु मैं सब समझ सकूंगा ऐसा रहेगा तो सब समझमें आयेगा। २५८.

❁ जीव बाहरकी तो सब प्रकारकी अनुकूलता चाहते हैं, परंतु अपनी आत्माकी अनुकूलता नहीं चाहते हैं। २५९.

❁ भोजन करनेके बाद बाह्य सामग्रीको समेटते हैं ऐसा सहज होता ही है। ऐसे आत्मार्थी जीव बाहरकी प्रवृत्तिको समेट लेते हैं। सहज ही समेट लेनेकी प्रवृत्ति होती ही है। सारे विश्वमें अपनापन प्रसारित किया है तो फटाफट समेटने लगता है, ऐसा हुवे बिना रहेगा ही नहीं। २६०.

❁ समझकी करामातसे—प्रतापसे सारा दिग्दर्शन हो जाता है। २६१.

❁ वस्तुस्वरूप समझनेसे शांति होती है। थोडा सा स्वरूप समझनेसे शांति होती है तो वस्तुस्वरूप जैसा है वैसा यथार्थ समझमें आ जाय तो कितनी शांति हो जाय! यह अनुमान हो सकता है। इस शांतिकी तो जाति ही बदल जाती है। जलेबीका एक थोडा सा टुकडा मीठा लगता है, तो सारी जलेबीका कितना स्वाद आवे! २६२.

❁ भरत बाहुबली लडते थे, परंतु अंदरमें निंदनीय समझते थे, अभिनंदनीय नहीं समझते थे। अभिनंदनीय समझे तो अज्ञानी हो जाते हैं। उसका तो निषेध निषेध अंदरमें दोनोंके चलता था। २६३.

❁ परके दुःखको ज्ञान देखने जायेगा तो ज्ञान हिंसा कर ही नहीं सकता, तो अपना ज्ञान भी जीवित रहेगा। २६४.

❁ आत्मामें ज्ञान है यह तो प्रिन्सीपल है, सब गुणमें बडा है। उसकी आज्ञा अनुसार सारा काम चलता है। प्रिन्सीपल ही मूढ़ होवे तो उसको कौन गिने? और प्रिन्सीपल चतुर

हो तो उसकी नजर पडते काम हो जाता है। ऐसे ज्ञानके विषयमें भी समझ लेना। २६५.

❁ आत्मार्थी जीव ही अपना कुटुंब परिवार है, भले दूर भी रहते हों; परंतु अंतःकरण तो एक है न! और सब मुक्तिमें जानेवाले हैं न! २६६.

❁ आत्मार्थी देहमें रहकर अपना आत्महितका कार्य करते हैं और देह छूट जानेका प्रसंग आवे तो भी अपना काम कर लेते हैं। जैसे नाविक नावको चलाता है और नाव डूबनेका प्रसंग आवे तो कूदके पार हो जाता है। २६७.

❁ आत्मामें हठ नहीं चलती है, समझसे कार्य होता है। २६८.

❁ समझका संबंध ही उलटा है। परके साथ ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है तो स्व-स्वामित्व संबंध मान लिया है। बस! सबकी यही एक बिमारी है। समझका संबंध बदल देना। स्वके साथ स्वामित्व-संबंध और परके साथ ज्ञेय-ज्ञायक संबंध रखना। यही दरदका इलाज है। पहले तो दरदका निर्णय करना पडता है, फिर इलाज होता है। २६९.

❁ संसारका प्रत्येक कार्य विवेकपूर्वक होना चाहिये। २७०.

❁ कृतकृत्य हुवे बिना कर्तापना टूटा ही नहीं है। २७१.

❁ विश्व-मर्यादाका निर्णय तो (पहले) होता ही है, परंतु निर्णाताका निर्णय करना यह खास बात है। २७२.

❁ समझका कार्य ही श्रद्धा पलटना है, श्रद्धा बडी बलवान है। ११-११ अंगका ज्ञान होने पर भी नहीं पलटती है। जैसी समझ होनी चाहिये ऐसी समझ नहीं होनेसे श्रद्धा नहीं पलटती है। श्रद्धा समझसे ही पलटती है। श्रद्धाको पलटना ही ज्ञानका कार्य है और यही पुरुषार्थ है। श्रद्धा पलटते ही ज्ञानकी प्रमाणिकता है। कार्य हुवे बिना ज्ञान कहना ही कैसे? श्रद्धाको पलटे तब ही ज्ञान सम्यक् है। २७३.

❁ जीवन बदलना हो तो श्रद्धा बदलनी पडेगी और श्रद्धा ज्ञान-प्रधानतासे ही बदलेगी। २७४.

❁ हम तो बाह्य अनुकूलता मिलना यह पुण्यका उदय नहीं समझते हैं। तत्त्वको समझनेकी सामग्री मिलना, तीर्थकर मिलना, गुरु मिलना और सत्समागम मिलना बस! इसीको हम पुण्यका उदय समझते हैं। २७५.

❁ मैं विवेक ही कर सकता हूँ जो ऐसा मानता है तो उसके विवेकका विकास हो जाता है। २७६.

❁ सावधान करनेवालेका तो उपकार है क्योंकि अपनेको सावधान करता है न! लौकिकमें सर्पसे भी सावधान करते हैं तो उपकार माना जाता है। खान-पान देनेवालेका इतना उपकार नहीं माना जाता है। ऐसे यहाँ भी अंदरमें सावधान करनेवालेका महान उपकार माना जाता है। पूज्य महाराज साहब सबको सावधान कर रहे हैं इसलिये महान उपकार है। २७७.

❁ स्वरूपका लक्ष होते, संसारकी उपेक्षा हो जाती है। २७८.

❁ सावधान करनेवालेको धन्यवाद दिया जाता है, भोजन करानेवालेको धन्यवाद नहीं दिया जाता है। २७९.

❁ एक तो निष्प्रयोजन बातोंमें और दूसरा विपरीततामें जीवन ज्यादा बिगडता है। २८०.

❁ अपनी चैतन्यसंपत्तिका अनुभव होना यह सम्यग्दर्शन है। २८१.

❁ कोई अपनेको गाली देवे और हम दुःखी न होवे तो उसकी गाली निष्फल हो जाती है। ऐसे कर्मका कैसा भी उदय आ जाय फिर भी हम दुःखी न बने तो कर्मकी निर्जरा हो जाती है। २८२.

❁ अपने पास छोटे रुपये हैं तो बाहरमें वह नहीं चलेंगे। ऐसे अपनी समझ गलत है और हमने ठीक मान रखी है तो इससे अपना हित हो ही नहीं सकता है। २८३.

❁ विश्व-मर्यादाको तोडना (तोडनेका अभिप्राय) इससे विकराल काम कोई नहीं है और विश्व-मर्यादाको स्वीकारना इससे महान कार्य कोई नहीं है। २८४.

❁ जीव विश्व-मर्यादाका स्वीकार ही नहीं करता है। असलमें मात्र एक स्वपरका ज्ञान ही करना है। स्वका ज्ञान करते ही परका ज्ञान भी साथमें हो जाता है। स्व-परका यथार्थ ज्ञान हो गया वह तो कृत-कृत्य हो गया। कार्य चालू हो गया, फिर केवलज्ञानके लिये भी अधीरज नहीं होती है। जैसे गाडीमें बालक उतावला हो जाता है, बडे आदमी तो समझते हैं कि अपना गाँव आ रहा है, बालककी माफिक उतावले नहीं होते हैं। एकांतमें बैठकर, समझकर, कार्यपद्धति आ जानी चाहिये। समझमें आवे तो कार्य पद्धति आये बिना नहीं रहती है। २८५.

❁ कार्यार्थी जीव व्यर्थका वार्तालाप नहीं कर सकता है। २८६.

❁ रेलगाडीमें संभाल न रखे तो सामान कोई ले जाता है, इसलिये सामानकी संभाल रखनी पड़े और अपने घरमें क्या संभालना? अपने घरमें जानेमें तो प्रसन्नता ही होती है। ऐसे उपयोग बाहरमें है तो संभालना पड़ता है। उपयोग अपने घरमें-स्वरूपमें गया तो वहाँ तो आनंद ही आनंद होता है। २८७.

❁ किसीके पास करोड़ों रुपिया होने पर भी वह भूखा मरे यह आश्चर्यकी बात है। ऐसे अपने पास समझ (ज्ञान) मौजूद है तो अपनी आत्माको दुःखी क्यों बनने देवें? अपने पास समझ है इसलिये आत्माको दुःखी नहीं बनने देना। २८८.

❁ विवेकसे सब काम सिद्ध होते हैं। विवेकको चिंतामणी कहो, प्रभु कहो, जो कुछ भी कहो। २८९.

❁ ज्ञान आत्माको जीवित रखता है। चाहे वृद्ध हो, रोगी हो, कोई भी हो; परंतु ज्ञान आत्माको मरने नहीं देता, जीवित रखता है। २९०.

❁ स्वभावसे कृतकृत्य तो हूँ ऐसा निर्णय हुवे बिना तो यह करूँ और वह करूँ की कर्तृत्वबुद्धि रहती है। इसलिये पहले कृतकृत्यताका निर्णय करना है। कृतकृत्यताका निर्णय हुये बिना आगे काम नहीं चल सकता। विकल्पका कर्तापना ही रहता है। २९१.

❁ प्रवचन सुनते हैं तो आत्मार्थी भीतरमें विचारते हैं कि मैंने प्रवचन तो सुना परंतु मेरे अंदर हित क्या हुआ? यह निरंतर देखते हैं—विचारते हैं। ऐसे ऐसे रूढ़ीसे सुननेसे क्या हुआ? ऐसे प्रत्येक कार्यमें आत्मार्थी अपनेमें हित क्या हुआ यह देखते हैं। रूढ़ीसे कोई कार्य नहीं करते हैं। सर्व कार्यमें विवेक पूर्वक प्रवर्तते हैं। २९२.

❁ सारा विश्व शास्त्र है उसको पढ़ो। २९३.

❁ पहले तो यह तत्त्वकी बात सुननेको मिलनी ही मुश्किल है। सुननेको मिले तो समझना मुश्किल है। समझे तो तद्रूप होना मुश्किल है। यह तत्त्व तो ऐसा है कि बारम्बार इसकी दृढ़ता करनी चाहिये। २९४.

❁ समझका ही सब प्रताप है। २९५.

❁ मेरा सर्वस्व मेरेमें हैं, परका सब कुछ परमें है, इतना भरोसा हो जाना चाहिये। २९६

❁ आत्मार्थीकी अभिलाषा तो सम्यक्त्वकी ही होती है परंतु लक्ष सम्यक्त्वका नहीं होता है। कार्यका लक्ष होनेसे कार्य नहीं होता है और अभिलाषा सम्यक्त्वकी है तो क्या

गलती है यह देखते हैं। गलती देखते देखते अपने आप मार्ग निकल जाता है। जिसमेंसे कार्य निकलता है लक्ष तो उसका ही होना चाहिये। २९७.

❁ शरीरकी सावधानीसे आत्माकी सावधानी अधिक रहती है। यह साथी है तो उसके विषयमें भी विवेक रहता है। २९८.

❁ परके साथ संबंध करनेसे मेरा अहित होता है ऐसा ज्ञानमें भासेगा तो परसे संबंध करना छोड़ देगा। जैसे जहरसे मृत्यु होती है ऐसा लगता है तो जहर नहीं खायेगा और अग्निसे जलता है ऐसा लगनेसे अग्निको नहीं छूयेगा। २९९.

❁ हाथ, नाक, कान, मुख, आदि इन्द्रियाँ एक दूसरेका कार्य नहीं करती हैं, फिर भी इस जीवने इन सबमें अभेदता मान रखी है। ऐसे आत्मामें अपनापन होते उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय सबमें अपनापन ज्ञानमें आ जाता है, भेद नहीं करते। जैसे शरीरके अंगमें भेद नहीं करते ऐसे आत्मामें भेद नहीं करते हैं। ३००.

❁ जिसके पास ज्ञान मौजूद है वह तो दुःखी बन ही नहीं सकता और जिसके पास अज्ञान है वह दुःखी बने बिना रह सकता ही नहीं। जिसके पास करोड़ों रुपिया है वह क्या दूसरेसे भीख मांगने जायेगा कि हमको थोड़ा शाक दो, दाल दो, रोटी दो; ऐसी बात है! ३०१.

❁ आत्मा है तो प्रमुख परंतु अज्ञानसे परमुख हो गया है। ३०२.

❁ अपनी आत्माकी भीतरमें अशातना नहीं हो जावे इसके लिये सब प्रकारका विवेक रखना चाहिये। ३०३.

❁ कोई भी विषय हो परंतु उसका छंछेडाट (छोड़पिछोड़) करनेसे उस विषयकी स्पष्टता होती है। इसलिये तात्त्विक विषयको विशेष समझनेके लिये आप छंछेडाट करना। ३०४.

❁ देखो! उलटा पड़ा जीव तीर्थकरकी भी नहीं मानता है। (मारीचके जीवका प्रसिद्ध दृष्टांत है) और सुलटा पड़ा तो भी किसीसे नहीं पलटता है। यह जीव तीर्थकरकी नहीं मानता है और अपनी थोड़ी सी समझसे अपना अभिप्राय पलट जाता है। इससे सिद्ध होता है कि अपनी समझसे ही अपना काम होता है। ३०५.

❁ ज्ञानार्जन कर लेना दूसरी बात है। ऐसे तो ११ अंगवाले सब जानते हैं परंतु आत्मार्थी तो समझ कर अपनी आत्मासे पूछता है कि अपना हित क्या हुआ? जब तक अनुभव नहीं होवे, आत्मशांति न मिले, तब तक आगे आगे बढ़ता जाता है। संतुष्ट नहीं हो जाता है। ३०६.

❁ जब तक अपना कार्य न होवे तब तक “मैं समझता हूँ” ऐसा मानना ही नहीं। ३०७.

❁ ज्ञानीजन होते हैं वह शास्त्रका आधार नहीं मांगते हैं। मिश्री मीठी है उसके लिये शास्त्रप्रमाणकी क्या जरूरत है? स्वानुभव प्रमाण मिल गया फिर शास्त्र प्रमाणकी जरूरत नहीं रहती है। ३०८.

❁ समझ है यह तो सुदर्शन चक्र है। सु अर्थात् सम्यक्-सच्चा चक्र है। अहिंसक चक्र है। ३०९.

❁ कार्यकी दृष्टि यह तो कुत्ते जैसी दृष्टि है और कारणकी दृष्टि यह तो सिंहदृष्टि है। सिंहदृष्टि होनी चाहिये। ३१०.

❁ एक कमरेमें बैठना हो तो भी उसके अनुकूल विधि अपनानी पड़ती है। दरवाजेसे ही प्रवेश कर सकते हैं और किसी आदमीसे काम लेना हो तो उसके अनुकूल बनना पड़ता है। ऐसे आत्माके अनुकूल बननेसे ही आत्माकी प्राप्ति होगी। आत्माका स्वरूप समझने पर ही आत्माके अनुकूल बन सकते हैं। ३११.

❁ सारे विश्वसे अपनेको बोध मिलता है। सारा विश्व बोध दे रहा है। ३१२.

❁ आत्मार्थीका संसारसे अंतस फट जाता है, तब ही अपनी आत्माका काम कर सकता है। ३१३.

❁ आत्महित करनेवालेका व्यवहार ही दूसरी ढंगका होता है। उसको तो प्रत्येक कार्यमें विवेक रहता है। चलना, बोलना, खाना, पीना आदि सब कार्य विवेकपूर्वक होते हैं। उसका व्यवहार ही दूसरी जातिका होता है। उसको विवेक आ गया है, फिर भी उसको विवेककी कमी दिखती है और आगे आगे बढ़ता जाता है। ३१४.

❁ संसारपक्षसे (देह, धन, परिवार आदिसे) अपनी आत्माकी अधिकता हो जानी चाहिये। ३१५.

❁ जैसे पैसेसे पैसा बढ़ता है, वैसे अपनी लब्धपूंजी पड़ी है; उसका बार-बार उपयोग करनेसे अपना ज्ञान सामर्थ्य बढ़ता जाता है। ३१६.

❁ जैसे शरीरकी नाड़ी परसे वात-पित्त-कफका पता लगता है, ऐसे यहाँ अपने मन, वचन कायाकी प्रवृत्तिसे अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यका पता लगता है। जैसे वात-पित्त-कफमें गड़बड़ी

हो जाती है तो स्वास्थ्य बिगड जाता है। ऐसे आत्मामें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रकी गडबडीसे आत्मामें गड़बड़ी हो जाती है। ३१७.

❁ “आत्मा बडी जबरदस्त है।” ३१८.

❁ अनादिकालसे अनेक प्रकारके विकल्पोंका प्रवाह चला आ रहा है। परंतु उसने स्वभावको बिल्कुल स्पर्शा ही नहीं है, द्रव्यस्वभाव ऐसाका ऐसा ही रहा है। ३१९.

❁ एक राजा निवृत्तिके लिये राजपाट छोडकर जंगलमें चला गया। तब जंगलमें भी उनको मिलनेके लिये अन्य राजा तथा मंत्री आदि बडे बडे लोग आने लगे। इस तरह जंगलमें भी उसको निवृत्ति न मिली। यह भी एक प्रकारकी पुण्यकी सजा समझना। ३२०.

❁ अपनी समझका अज्ञानी निरंतर अपमान कर रहा है, यही आत्माकी हिंसा है। अपनी समझका सन्मान करना सीखना पडेगा। अपनी समझको समझो “समझ ही पार उतारेगी।” ३२१.

❁ वर्तमान समझ जो काम कर रही है यह प्रभुका ही अंश है, प्रगट अंश है। उस समझके अपमानसे ज्ञानका हास(नाश) होते होते निगोद अवस्था हो जाती है। इसके आगे ज्ञान सर्वथा नष्ट नहीं कर सकते और इस समझका सन्मान करनेसे ज्ञान बढता बढता सिद्ध दशा हो जाती है। ३२२.

❁ यह समझ है सो भी अपना प्रभुत्व है। उसकी महिमा आनी चाहिये। यह केवलज्ञानका अंश है और यही समझ प्रज्ञाछीणी बनती है। जो समझ वर्तमानमें गलत है वही पलटकर प्रज्ञाछीणीरूप बनती है। समझका ही सारा प्रताप है, संसारमें भी प्रत्येक कार्यमें समझका ही सारा प्रताप है। ३२३.

❁ संसारमें देखो ना! दुःख (बाहरका) बरदास्त नहीं होता है। मगर आत्माकी शांति नहीं मिलती तो वह बरदास्त कर लेता है। असलमें (अज्ञानजन्य) दुःख बरदास्त नहीं होना चाहिये। ३२४.

❁ प्रश्न :—आपने समझकी बात कही यह तो समझमें आयी परंतु समझका अपमान क्या और सन्मान क्या? यह समझमें नहीं आता?

उत्तर :—देह भिन्न है यह तो ज्ञानमें आता है परंतु स्वीकारता नहीं है। यही अपनी समझका अपमान है और समझका अपमान यही आत्माका अपमान है। और समझमें आया

कि देह, कुटुंब, आदि सब भिन्न हैं तो आत्मार्थी यही बात हमेशा सामने रखता है कि है तो ऐसा ही। कभी लडका विरोधमें हो जाय, कि कोई भी प्रतिकूल प्रसंग आ जाय तो उसमें अपनी समझका ही प्रमाण बाहरसे भी मिल जाता है। अनुकूलतामें ख्याल नहीं आता; परंतु प्रतिकूलतामें सारी परिस्थिति ख्यालमें आ जाती है। यह समझ अनुसार अंतरसे स्वीकार करना यही समझका सन्मान है और समझका सन्मान करना ही आत्माका सन्मान है। ३२५.

❀ विश्वको भी इसलिये समझना है कि अपनी समझको सुधारना है। ३२६.

❀ जो समझ समझका अपमान करती थी, वही समझ समझका सन्मान करती है। अपनी समझका सन्मान करनेसे समझ और भी बढ़ती जाती है और अन्य अन्य सांसारिक विषयोंसे हटती जाती है तो इसमें पात्रता भी बढ़ती जाती है और ज्ञान सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है। तो फिर अपना कार्य किये बिना पिंड छूटेगा नहीं। जैसे जैसे समझ बढ़ेगी ऐसे आगेका मार्ग अपने आप सूझने लगेगा। अपनी आत्मासे ही मदद मिलने लगेगी। ३२७.

❀ अपनी समझ भले ही गलत हो, परंतु है तो अपनी न! उसको सुधारनेका प्रयत्न करना। जैसे पुत्र कपूत हो उसको सुधारते हैं न! समझको समझना कि यह परद्रव्यमें स्वामित्व रखती है तो क्या परद्रव्य अपने हुवे या कभी होंगे? ऐसे ऐसे समझको समझानेसे वह सुधर जायेगी और उसको फटकारनेसे वह ज्यादा खराब होगी। जैसे पुत्रको समझानेकी बजाय मारने लगे तो और खराब होगा ऐसे यहाँ भी समझना। पुत्र कुपुत्र होता है परंतु माता कुमाता नहीं होती। पुत्रको शिक्षा ही देती है ऐसे समझ कितनी भी गलत हो, परंतु अपनी है न! तो उसको सत्य समझाना। ३२८.

❀ जैसे शरीरमें रोग आवे तो इलाज करते हैं न! ऐसे अपनी समझ उलटी है— गलत है तो उसको सुधारनेका प्रयत्न करना। शरीरमें रोग आवे तो फौरन इलाज करते हैं तो यहाँ समझको सुधारनेका इलाज फौरन क्यों नहीं करता है? ३२९.

❀ इतनी बात तो पक्की है कि अपना कार्य नहीं होता है तो कोई न कोई गलती जरूर है। इसलिये समझ गलतीको देखती है। ३३०.

❀ गंदे थालमें हलुवा भरोगे तो हलुवा भी गंदा हो जायेगा और मसोताके (पूछनेका मैला कपडाके) उपर कितना भी रंग चढावो नहीं चढेगा। ऐसे पात्रताके बिना कितना भी किया जाय कार्य नहीं होगा। ३३१.

❁ समझ ही मेरी है और कोई मेरा नहीं है ऐसा समझमें आते ही देहादिमें अपनापन ढीला हो जाता है। ३३२.

❁ अज्ञान है, अज्ञान है ऐसे करके अज्ञानकी पुष्टि नहीं करनी, हमारा लडका मूर्ख है...मूर्ख है ऐसा करनेसे क्या मूर्खाई टल जायेगी? बालक पहले तो अज्ञानी ही होता है, परंतु माता शिक्षा दे दे कर होशियार बना देती है...ऐसे अपनी समझको समझते रहनेसे अज्ञान टलता है। अज्ञान है वही ज्ञानरूप होकरके हमको बचायेगा। जैसे बच्चे ही बड़े होकर मां-बापको पालते हैं। ३३३.

❁ निद्रा नहीं आवे वह तो अच्छी बात है। ३३४.

❁ 'दीवा जले तो माल मिले' इसमें सब आ जाता है। चैतन्य दीवा जले तो सब माल मिल जाय। इस छोटेसे वाक्यमें, मैं तो सब कुछ समझता हूँ। अंदरमें प्रकाश होवे तो आनंद आवे। ३३५.

❁ अपनी गलतीको नहीं समझनेसे ही झगडा चलता है। कोई भी प्रसंग हो, अपनी गलती लेवे तो सामनेवाला भी कहे कि, नहीं नहीं हमारी गलती है तो झगडा शांत हो जावे। यह बाहरका झगडा भी शांत हो जाय, ऐसे भीतरमें भी अपनी गलती समझनेसे ही शांति होती है। ३३६.

❁ यह सब समझना इसलिये है कि अपनेको सर्व समाधान ही समाधान रहे। ३३७.

❁ अपना दोष देखने लगेंगे तो निर्जरा होने लगती है, कर्मवर्गणा तो अपने परिणामोंसे बंधती है न! तो गलती देखने लगेगा तो कर्मवर्गणा भी निर्जरने लगेंगी और बाहरकी स्थिति भी अनुकूल हो जाती है, कुदरत भी अनुकूल हो जाती है। ३३८.

❁ अपने अज्ञानको समझनेका प्रयत्न करेंगे तो अंदरमें अनेक भाव अपने ख्यालमें आने लगेंगे। ३३९.

❁ वास्तवमें अपने दोषोंको देखनेवालेको तो हम ऊँचा समझते हैं। भव्य जीव ही अपनी गलतीको समझ (देख) सकते हैं। जो अपनी गलतीको देखता है वह भाग्यशाली है। अपना दोष देखनेवाला ऊँचा है और दूसरेका दोष देखनेवाला नीचा है। ३४०.

❁ जैसे तूंबडीमें मिट्टी भरी हो और वह जलमें डूबी हुई हो; वहाँ जैसे जैसे मिट्टी जलमें गलती जाती है वैसे वैसे तूंबडी जलके उपर आती है। ऐसे समझ आगे बढ़ते बढ़ते

मिथ्यात्वका रस गलता जाता है, ऐसे ऐसे आत्माकी नजदीकता होती जाती है। ३४१.

❁ सच्चा आत्मार्थी कार्य पूरा हुवे बिना संतुष्ट ही नहीं होता है। और मेरेसे कार्य नहीं हो सकेगा, क्या होगा? ऐसे विकल्प ही उसको नहीं उठते हैं। मैं मेरा कार्य करूँगा ही, यह तो दृढ निर्णय है। ३४२.

❁ प्रश्न :—समझको कैसे सुधारना ?

उत्तर :—समझको समझनेसे समझ सुधर जाती है। ३४३.

❁ जैसे एक ही जलवर्षासे भिन्न भिन्न प्रकारकी वनस्पतिओके अनुसार जल भिन्न भिन्न रसरूप परिणम जाता है। ऐसे एक ही प्रकारका उपदेश मिलने पर भी अपनी अपनी समझके अनुसार समझका परिणमन होता है। ३४४.

❁ अपनी आत्मा मौजूद है, ज्ञान भी मौजूद है। परका तो कुछ कर सकता ही नहीं, अब तुझे क्या करना है? ऐसे ऐसे अपनी समझको समझाना। वास्तवमें अपना गौरव आना चाहिये। हमारे पास क्या कमी है? वस्तु मौजूद है, ज्ञान भी मौजूद है; अब क्या करना है? ३४५.

❁ बाहरकी वस्तु अपनी नहीं है फिर भी अपनी मानते हैं तो अपनी होगी नहीं और ऐसा माननेसे दुःख ही होगा। जैसे पत्थरकी शिला खुदी हुई हो तो उससे जीभ घिसे तो स्वाद तो आयेगा नहीं और जीभ कट जायेगी। ३४६.

❁ भोजनके समय कांटा लगे तो कहता है, ठहरो भाई! कांटा लगा है पहले उसको निकाल दूँ; यही पद्धति भीतरमें भी आ जानी चाहिये। अज्ञान है वह सारे विश्वका कांटा है। अज्ञानका कांटा जिसको बरदास्त होता है वह आत्मार्थी नहीं हो सकता है। अज्ञानरूपी कांटा खटके तो खुद ही निकाल देता है, दूसरा नहीं निकाल सकता। यदि कोई दूसरा कांटा निकाल सकता हो तो भगवान सबके कांटे निकाल देते। ३४७.

❁ प्रश्न :—परकी ओर उपयोग चला जाता है उसको स्वकी ओर लाना है न ?

उत्तर :—उपयोगको फिरानेकी बात नहीं है, रुचि ठीक करनी है। स्वकी रुचि करे तो उपयोग अपनी ओर सहज आयेगा। ३४८.

❁ स्वभावकी महिमा आनी चाहिये। महिमा आती है इतनी नहीं, उससे भी अनंत महिमावाली वस्तु है, ऐसा लगना चाहिये। ३४९.

❁ समझ आगे बढ़ते बढ़ते, अपनी आत्माका प्रतिभास हो जाता है। (यही सम्यग्दर्शन है) ३५०.

❁ समझका कार्य बढ़ते रहनेसे अंदरसे ही सब खुलासा आता है। स्वप्नमें भी खुलासा हो जाता है। निरंतर आत्माका ही लक्ष रहे, तो दूसरा तो कोई प्रयोजन ही नहीं है तो अपना आत्मा जरूर प्राप्त हो जाता है। ३५१.

❁ नींद आ जाना वह तो मृत्यु है और जागृत रहना वह जीवन है। नींदमें तो मृत्यु जैसी दशा हो जाती है। जागृत होना वह जीवन है। ३५२.

❁ निरंतर अपनी आत्मासे प्रश्न करते रहो कि तुम यह क्या कर रहे हो? यह शरीरादि क्या तुम्हारे हैं? तुम्हारे नहीं हैं तो उनके भरोसे क्यों रहते हो? धायमाता दूसरेके बालकको दूध पिलाती है, मगर समझती है कि यह मुझे निहाल नहीं करेगा, ऐसे समझना चाहिये कि शरीर, धन, कुटुंब आदि कोई मुझे निहाल करनेवाले नहीं हैं। मुझे तो मेरी समझ ही निहाल करेगी। ३५३.

❁ अंतःकरण तो एक ही है और उसमें पर-शरीरादिको रखा है—परको अपना मानता है परंतु परपदार्थ अंतःकरणमें आ नहीं सकते। पुत्र कितना भी प्रिय हो, अधिकसे अधिक छातीसे लगावे, परंतु अपने अंतःकरणमें तो रख सकते नहीं, व्यर्थ ही अपना मान रखा है अपना होता नहीं। परको पर समझ लेवे तो अंतःकरणमेंसे निकल जावे। परको अपना सकते नहीं, इसलिये मान्यता ही व्यर्थ जाती है। ३५४.

❁ मैं कहता हूँ कि जाणनार रहो, आजसे ही जाणनार रहो। आजसे क्या, अभीसे ही जाणनार रहो—रहना। बाहरमें शरीर आदिकी क्रिया भले ही होती रहो परंतु जाणनार रहो। भले अभी तो यह कल्पना है, परंतु ऐसी कल्पना चलते चलते कल्पना टूटकर यथार्थता प्रगटती है। ३५५.

❁ यह अपूर्व अवसर मिला है तो अपना हित कर लेना। परद्रव्यकी चिंताका बोझ ढोते हैं वह तो ढोर जैसा है। ढोर व्यर्थका बोझा ढोता है। ऐसे परद्रव्यका बोझ उठानेवाला ढोर है। ३५६.

❁ अपने आत्महितका यह महान अवसर है। इसलिये उल्लास उठना चाहिये, उल्लास बिना शुरुआत नहीं होगी। ३५७.

❁ सबके पास ज्ञान मौजूद है कोई गरीब नहीं है। ३५८.

❁ प्रश्न:—आत्मा कैसे जीवित है ?

उत्तर:—आत्मा ज्ञानसे जीवित है, ज्ञान ही आत्माका जीवन है। ३५९.

❁ यह अणुबंध आदि बनते हैं वह भी निमित्त-नैमित्तिक संबंधको समझकर ही बनते हैं। अपने बनाये बन सकते हों तो कंकरोमेंसे अणु-बंध बना लेवे। ३६०.

❁ प्रश्न:—आत्माके दस बीस गुण ही ख्यालमें आते हैं, दूसरे सब गुण ख्यालमें नहीं आते तो कैसे मानें ?

उत्तर:—शरीरको अपना मानते हैं तो शरीरके सब भागमेंसे पीठ, मस्तक आदि अनेक भाग दिखते नहीं है, फिर भी पूरे शरीरमें अपनापन है। ऐसे यहाँ भी समझ लेना। ३६१.

❁ पहले तो दर्दका निदान करता है, पीछे दवाई करता है। ऐसे यहाँ भी वर्तमानमें अज्ञान है, परको अपना मानता है, सुखके लिये बाहरमें घूमता है यही रोग है। ऐसा पहले निर्णय करना चाहिये, फिर इलाज करनेका समय है। ३६२.

❁ समझना ही क्षमापना है। जैसा स्वरूप है वैसा समझना ही क्षमापना है। सारे विश्वका स्वरूप समझ लिया तो सारे विश्वसे क्षमापना हो गई। ३६३.

❁ किसीका मकान जलता होवे और अपनेको शंका हुई कि क्या अपना मकान तो नहीं जल रहा ? खबर मिली कि, नहीं, अपना मकान नहीं जला है, दूसरेका है। तो उसमें भिन्नबुद्धिके कारण कुछ भी दुःख नहीं होता। ऐसे ज्ञानीके सब संसारिक प्रसंगोंमें भिन्नता रहती है। शरीरकी स्थिति कैसी भी होवे, दूसरे प्रसंग भी कैसे ही क्यों न हों परंतु इनसे हमारा क्या ? हमारा कुछ विगाड नहीं होता। सदा ऐसा भान रहनेसे, संसारके प्रसंगमें हर्ष-शोक नहीं होता। कैसे भी हो, परंतु मैं तो ज्ञायक हूँ, ऐसा भाव प्रत्येक प्रसंगमें रहना चाहिये। ३६४.

❁ जब पापोंका प्रायश्चित्त अंतःकरणसे होता है तब प्रायः आंखोंमेंसे आंसू निकल जाते हैं। पापकी निर्जरा हो जाती है। ३६५.

❁ अंतरका जीवन निर्णय है। निर्णय संभालना कार्यकारी है। ३६६.

❁ अंदरकी अनुकूलता कार्य करती है, बाह्य अनुकूलता कार्य नहीं करती है। आत्मार्थीको बाह्य अनुकूलता कार्यकारी नहीं लगती है। ३६७.

❁ सूर्य तो अपने आप उदय होगा ही, कब उदय होगा, कब होगा, ऐसे विकल्पकी क्या जरूरत है? ऐसे ही सब परिस्थितियाँ अपने आप बन रही हैं उनको संभालनेकी क्या जरूरत है? व्यर्थ ही परिस्थितिको संभालनेकी आदत हो गई है। परिस्थिति ही अपने आप बोल देगी। परिस्थितिको संभालना वह तो धिक्कार है। आत्माको संभालनेसे शांति होगी। ३६८.

❁ ज्ञान ही ऐसी अमूल्य चीज है जिससे पापोंसे और दुष्ट कर्मोंसे बच सकते हैं। ३६९.

❁ अस्ति नास्ति दोनों साथ हैं। वास्तवमें बात यह है कि जितना जितना समझमें आयेगा उतना उतना दोष सहज ही निकलता जाता है; तो दोष निकालना कहनेमें आता है। ३७०.

❁ अंदरमें विचार करनेसे सब समझमें आयेगा। अंदरमें खुदको ही प्रश्न करो! समझनेका पुरुषार्थ करो! लक्षमें गडबड होगी तो कार्यमें भी गडबड होगी। ३७१.

❁ प्रश्न:—पात्रताका स्वरूप क्या है ?

उत्तर:—जैसे खुली हथेली त्रांसी (उलटी) रखी हो और उसमें पानी डाले तो वह तुरंत गिर जावेगा, क्योंकि वह पात्र नहीं है-अपात्र है। अब हाथ सीधा रखकर, हथेलीमें पानी डालो तो थोड़ी देरके बाद निकल जायेगा तो वह कुपात्र है। अब हथेली, अंगुली सबको संकोच करके उसमें पानी डालो तो रह जायेगा, क्योंकि वह एक पात्र बन गया है। बस ऐसे ही पात्रताका स्वरूप समझ लेना। गुरुका वचन सुनकर वह सीधा कानसे निकल जावे तो वह पात्र नहीं है। थोड़े समयके बाद निकल जावे तो वह कुपात्र है और गुरुका वचन अंतःकरणमें प्रवेश कर जावे तो वह पात्र है। ३७२.

❁ अमेरिकामें तो करोड़पतियोंकी कोई गिनती नहीं है। हजार करोड़के आसामी भी अनेक हैं, अनेक अबजपति हैं। परंतु रातको गोली लेवें तब नींद आती है। दूसरे देशके बम्बका भय रहा करता है। देखो! कैसी स्थिति है, सब दुःखी हैं। ३७३.

❁ प्रत्येक विषयको उसके अंतःकरणमें प्रवेश करके देखो। उपर उपर देखनेसे उसका अंतःकरण नहीं देख सकोगे। जैसे कोई फल हो तो उसको चीर कर और जहाँ जहाँ खराबीकी संभावना हो, वहाँसे तोड़ तोड़ कर फिर खाते हैं। वैसे विश्वके प्रत्येक विषयको तोड़ तोड़ कर, उसके अंतःकरणमें प्रवेश करके उसका स्वरूप देखो तो कर्तृत्व टूट जायेगा और समझ फिर अपने अंतःकरणमें प्रवेश करके देखेगी तो मैं सिर्फ समझनेवाला ही हूँ, दूसरा अपना कोई कार्य नहीं दिखेगा। ३७४.

❁ आत्मार्थीका निश्चयके साथ व्यवहार दूसरी जातिका होता है। ऐसा व्यवहार होता है कि दूसरेके उपर उसकी भारी छाप पडती है। ३७५.

❁ “पुरुष प्रमाणे वचन प्रमाण” वह तो जानने (अप्रयोजनभूत)के बारेमें है। प्रयोजनभूत विषयको तो खुद ही परीक्षा करके मानना पडता है। वैसे ही मान लेवे उसका कोई मूल्य नहीं। ३७६.

❁ एक व्यक्ति भोजन कर लेवे और दूसरेका पेट भर जावे ऐसा नहीं बनता, सबका अपना अपना स्वतंत्र कार्य है। ऐसे एक द्रव्यका कार्य दूसरा नहीं कर सकता है। व्यवहारके दृष्टांतमें तो कैसा स्पष्ट लगता है। ऐसा ही सब द्रव्योंमें समझ लेना। ३७७.

❁ ज्ञानी बहुत परिमित बोलते हैं। भाषावर्गणाका कहाँ टोटा (कमी) है? अच्छेसे अच्छा व्यवहार होना चाहिये। ३७८.

❁ आत्मार्थी है वह तो स्वार्थी है। अपने आत्महितके प्रयोजनकी किसी भी प्रसंगमें गौणता नहीं होने देता। ३७९.

❁ नब्ज (नाडी)की धडकन ख्यालमें आती है, परंतु कर सकता नहीं है। लेकिन हाथ पैरकी चेष्टा में करता हूँ ऐसा लगता है, परंतु नब्जकी माफिक सबको जानता ही है, करता नहीं है। ३८०.

❁ प्रश्न :—क्या द्रव्यलिंगी मुनिने विश्वमर्यादाको नहीं जाना है?

उत्तर :—जाना तो है परंतु सही ढंगसे नहीं जाना है। विश्व-मर्यादाको भी यथार्थरूपसे समझ लेवे तो आत्माके सन्मुख आये बिना रहे ही नहीं। ३८१.

❁ यह संस्कार भी चालू हो जाय तो भविष्यमें आगे भी अपना कार्य कर लेगा तो कमसे कम यह संस्कार तो चालू हो जाने चाहिये। ३८२.

❁ सत्यकी स्वीकृतिमें महान पुरुषार्थ है, खाली बात नहीं है। समझमें साधारणको शुष्कता लगती है। ३८३.

❁ सत्य कहनेवाले दो और दो चार कहते हैं, तीन या पाँच नहीं कहते हैं। सभी समकिति, ज्ञानीसे लेकर सिद्ध तकके अभिप्रायमें एकता होती है भिन्नता हो ही नहीं सकती है। ३८४.

❁ भक्ति गुणानुवादी है। गुण देखनेसे सहज भक्ति होती ही है, यह ऐसा ही स्वभाव है। ३८५.

❁ अपनेमें जो सज्जनता है उसका लाभ उठाना चाहिये। अपना हित साधों! ३८६.

❁ विवेकके बलसे निर्भयता आ जाती है। विवेकका बल है वह कोई साधारण नहीं है। विवेक है वह तो बड़ी चीज है। विवेकके बलसे तो केवलज्ञान होता है। ३८७.

❁ स्व-परका भेदज्ञान करना, यह सबसे पहली बात है। ३८८.

❁ आत्मार्थी ही आत्मार्थीका हृदय पिछान सकता है। ३८९.

❁ होता है और करता है उसमें बहुत फेर है। दूसरेके विषयमें तो 'होता है' ठीक है। अपने विषयमें तो करता है, समझ करता है, ऐसा लेना चाहिये। आशय नहीं समझे तो बड़ी गडबड हो जाती है। निर्णय भी जब होनेवाला है, तब होगा ऐसा कहे तो गलत बात है। परका कार्य तो होना है वैसे होता है ऐसा लेना बराबर है। परंतु निर्णयके लिये होना है तब होगा ऐसा लेना गलत है। निर्णय तो खुद करता है तब होता है। ३९०.

❁ असलमें आत्माको समझनेकी तीव्र झंखना होनी चाहिये। जैसे गाडीका समय हो गया हो तो, किसीकी भी नहीं सुनते, फौरन स्टेशन पर पहुंच जाते हैं। ऐसे तीव्र धगश होवे वह कहीं रुकता ही नहीं। उसको तो निरंतर यही चलता रहता है।

प्रश्न:—उसको निर्णय करनेकी धगश रहती है कि अनुभव करनेकी धगश रहती है।

उत्तर:—अपनी अखंड आत्माको मैं समझूँ, ऐसी धगश होती है। ३९१.

❁ ज्ञानका अर्चित्य माहात्म्य है वह बैठ जाना चाहिये। ३९२.

❁ आत्मार्थी किसीके कहनेसे नहीं मानते हैं। अपने प्रयोगसे सिद्ध करके ही मानते हैं। वैसे ही हाँ...हाँ करनेकी उनकी पद्धति नहीं है। साक्षात् भगवानको भी अपने प्रमाणमें आये बिना नहीं मान सकते। ३९३.

❁ इस शरीरको तूने खूब खिलाया, पिलाया, फिर भी उसने तुमको धोखा दिया। ३९४.

❁ अपनी आत्मामें अपनेपनकी कल्पना चलती है। वह शरीर आदिमें जो अपनेपनकी कल्पना है उसको टोकर मारती है। आत्मामें अपनेपनका संस्कार डालना चाहिये। संस्कार ही कार्य करता है। यह संस्कार उलटी श्रद्धाको तोड़ देता है। ३९५.

❁ जो बात अंतरमें जच जाती है उसको कोई पलट नहीं सकता। चाहे उपरसे ब्रह्माजी आवो न! अपनी जचीको कोई नहीं पलट सकता। उलटी श्रद्धा भी वैसे ही नहीं पलटती। असाधारण ज्ञानसामर्थ्यसे ही वह टूट सकती है। ३९६.

❁ अपना काम करनेवाला मान-सन्मानको तो गिनता ही नहीं। कोई कितना ही सन्मान देवे, परंतु इससे अपनी आत्माका क्या हित हुवा और अपनी आत्माका अपमान करे तो भी क्या? जिसको अपना काम करना है वह मान-सन्मानको तो गिनेगा ही नहीं, अपने हित-अहितका ही विचार करेगा। कैसे हित होवे, कैसे अहितसे बचे? यही देखेगा। ३९७.

❁ एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं करता, यही एक द्रव्यका दूसरे द्रव्य पर महान उपकार है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें कुछ करने लग जाय, वह तो डाकुओंका काम है। ३९८.

❁ कषायका दुःख तो सबके अनुभवमें है। इसलिये वह तो फौरन पकड़में आ जाता है। परंतु आत्माके सुखका ख्याल तो जो अनुभव करता है उसको ही आता है। उसे किसी दृष्टांतसे नहीं बता सकते। उसकी उपमा दी जाय ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं और दूसरे पदार्थकी उपमा दी जाय ऐसा वह सुख भी नहीं है। यह तो अलौकिक है वचनसे कह नहीं सकते, अनुभव करे तब जान सकता है। ३९९.

❁ आत्मार्थी अपनेसे पूछता है कि यह पुद्गल प्रत्यक्ष भिन्न है, तुम इससे भिन्न हो, फिर भी क्यों नहीं मानते? ऐसे आत्मार्थी अपनी गलतियोंको पकड़ता है। ४००.

❁ आत्मार्थी अपनी गलतियोंको देखता है। परमें अपनापन करता है तो उसको ऐसा लगता है कि अरे! यह तो आत्माके उपर जुल्म होता है। ४०१.

❁ सिद्धगति जीवको संघर (रख) सकती है, या निगोद संघर सकती है। चारों गति तो जीवको फेंक देती हैं। निगोद और सिद्धमें ही जीवको रखनेकी सामर्थ्य है। ४०२.

❁ ज्ञानकी महिमा है, ज्ञानकी महिमा आयी नहीं। ज्ञानकी महिमा आने पर छुटे नहीं। ज्ञानके प्रतापसे नरसे नारायण बनता है। ४०३.

❁ अपने दोषों पर दृष्टि गई तो दूसरेके दोषोंको देखनेका साहस ही नहीं होगा। ४०४.

❁ ज्ञानीको राग आता है वह नाश होनेके लिये आता है और अज्ञानीको राग आता है वह आत्माका नाश करनेके लिये आता है। ४०५.

❁ प्रश्न :—दोषोंको कैसे टालना ?

उत्तर :—दोषोंको टालनेकी बात ही नहीं है। यहाँ तो दोषोंको समझनेकी ही बात है। समझमें आते ही दोष छूट जाते हैं। दोषोंसे स्वामित्व छूट गया फिर जो राग आता है वह छूटनेके लिये आता है। जैसे बहुरुपियाको पिछान लेनेसे वह चला जाता है ऐसे दोषोंको पिछान लेनेसे दोष छूटने लगते हैं। ४०६.

❁ ज्ञानकी महिमा आयी नहीं। महिमा तो क्या, महामहिमा आ जानी चाहिये। इसके बिना तो पिंड छूटेगा ही नहीं। ज्ञान तो सबके पास है, कीडीके पास भी है। परंतु महिमा नहीं आयी। ज्ञान तो भगवान है। ४०७.

❁ मात्र समझना ही है। गढ़ा देखता है तो उससे बचकर ही चलेगा। ऐसे स्वरूप समझमें आनेसे हितरूप ही परिणमते हैं। यह सहज स्वभाव है। समझको ठीक करनी है तो कैसे ठीक करेगा ? किस साधनसे ठीक करेगा ? कोई भी विषय ले लो समझना ही रहेगा और समझना ही तो आत्माका स्वभाव है। दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता। अपने पास ज्ञानकी पूंजी तो पडी है, परंतु शरीरके लिये, परिवारके लिये खर्च देता है। अपनी पूंजीका नाश कर देता है। अपनी समझमें अपनी आत्मा ही सबसे अधिक लगनी चाहिये, परंतु उसको धन, शरीर आदि अधिक लगते हैं। ४०८.

❁ जैसे किसीके पास चिंतामणि रत्न हो तो उसकी कीमत कितनी भासती है। परंतु अपना ज्ञान ही तो चिंतामणि है, उसकी कीमत नहीं लगती है। ४०९.

❁ वस्तु तो कृतकृत्य ही है, परंतु ज्ञान समझता नहीं है। ४१०.

❁ पैसेकी महिमा इसलिये है कि पैसेसे सबकी सब सामग्री मिलती है। ऐसे ज्ञानसे अपने अनंत गुणोंकी शांति मिलती है इसलिये ज्ञानकी महिमा है। परंतु जीवको ज्ञानकी महिमा नहीं आती। जैसे बच्चोंको नोट (रुपये)की महिमा नहीं है, फाडके फेंक देते हैं क्योंकि उनको समझ नहीं है। ऐसे अज्ञानीको समझ नहीं होनेसे ज्ञानकी महिमा नहीं आती। ज्ञानकी तो बडी भारी महिमा है। ४११.

❁ समझकी गलती समझसे ही निकलेगी। ४१२.

❁ अपने स्वभावको पकडने पर आनंद आता ही है। जैसे बीस सालसे पुत्रका वियोग था और वह मिले तो कितना आनंद होवे ? वैसे स्वभावका वियोग अनंत कालसे था,

वह प्राप्त हो जाय तो आनंद हुवे बिना रहे नहीं। वह आनंद भी अलौकिक है। ४१३.

❁ शरीर आदि कोई तुम्हारा होनेवाला नहीं, तुम्हारी समझ ही एक तुम्हारी है। रातके बारह बजे वह तुम्हें जवाब देगी, दूसरा कोई जवाब नहीं देगा। कोई शरण देनेवाला नहीं है और तुम्हारे पास समझ मौजूद है। तुम्हें दूसरेकी शरण लेनी पड़े, ऐसे तुम नहीं हो और दूसरा तुमको शरण देनेवाला नहीं। फिर तुम भगवान होकर दूसरेसे क्यों मांगते फिरते हो? यह तो अपना काम करनेका समय है। इससे अच्छा कौनसा समय आनेवाला है? जिसकी बातमें वर्तमान समयको खो देना। ४१४.

❁ गुलाम तो बने हुवे हैं, अब तो भगवान बननेका पुरुषार्थ करना है। सेठ बनके जावो। गरीब बनके नहीं। अपने दोषोंको नहीं देखते हैं वह ही गरीब हैं। ४१५.

❁ 'स्वराज्य'का अर्थ क्या है? स्व का अर्थ क्या? शरीर स्व है? कुटुंब स्व है? स्व कौन है? स्वकी व्याख्या क्या? जो त्रिकाल अपने साथ रहता है और अपना कार्य करता है वही स्व है। ४१६.

❁ स्वको स्व और परको पर समझना है। परंतु अज्ञानी परको स्व मानता है, यह तो चोर डाकुओंका काम है। पर चीजको अपनी मानना क्या चोरी नहीं है? ४१७.

❁ परपरिणतिके साथ संबंध करना वह तो दुराचार है। परकी परणी हुई स्त्रीसे संबंध करना दुराचार है। ऐसे परपरिणतिके साथ संबंध करना दुराचार है। ४१८.

❁ अपनेको ऐसा लगना चाहिये कि मैं संसारका प्राणी नहीं हूँ। "मैं परदेशी पंखी साधु, आरे देशके नहीं।" ४१९.

❁ अपने दोषोंको देखनेवाला ही गुणोंको ग्रहण कर सकता है। जो अपनेको गुणवान ही मान बैठा है, वह गुणोंको ग्रहण ही नहीं कर सकता। ४२०.

❁ अंतःकरण सत्य प्रसिद्ध करता ही है परंतु ज्ञान समझता ही नहीं। ज्ञान समझे तो अंतःकरणकी पुकारको समझ सकता है। अपनी आत्माकी पुकारको सुननेवाला आप ही है, और कोई शरण नहीं है। ४२१.

❁ जैसे नेपोलियन कहते थे कि हमारी डायरीमें 'अशक्य' शब्द नहीं है। ऐसे अपनी डायरीमें 'मैं परका कर्ता हूँ' यह शब्द नहीं है। ४२२.

❁ जो अपना काम करनेवाले हैं वह कितनी भी ठोकर लग जाय, प्रतिकूलता आ

जाय, फिर भी नहीं घबराते। दूसरेको ख्यालमें भी नहीं आने देते, ऐसे वीर होते हैं। ठोकरोंको सह लेना मैं तो अच्छा समझता हूँ, इसमें तो अपनी कसौटी हो जाती है। ४२३.

❁ अपने दोषोंको पहले इसलिये देखना है कि दोष हैं वह बाधाये हैं। जैसे हम सर्पोंके बीचमें पड़े हों तो अपनी रक्षा करते हैं। ऐसे दोषोंसे अपनी रक्षा करनी है। ४२४.

❁ जीवोंका वर्तमान देखकर ऐसा लगता है कि भविष्य बहुत ही खराब है। आजकल विवेक ही चला गया है। किसी कार्यमें विवेक ही नहीं रहा है। लोगोंका पुण्य घटता जा रहा है। रेडियो आदि फिजूलकी चीजें बढ गई हैं और अनाज आदि कामकी चीजें हैं वह नहीं हैं। फिजूलका काम बढ गया है। पुत्रादिमें माता पिताकी विनय चली गई है। स्त्रीयोंमें भी जो आचार-विचार चाहिये वह नहीं रहा है। देखादेखी बढ गई है। लोगोंका भविष्य बहुत खराब होगा ऐसा दिखता है। ४२५.

❁ विवेक है सो अपना धन है। परंतु आजकल रुपिया कितना है वह देखते हैं। विवेकको नहीं देखते हैं। विवेकको देखना चाहिये, धनको नहीं। आजकल लोगोंमें पाप ही बढ गया है, पुण्य नाशक रीति हो गई है। ४२६.

❁ प्रश्न :—सबसे बढिया विवेक कौनसा है ?

उत्तर :—विवेक सब बढिया हैं। शक्करकी कौनसी डली ज्यादा मीठी होगी ? सब मीठी ही हैं। ऐसे विवेक सब बढिया ही हैं। अपने पास कितना भी विवेक होवे, फिर भी उससे बढिया विवेकका प्रयत्न रखना, रुक नहीं जाना। ४२७.

❁ अंदरमें मुनिपणा होता है उसको बाहरमें भी मुनिपणा होता ही है। ऐसे जिसको अंदरका विवेक है उसको बाहरका भी विवेक होता है। हमारी जो पद्धति चालू है उससे भी अधिक विवेकवाली पद्धति करनेका भाव रहता है। ज्यादासे ज्यादा विवेक बढाना। विवेकके बिना कोई मुक्ति गया नहीं और सुखी बना नहीं। कोई भी कार्य हो विवेकपूर्वक ही होना चाहिये। ४२८.

❁ जिससे पाप होवे ऐसी सामग्रीकी हमें जरूरत नहीं है। हमें तो ज्ञानीका समागम चाहिये, वह मिले ऐसा पुण्य चाहिये जिससे अपना हित होवे। अपना बिगाडे वह पुण्य नहीं, परंतु वास्तवमें पाप है। ४२९.

❁ इन्द्रियसे ज्ञान नहीं होता है। ज्ञानसे ही ज्ञान होता है। परंतु अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि इन्द्रियसे ज्ञान होता है। इन्द्रियसे ज्ञान नहीं होता। आंख खुली हो और उपयोग कहीं

चला जाय तो ज्ञान नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियसे ज्ञान नहीं होता, उपयोगसे ही ज्ञान होता है। ४३०.

❁ शरीरकी, वाणीकी, विकल्पकी जो कुछ भी क्रिया हो रही है; उसको मैं मात्र जाननेवाला ही हूँ। जो कुछ भी होता है मैं उसका करनेवाला नहीं। “होता देखो, करता हूँ मत देखो।” बस! यह चुंबकवत् बात है। उसमें सब सार है। निरंतर उसका विचार करो। यह विषय समझमें आये बिना छुटकारा नहीं। अपना हित करना है तो यह विषय समझना ही पडेगा। यह भेद विज्ञानकी बात है। निरंतर शरीरकी, खानेकी, पीनेकी, सोनेकी, वाणीकी जो कुछ भी क्रिया चलती है उसको होती देखो। करता हूँ ऐसा मत देखो। बस! इतनी सी बात जरूर समझ लो! ४३१.

❁ प्रश्न:—यह भेदविज्ञानकी बात तो आपने बताई, परंतु उसके पीछे क्या करना ?

उत्तर:—उसके पीछे क्या करना, वह सब अपने ख्यालमें स्वयं आ जायेगा।

श्रोता:—कुछ बात तो बता दो ?

उत्तर:—यह तो ऐसी बात आई कि मिश्रीको हाथमें रखकर मुखमें तो डालता नहीं और पूछता है कि मिश्री कैसी लगती है ? अरे भैया ! तुम ही चख लो। चखनेसे मालूम पडेगा कि कैसा स्वाद आता है। ४३२.

❁ निज दोषदर्शन दृष्टिसे तो पात्रता होती है ! जैसे जमीन कंकरीली हो तो पहले ठीक करते हैं। ऐसे अपने दोषोंको देखनेसे अपनी पात्रता ठीक हो जाती है। परंतु कार्य तो पीछे करनेका रहता है। वह तो अपने ध्रुव स्वभावका लक्ष करनेसे होता है। संसारकी आदतें बुरी हैं दुःखरूप हैं। तो उन बुरी आदतोंसे बचनेके लिये दोष देखना चाहिये। परंतु कार्य तो ध्रुवके लक्षसे ही होता है। ४३३.

❁ रोग आवे तब इलाज करना दूसरी बात है और चिंता करके दुःखी बनना दूसरी बात है। ४३४.

❁ भीतरके रोगके लिये भीतरकी दवाई चाहिये। अपने अंदरके दोष देखनेसे भीतरकी दवाई मालूम पड जायेगी। दोष नहीं देखेगा तो फिर असाध्य रोग हो जायेगा। दोष देखनेकी पद्धति अंतःकरणसे आ गई तो उसका कल्याण हो गया। ४३५.

❁ “मैं समझता हूँ—मैं तो जानता ही हूँ”...ऐसे ऐसे अंदरमें रहता ही है। यह बात

खास विचारना। यह गलती रह जाती है तो अपना कार्य नहीं होता। ४३६.

❁ कार्य तो दृष्टिके विषयको पकडनेसे सहज हो जाता है। दृष्टिका विषय समझमें आते ही दृष्टि होती है परंतु दृष्टिका विषय समझमें नहीं आता है तो अपनी कोई असाधारण गलती जरूर है। ऐसा आत्मार्थी समझता है और अपनी गलती देखता है। ४३७.

❁ अपने प्रत्येक विचारोंको ज्ञानके सामने रखकर कसौटी करो कि यह विचार कैसे हैं? क्या प्रसिद्ध करते हैं? अपनी पद्धति ठीक है कि ठीक नहीं है? यह सब ज्ञान निर्णय करता है। अपनी पद्धति ठीक नहीं लगती तो निषेध चलता है। ऐसे ऐसे निषेध करते करते अपनी समझका काम आगे बढ़ता जाता है। ४३८.

❁ अपनी गलती देखनेकी बात मामूली लगती है। परंतु मामूली नहीं है, असाधारण बात है। किसीके कहनेसे गलती नहीं देखेगा। आत्मार्थी होता है वह अपने दोषोंको देख लेता है। अपना दोष देखनेसे जीवन सुंदर बन जाता है। ४३९.

❁ कार्यविधिकी शुरुआत समझसे ही होगी। ४४०.

❁ अज्ञानी बंगलेको अपना मानता है। परंतु बंगलेके परमाणु हंसते हैं कि यह मूर्ख मुझे अपना मानता है परंतु मैं उसका कहाँ होनेवाला हूँ? ४४१.

❁ रागका जोर चाहे कितना भी हो परंतु ज्ञान जीवित रहता है और ज्ञानका जोर बढ़नेसे रागको नष्ट कर देता है। इसलिये हताश होनेका कोई सवाल ही नहीं। आज काम न किया तो कल करेंगे, परसों करेंगे, परंतु हताश तो होना ही नहीं। और संतुष्ट भी नहीं हो जाना। संतोषवृत्ति और हताशवृत्ति यह दोनों भयंकर राक्षसवृत्ति हैं। ४४२.

❁ जीव परमें अपनापन करता है ऐसा कहते हैं। असलमें परमें कोई अपनापन नहीं करता है। परंतु परको स्व समझकर परमें अपनापन करता है। परको पर समझे तो अपनापन कर सकते ही नहीं। ४४३.

❁ प्रश्न:—अपना दोष कहाँ तक देखते ही रहना?

उत्तर:—जब तक केवलज्ञान न हो तब तक दोषको देखना है। सम्यक् भान होनेके बाद दोष देखनेकी पद्धति दूसरी जातिकी है। यहाँ तो दोषका सहज ही निषेध होता जाता है। पहलेवालेको तो दोष देखना पडता है। दोषको छोडनेका भाव रहता है। सम्यक्त्व पीछे दोषकी जड तो कट गई है। पहलेवालेके दोषकी जड पडी हुई है वह ही खराब है। ४४४.

❀ परकी रुचि है तो समझे कैसे? स्वकी रुचि है तो समझे बिना रहे कैसे? ४४५.

❀ व्यवहार भी अलौकिक होना चाहिये; जिससे अपनेको और परको दुःख न होवे ऐसा व्यवहार करना चाहिये। अपना दोष देखनेसे नवीन जीवन होता है। अपना दोष देखना ईमानदारी है...। अपना दोष देखनेवाला कभी नहीं घबरा सकता...। अपना दोष देखनेवाला जीव महाभाग्यशाली है...। दोष देखना अनिवार्य है। दोष देखनेवाला ही पात्र है...। अपना दोष देखनेवाला ज्ञान यह भी समझ लेता है कि यह दोष प्रबल है साधारण प्रयत्नसे नहीं जायेगा। दोष है वह तो चोर है, अपने गुणको ही चुरा लेता है। मैं स्वयं मेरा घातक हूँ। ऐसा आत्मार्थी विचारता है। ४४६.

❀ शरीरको अपना मानना टूट जावे, तो संसार टूट जावे। ४४७.

❀ शरीरके स्वास्थ्यकी क्या बात? अंदरमें स्वस्थ होना चाहिये। ४४८.

❀ भैया! अपनी भूल देखने लग जाओगे तो भूलकी निर्जरा हो जायेगी। कैसी विलक्षण बात है! गलतीको नष्ट करना है ही नहीं। समझना है। यथार्थरूपसे गलतीको देखे तो छूट जायेगी। छ, बारह मासमें देखो, कितना सुंदर जीवन हो जायेगा। ४४९.

❀ आत्महित करना है वह प्रमादको बरदास्त नहीं कर सकता है। ४५०.

❀ अपने घरमें वाईसरोय आवे तो अपना बडप्पन समझते हैं। परंतु अपना वाईसरोय चला गया उसका पता नहीं है। ४५१.

❀ व्यवहारमें भी बाह्य-क्रियाका मूल्य नहीं, सब अंतःकरण देखते हैं। पिता अपने पुत्रको पीट देवे परंतु उसके अंतःकरणमें पुत्रकी हितबुद्धि होती है। ऐसे यहाँ भी अंतःकरणको देखना चाहिये। बाह्य क्रियाका मूल्य नहीं है। ४५२.

❀ वस्तुस्वभाव समझना यही स्वाध्याय है। शास्त्र पढना ही स्वाध्याय है ऐसा नहीं। भले ज्ञान कितना भी हो, अनेक शास्त्र पढे हों, परंतु अपने दोषोंको नहीं देखता है उस ज्ञानका कोई मूल्य नहीं है। ४५३.

❀ द्रव्यकी महिमा करना वह ही सुधरना है। द्रव्यकी महिमा न होना यही विगाड है। ४५४.

❀ अपनेमें क्या कमी है और परमें क्या धरा है कि परिणति बाहर फिरती है? अपनी खोटी परिणतिको उलाहना देना कि अरे! तुम भले खानदानसे हो, क्या परमें जाना तुमको शोभा

देता है? जैसे मूर्खके साथ झगड़ा करना शोभा नहीं देता, ऐसे आत्माकी परिणति परमें जाती है वह शोभा नहीं देती। परिणतिको ऐसा ऐसा उलाहना देते रहनेसे वह ठीक हो जायेगी। ४५५.

❁ प्रश्न:—आत्मा तो सामने नहीं है तो कैसे निर्णय करना?

उत्तर:—निर्णय करना है तो निर्णाता भी है। निर्णय करनेवाला निर्णाता हर समय मौजूद है। ४५६.

❁ आत्माके सामने कुछ भी प्रसंग आ पडे तो उसको समझना। घातक प्रहार आ पडे तो मोह हो जाय, ऐसा प्रसंग आ पडे तो उस प्रसंगको समझ लेना ही घातक प्रहारसे बचना है। सावधान न होवे तो पतन हो जाय। घातक प्रहारमें मोह हो जाय तो दुःखी बनना पडे। ४५७

❁ दूसरे प्राणीको बचाने जाते हैं तो वह भी अपने लिये ही बचाते हैं। दूसरे प्राणीका घात हो रहा है, वह अपनेको बरदास्त नहीं है। इसलिये बचानेका भाव भी अपने लिये ही है। जो कोई भाव आते हैं वह अपने कारण ही आते हैं, दूसरेके लिये नहीं। ऐसा समझे तो दुःखी न बने। ४५८.

❁ प्रश्न:—वस्तुस्वरूप समझना कि अपने दोषोंको देखना?

उत्तर:—वस्तुस्वरूप समझना कहो कि अपने दोषोंको देखना कहो दोनों एक ही बात है। वस्तुस्वरूप समझना है। अपनी अखंड वस्तु तो दिखती नहीं, इसलिये उस कार्यमें बाधक अपने दोषोंको देखना है। ४५९.

❁ जैसे गाडीका इंजन है वह गाडीको आगे ले जाता है। अब वह इंजन खराब हो गया है तो क्या करेगा? पहले उसको ठीक करेगा। लक्ष तो आगे जानेका है। परंतु आगे जानेके लिये पहले तो इंजनको ठीक करेगा। ऐसे जिसको अपनी आत्मा प्राप्त करनेका लक्ष है, वह पहले अपनी समझको ठीक करेगा अर्थात् अपने दोषोंको देखेगा। ४६०.

❁ ज्ञान चिंतामणि रत्न है। हम उसका मूल्य क्यों नहीं करते? पैसेका मूल्य करना यह तो हमारा दुर्भाग्य है। ४६१.

❁ ज्यादा सूक्ष्म बातकी हमें जरूरत नहीं। हमें तो यह (वस्तुमर्यादाकी) स्थूल बात ही ठीक है, वही समझना है। ४६२.

❁ प्रत्येक विषयमें प्रयोजनभूत तत्त्वका लक्ष रहनेसे अनावश्यक वस्तु छूट जाती है। इससे मालूम होता है कि यह विवेकी आत्मा है। ४६३.

❁ अपने पास माल नहीं होवे तो दूसरेसे मांगे यह अलग बात है। परंतु यहाँ तो हमारे पास पूर्ण वस्तु पडी है, जरा भी कमी नहीं है। ऐसी वस्तु हमारे पास पडी है फिर भी गरीबी (चाहना) करते हैं। यह कैसी बात है? ४६४.

❁ हम जो मानते हैं वह ठीक है, ऐसा जीव मानते हैं। परंतु ऐसे नहीं चलता। जैसा वस्तुस्वभाव है वैसा जानना पडेगा। ४६५.

❁ शरीरको छोडकर जाना पडेगा यह तो अनिवार्य है तो अपना काम पहले कर लें। एक क्षण भी निरर्थक समय नहीं खोना। ४६६.

❁ बाह्य व्यवस्था पुण्य-पापके अनुसार होती है। अंदरकी व्यवस्था ज्ञानसे होती है। ४६७.

❁ मेरी समझ मेरे काममें आनी चाहिये। मेरी समझको मैं काममें नहीं लेता हूँ यही बडी गलती है। मेरी समझ व्यर्थ जा रही है, आत्मार्थी अपने भीतरमें यह सब देखता है। बस इतनी बात थोडेमें समझ लेना है। यह प्रयोजनभूत तत्त्व समझ लेना, बाकी तो अप्रयोजनभूत बात बहुत पडी है। ४६८.

❁ जैसे शरीरको मेरा मानते हैं, कुटुंब परिवारको अपना अपना करते हैं। वैसे भाई साब! बस एक दफे 'आत्मा मेरी' यह बात श्रद्धा-ज्ञानमें जम जाय तो संसार रहे ही नहीं यह पक्की बात है। ४६९.

❁ आत्मार्थी अपनी आत्माके सिवाय कुछ नहीं चाहते हैं। ४७०.

❁ सत्य बातको स्वीकारना ही अरिहंत सिद्ध होना है। ४७१.

❁ प्रश्न :—आत्माकी महिमा कैसे आवे ?

उत्तर :—परकी महिमा कैसे आती है? उसमें माल माना है तो उसकी महिमा आती है। अपनेको नमाला माना है इसलिये महिमा नहीं आती। अपने ज्ञानको सम्यक् प्रकारसे समझना यह ज्ञानका बहुमान है। आत्माका स्वरूप समझना ही आत्माका सन्मान है। ४७२.

❁ परमें सोलह आने नहीं परंतु एक आना स्वामित्व तो कोई सिद्ध करो! ४७३.

❁ प्रश्न :—ध्यान कब होता है ?

उत्तर :—ध्येय समझमें आनेके बाद ध्यान होता है। ४७४.

❁ ज्ञान सुदर्शन हमारे पास है उससे सब दोष नष्ट होते हैं। ४७५.

❁ देह जीर्ण होती जाती है फिर भी ज्ञान बढ़ता जाता है। इससे इन दोनोंकी भिन्नता सिद्ध होती है। देह वृद्ध होती जाती है, ज्ञान युवान बनता जाता है। ४७६.

❁ अपनी गलतीको नहीं सहन करनेवाली समझ अपना काम करती है। ४७७.

❁ सब प्रश्नोंका एक ही जवाब है कि 'समझ करो।' समझके सिवाय वह दूसरा कुछ नहीं कर सकता, समझ ही कर सकता है। ४७८.

❁ निर्विकल्प दशा कैसे होवे ? कितने काल तक टिके ? कितने कालके अंतरमें ज्ञानीको निर्विकल्पता होती है, उसमें कैसा वेदन होता है...इस तरहके अनेक प्रश्न होते...उन्होंने फरमाया...अरे ! पहले भेदविज्ञानका प्रयत्न तो करो। पीछे सब मालूम हो जायेगा। सबसे पहले भेदविज्ञान प्रगट करो। ४७९.

❁ मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे मीठी मीठी बातोंसे पेट नहीं भर जायेगा, समझना चाहिये। ४८०.

❁ मैं बाहरकी अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सुखी-दुःखी बन जाता हूँ। बाहरके प्रसंगका मेरे पर प्रभाव पड जाता है इसका क्या कारण है ? उसको गहराईसे, गंभीरतासे समझना। ४८१.

❁ विवेकको साधारण समझ रखा है परंतु विवेक ही तो आत्माका जीवन है। ४८२.

❁ मिथ्याश्रद्धा भी वज्रवत् दृढ होती है परंतु सम्यक्श्रद्धा महावज्रवत् है। मिथ्याश्रद्धाको बदलनेमें महान पुरुषार्थ है। साधारण बात नहीं है। ४८३.

❁ दर्पण स्वच्छ न हो तो उसमें अपना मुंह नहीं दिखता और पानीमें तरंग उठती हो, तो उसमें भी मुख नहीं दिखता। ऐसे अपना परिणाम मलिन है तो अपना स्वरूप नहीं दिखता है। मसोताके उपर आप कितनी भी केसर चढादो, रंग नहीं चढेगा। और मैलको साफ करके केसर चढावो, फौरन रंग चढ जावेगा। बस ! ऐसे ही यहाँ पात्रताके विषयमें समझ लेना। ४८४.

❁ प्रश्न :—मिश्री सामने हो तो ख्यालमें आती है ऐसे आत्मा कहाँ सामने है ?

उत्तर :—मिश्रीका ज्ञान किसको होता है ? मिश्रीका ज्ञान करनेवाला आत्मा प्रत्यक्ष ही है। ४८५.

❀ प्रश्न:—हमको याद नहीं रहता, उसका क्या करना ?

उत्तर:—फालतू बातोंमें उपयोगका खर्च होनेसे ज्ञान हीन हो जाता है। इसलिये व्यवहारकी बातोंमेंसे उपयोगको स्व तरफ लाना। उपयोगकी सावधानी रखनेसे ज्ञानका विकास होता है। ज्ञानका सामर्थ्य बढ़ता है। ४८६.

❀ बच्चेको भी तुच्छ नहीं समझना। किसीको भी तुच्छ समझना यह मोटी भूल है। सब भगवान हैं। ४८७.

❀ प्रश्न:—साधर्मसे कैसा व्यवहार होना चाहिये ?

उत्तर:—साधर्ममें परस्पर एक परिवारवत् व्यवहार होता है। एक दूसरेका दोष नहीं देखते, अपना ही दोष देखते हैं। ४८८.

❀ प्रश्न:—आत्माका स्वरूप समझ लिया उसका क्या प्रमाण ?

उत्तर:—अनुभव ही उसका प्रमाण है। ४८९.

❀ सम्यक्त्वके पहले वस्तुस्वरूप तो ज्ञानके सामने आ जाता है। परंतु प्रयोगमें नहीं लिया है। तो प्रयोगमें (परिणमनमें) लेनेका प्रयत्न चलता है। ४९०.

❀ अपनेको साक्षात् भगवान मानकर ही सुनना। मांगण बनकर नहीं सुनना; पूर्णताके लक्षसे सुनना। ४९१.

❀ देखो! एक अंगुली कट जाय तो दूसरी अंगुलीको असर नहीं होता। सारे शरीरमें एक अंगमें कुछ होवे तो दूसरा अंग प्रभावित नहीं होता। परंतु यह जीव पूरे शरीरका मालिक बनकर बैठा है। इसलिये एक अंगमें भी कुछ गडबड हो जाय तो तुरंत दुःखी बनता है। ४९२.

❀ अपनी आत्माका लक्ष करना, यहाँसे सद्व्यवहारकी शुरुआत होती है अपनी समझका सद्व्यवहार और अपनी समझका दुर्व्यवहार; इसके अलावा जीव कुछ नहीं कर सकता। ४९३.

❀ जीव भाई बोले सो प्रमाण है। परंतु जिह्वा बाई बोले वह प्रमाण नहीं है। उसमें तो उसका अंतःकरण देखना पडता है। ४९४.

❀ किसीका भी दोष ग्रहण नहीं करना, गुण ग्रहण करना। छिद्र ग्रहण करनेवाला सज्जन नहीं होता है। सज्जन होता है वह दूसरेका छिद्र ग्रहण नहीं करता है, उसका गुण ही ग्रहण करता है। ४९५.

❁ प्रश्न :—काम कैसे करना ?

उत्तर :—समझना। जैसा वस्तुस्वभाव है वैसा समझना वह ही उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। ४९६.

❁ आत्मार्थी जीव होता है वह तो संसारसे थका हुआ है, इसलिये आत्मामें आराम करता है। जिसको थकान लगती है वह आत्मामें जाता है। ४९७.

❁ आचार्योंने जीवोंको सावधान करनेके लिये बहुत करुणा की है। क्योंकि सम्यक्त्व होवे, फिर भी क्या केवलज्ञान थोड़े हो गया है? क्षणमें जीव गिर जाता है। तो जो कमजोर हैं उनके लिये सावधानी चाहिये। जो जोरदार है उसके लिये तो ठीक है। जैसे बच्चोंको बहुत सावधानी रखनेको कहना पडता है, बड़ोंको नहीं कहना पडता। ऐसे जो कमजोर हैं उनको सावधानी खास जरूरी है। ४९८.

❁ संतोषवृत्ति और हताषवृत्ति दोनों भयंकर राक्षस वृत्ति हैं। आत्मार्थी जीव होता है वह बड़ा विलक्षण होता है। जब तक अपना कार्य नहीं होता है तब तक आत्मार्थी जीव समझता है कि मेरेमें गलती पडी है। पर द्रव्योंका कर्तृत्व पडा है। आत्मार्थी जीव अपनी गलतियोंको ढूंढता है। मैं समझ गया हूँ ऐसा उसको कभी नहीं होता। जब तक अपना कार्य नहीं होता तब तक अपना दोष देखता है और वस्तुस्वरूप समझनेका प्रयत्न रखता है। जब तक कार्य न होवे तब तक वस्तुस्वरूप समझना। ४९९.

❁ आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है परंतु ज्ञान तो प्रत्यक्ष है न! तो ज्ञानके द्वारा आत्मा प्राप्त होता है। मैं जाणनहार हूँ ऐसा अभ्यास-आदत हो जानी चाहिये। शरीरकी कैसी भी अवस्था हो, राग हो; मगर मैं तो ज्ञायक हूँ ऐसी आदत हो जानी चाहिये। ५००.

❁ आत्मार्थीको अपनी कमी देखनेकी रुचि होती है।

प्रश्न :—क्या कमी देखनेकी रुचि होती है? कि प्रभुताकी रुचि होती है?

उत्तर :—आत्माका लक्ष हो गया है तभी तो कमी देखनेकी रुचि होती है। जिसको आत्माका लक्ष नहीं वह कमी नहीं देखते। आत्मार्थी जीव होता है वही अपनी कमियोंको देखता है। ५०१

❁ अपने घरमें सावधानी नहीं रखनी पडती। बाहर निकलनेमें बहुत सावधानी रखनी पडती है। ऐसे जब तक आत्माकी प्राप्ति नहीं हुई है तब तक तो बाहरमें है, इसलिये बहुत ही सावधानी रखनी पडती है। ५०२.

❁ सबसे पहले अंतःकरण देखनेकी पद्धति आ जानी चाहिये। बाहरमें कुछ और दिखता है और अंतरमें कुछ और ही होता है। इसलिये जो आत्मार्थी है वह सबसे पहले अपना अंतःकरण देखता है। मैं आत्मार्थी बनकर फिरता हूँ तो क्या आत्मार्थीका यह लक्षण है? ऐसे ऐसे अपने परिणामोंको पकड़....पकड़ कर देखता है। अंदरमें धोखेबाजी चलती है। अनेक अनेक प्रकारसे अपने साथ सूक्ष्म धोखेबाजी चलती है। जो आत्मार्थी है वह अपनी धोखेबाजीको पकड़ लेता है और जो आत्मार्थी नहीं, वह तो धोखेबाजीको ही समझदारी मानता है। ५०३.

❁ अंतःकरण देखनेमें अपने ज्ञानको सूक्ष्म करना पड़ता है। स्थूल ज्ञानमें अंतःकरण पकड़में नहीं आता है। आत्मार्थी ही अपने अंतःकरणके दोषोंको पकड़ सकता है। अपने दोषोंको देखने, समझने लगना यह कोई साधारण बात नहीं है। अपने दोषोंको देखना इसमें महान सज्जनता है। ५०४.

❁ अनादि कालसे अपनी आत्माको धोखा ही दे रहा है। जब ऐसा लगेगा कि अरे! मैं अपनी आत्माको ही धोखा देता हूँ तब अपनी आत्माकी धोखेसे रक्षा करेगा। धोखेसे सावधान रहेगा। धोखा देनेकी पद्धति भी कई कई प्रकारसे चल रही हैं। उनका भी बहुत प्रकार है। धोखेको जान लेवे तो निहाल हो जाय; क्योंकि धोखा ख्यालमें आ जाय तो छुटे बिना नहीं रहता। ५०५.

❁ अपने आपको दोषी समझना बड़ी बात है। अपनेको दोषी समझनेवाले आत्मार्थीका संसार-अंत निकट आ गया है। महावीरस्वामीके जीवको सिंह-पर्यायमें आत्म-भान हुवा, तब आंखोंमेंसे आंसु आ गये। अपने दोषोंका पश्चात्ताप हुवा। असलमें जब अंतःकरणसे दोषोंका स्वीकार होता है तब प्रायः आंसू आ जाते हैं। ५०६.

❁ संसारका मुख्य कारण मान है। मोक्षका कारण ज्ञान है। संसारीको मानकी मुख्यता रहेगी ही। आत्मार्थीको ज्ञानकी मुख्यता रहेगी। अज्ञानीको प्रत्येक कार्यमें मान रहेगा। मान जहाँ दुश्मनवत् लग जायेगा वहाँ ज्ञानका सन्मान हो जायेगा। मानकी बड़ी भारी चोट है। प्रत्येक कार्यमें अज्ञानीको मान रहता है। उपदेश आदि देनेमें भी मान रहता है। मानमें आत्माको स्वाहा कर देता है। ५०७.

❁ प्रश्न :—मुख्यरूपसे समझसे क्या पैदा करना है ?

उत्तर :—रुचि! रुचि पलटनेकी जरूरत है। समझका कार्य रुचि पलटना है। समझ बिना रुचि नहीं, रुचि बिना पुरुषार्थ नहीं। रुचि अनुसार पुरुषार्थ अपने आप होता ही है। रुचिके अनुसार आत्माको पलटना ही पड़ेगा। ५०८.

❁ रहस्य समझनेकी जरूरत है। समझना तो अपनेको ही पडेगा। रुचि भी अपनेको ही करनी पडेगी। हमारे तो सच्ची या झूठी अपनी समझ ही काममें आती है। दूसरा कोई कामका नहीं। ५०९.

प्रश्न :—समझ किसको कहते हैं ?

उत्तर :—समझका कार्य जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा जानना है। 'समझमें आना' और 'मात्र जानना' इसमें यह अंतर है कि समझके साथ श्रद्धा भी है, जाननेमें मात्र उघाड ज्ञान है। समझमें गंभीरता है शुष्कता नहीं है; मात्र ज्ञानमें शुष्कता है। समझमें सारे गुणोंका रस आता है। ५१०.

❁ सुननेका भाव रहता है और सुनते प्रसन्नता उठती है। यह प्रसिद्ध करता है कि यहां ज्ञान हाजिर है। ज्ञान गुप-चुप नहीं बैठा रहता है और जो गुप-चुप बैठा है, प्रसन्नता नहीं उठती तो मालूम पडता है कि यहां ज्ञान हाजिर नहीं है। ५११.

❁ प्रश्न :—आत्मार्थीका अहितसे बचनेका और हितमें रहनेका प्रयत्न रहता है न ?

उत्तर :—आत्मार्थीका अर्थ ही यह है कि जिसका लक्ष आत्माका है, तो आत्माका लक्ष होनेसे अहितसे बच जाता है। मात्र लक्ष ही बदलना है, दूसरा कुछ नहीं करना है, दूसरा सब सहज होता है। जैसे शरीरका लक्ष है तो शरीरकी रक्षा आदिका भाव रहता ही है, कुछ कहना नहीं पडता है। ऐसे आत्माका लक्ष है तो आत्माकी रक्षा करते ही हैं। शरीरकी हिंसा होती हो और आत्माकी हिंसा होती हो तो आत्मार्थी आत्माकी हिंसासे बचनेका प्रयत्न करेगा। जिसको शरीरमें अपनापन है वह आत्माका कुछ भी हो, वह नहीं देखेगा, शरीरकी रक्षा कैसे हो यही देखेगा। यह तो कसौटी है, आप देख लेना। ५१२.

❁ प्रश्न :—मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ ऐसा विकल्प करते हैं तो फिर आदत हो जाती है। फिर तो मैं ज्ञाता हूँ, ऐसा लग जाता है ?

उत्तर :—उसको समझना चाहिये कि यह वास्तविक ज्ञाता-दृष्टापना कहाँ है। वास्तविक ज्ञाता-दृष्टापनेमें तो रागसे भिन्नताका स्वानुभव प्रमाण होता है। यह तो कल्पना है, वास्तविक ज्ञाता दृष्टापना नहीं है। परंतु पहले तो ऐसे ही होता है उसको समझना चाहिये। ५१३.

❁ अपने द्रव्यकी प्राप्ति करना यह पहला लाभ है। (चारित्र पीछे होता है) ५१४.

❁ आत्मा गरीब है क्या ? जो दूसरेकी अपेक्षा करे। गरीब है नहीं, परंतु पर्यायमें स्वयं गरीब बनता है, तो जो स्वयं गरीब बने उसकी गरीबी कौन मिटावे ? ५१५.

❁ शरीरका डाक्टर शरीर है। परमाणुका डाक्टर परमाणु है। कैंसर आदि तो हम कहते हैं, परमाणु तो कहता है कि अरे! यह तो हमारा परिणमन है। वह परमाणु तो हमें कहते हैं कि हम तो कुछ समझते नहीं, तुम तो समझदार हो; फिर भी हमारे पीछे क्यों मूर्ख बनते हो? ५१६.

❁ विकल्पोंसे पूरा थक जावे तब आत्मामें जा सकता है। ५१७.

❁ ज्ञानकी बड़ी भारी महिमा है। हर समय ज्ञानकी ही मुख्यता रहती है। व्यापार आदिमें भी ज्ञानका ही कार्य रहता है। सर्वत्र ज्ञानका ही कार्य रहता है। फिर भी जीवको ज्ञानकी महिमा नहीं आती है। ५१८.

❁ पर वस्तु अपनी होती नहीं, फिर भी यह जीव परको अपनाता है, अपनापन नहीं छोड़ता; यह कैसी बात है? अपनेको अपनालो। बस! फिर रक्षा करनेकी कोई भी चिंता नहीं। दूसरा काम सब सहज ही होगा। बाहरसे दूसरेकी लडकीको अपना लिया, फिर तो उसकी रक्षा आदि सब करता ही है। ऐसे अपनी आत्माको एक दफे अपनालो। अंतःकरण तो एक ही है, तो स्व-पर दोनोंको नहीं अपना सकते। एक म्यानमें दो तलवार नहीं रहेंगी। ५१९.

❁ शरीर अपना नहीं है, उसमेंसे अपनापन गया...फिर तो शरीरमें कैसी भी गडबड हो तो भी दुःखी बनना गया और शरीर अनुकूल होते सुखी बनना नहीं रहा। कैसी सुंदर बात! ५२०.

❁ निमित्त बिना कार्य नहीं होता, कुंभार बिना घडा नहीं बनता। तब तो हमको चलनेके लिये धर्म द्रव्यको हाथ जोड़ने पड़ेंगे। ठहरनेके लिये अधर्म द्रव्यको हाथ जोड़ने पड़ेंगे। रहनेके लिये आकाशसे हाथ जोड़ने पड़ेंगे इत्यादि हमारे तो सब जड-पुद्गलकी खुशामद ही करती रहनी पड़ेगी। ५२१.

❁ अपनी आत्माको समझना ही अपने आपको संभालना है। जैसे सर्प दिखते ही अपनेको संभालता है, ऐसे समझमें आते ही अपने आपको संभालता है। अपने अंतरमें अपनी समझ ही उल्टी पडी है तो बाहरमें चाहे जैसा करो परंतु अपना कार्य कैसे होवे? ५२२.

❁ एक चींटी भी काट लेवे, मक्खी कपडेमें घुस जावे, तो भी निभा नहीं सकते। कपडे उतार देते हैं। ऐसे आत्मार्थीको दोष बरदास्त नहीं होते हैं। दोष देखनेमें भी वस्तुस्वरूपका ज्ञान होना चाहिये, तभी दोष देख सकते हैं। ५२३.

❀ कोई सेठ ऐसा हो कि चाहे जितना रुपिया ले जावो! चाहे सो व्याज दो या व्याज न दो। रकम भी चाहे तब वापिस दो, वह सेठ कैसा होगा? ऐसे आत्माकी सामर्थ्य अद्भुत है। ५२४.

❀ अज्ञानीको द्रव्य प्रत्यक्ष नहीं है। दोष तो सामने प्रत्यक्ष मौजूद हैं। शरीरमें अपनापन, परका कर्तृत्व अपने सामने मौजूद हैं, उनको नहीं समझे तब तक आत्मदृष्टि नहीं होगी। ५२५.

❀ अंधकार है तो सूर्य नहीं, सूर्य है तो अंधकार नहीं। देहादिमें अपनापन है तो समझ ही यथार्थ नहीं। समझ यथार्थ है तो देहादिमें अपनापन नहीं होता। अपनी समझ कैसी है यह समझो! पहले अंधकार है उसको अंधकार रूप समझो। मैं स्वयं प्रकाशका घातकरूप तो नहीं हूँ? यह पहले समझो! जिसको अपनी आत्माका हित करना है, उसको अपने सूक्ष्म दोषोंको समझना होगा। मैं अखंड हूँ परिपूर्ण हूँ ऐसी कल्पना मात्रसे नहीं चलेगा। ५२६.

❀ पहले अपने अंतःकरणका पता लगाओ। अंतःकरणको टटोलो। फिर तो ज्ञान अपने आप अपना मार्ग बनाने लगेगा। अपनी आत्मा ही मदद करने लगेगी। अभी मैं योग्य नहीं हूँ, मुझे मेरा ज्ञान नहीं है। मैं कर्ता बनता हूँ....पहले ऐसा लगेगा। ५२७.

❀ आज होवे तो कल नहीं करना। आयुका भरोसा नहीं है। इसलिये इस कार्यमें क्षणका भी प्रमाद नहीं करना। प्रमादसे अपना कार्य बिगड जाता है इसलिये बहुत ही सावधानी रखना। रुकनेके कारण बहुत हैं। कभी कैसा कारण उपस्थित हो जाता है तो कभी कैसा और यह पंचमकाल है तो अटकनेके कारण अनेक मिल जाते हैं तो कहीं पर भी रुक नहीं जाना। ५२८.

❀ ज्ञान होना चाहिये था ज्ञाता और बन गया है कर्ता। ५२९.

❀ जैसे देहादि दृश्य हैं वैसे विकल्पादि दृश्य हैं। ५३०.

❀ स्वप्नमें देखा हुवा जागृत होते ही फौरन ख्यालमें आ जाता है कि वह झूठा था। ऐसे ज्ञानमें सत्य आते ही फौरन समझ पलट जाती है। ५३१.

❀ समझसे बढकर कोई काम नहीं लगता, सारे विश्वका कार्य शून्यवत् लगता है। ५३२

❀ रस्सीसे कूवेका पत्थर भी धीमे धीमे घिस जाता है। ऐसे दिन-रातके इस अभ्याससे-संस्कारसे अज्ञान टूट जाता है। ५३३.

❀ जो व्यक्ति रात-दिन अपने अंतरमें धगश रखता है वह जरूर कार्य कर लेता है। ५३४.

- ❁ समझसे रुचि होती है और रुचिसे कार्य होता है। ५३५.
- ❁ जीवको अपने गुणोंकी प्रसिद्धि करना पसंद है। अपने दोषोंको प्रसिद्ध करना पसंद नहीं है। परंतु वास्तवमें अपने दोषोंको प्रसिद्ध करना चाहिये। अपने पासमें पांच करोड़ रुपिया होवे तो प्रसिद्ध नहीं करते अंदरमें समझता है। ऐसे अपने गुणोंकी प्रसिद्धि नहीं करनी चाहिये; अपने दोषोंको देखना चाहिये और उनकी प्रसिद्धि करनी चाहिये। ५३६.
- ❁ पूरे मार्गमें कांटों ही कांटोंका समूह पडा हो तो उसको दूर किये बिना आगे कैसे बढेगा ? पहले तो उसको दूर करना पडता है तब ही आगे जा सकते हैं। ऐसे देहादिमें अपनापन पडा है, कर्ता बना फिरता है वह द्रव्यदृष्टि कैसे करेगा ? जो अपना दोष देखेगा कि अरे ! मैं तो देहादिको अपना मानता फिरता हूँ, परका कर्ता बना बैठा हूँ ऐसे दोषोंको समझेगा तब ही आत्माके सन्मुख जा सकता है। ५३७.
- प्रश्न :—देहादिमें अपनापन पडा है, क्या वह द्रव्यदृष्टिके बिना छूट सकेगा ?
- उत्तर :—यहाँ छोडनेकी बात नहीं है। पहले अपने दोषोंको समझनेकी बात है। छोडने करनेका तूफान ही यहा नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि पहले समझो ! ५३८.
- ❁ प्रश्न :—जिज्ञासुका प्रयत्न वस्तुस्वरूप समझनेका चलता है कि एकाग्रताका चलता है ?
- उत्तर :—स्वरूप समझे बिना एकाग्र किसमें होंगे ? पहले तो स्वरूप ही समझना है। स्वरूप समझते समझते ज्ञानमें यथार्थता होते ही विकल्प टूट जाता है। ५३९.
- ❁ जिस समझने परद्रव्यको अपना मान रखा है वह समझ अपनी वैरण है। समझ अपनी आत्माको अपना माने तो वह समझ अनुकूल है। ५४०.
- ❁ अपनी पद्धति ही अपनेको बाधक है। यह समझना चाहिये। ५४१.
- ❁ आत्माका ऐसा स्वभाव है कि बिना व्यक्त हुवे प्रमाण मानता ही नहीं। अखंड द्रव्यको पर्यायमें व्यक्त हुवे बिना प्रमाण मानता ही नहीं। अज्ञानमें भी व्यक्त मानता है। ज्ञान हुवे बाद भी व्यक्त होनेसे मानता है। पहले उल्टा व्यक्त था, पीछे सुल्टा व्यक्त है। (अज्ञानमें विकार जो व्यक्त था उसे अपना मानता था, ज्ञानी होनेपर स्वभाव जो व्यक्त हुवा उसको अपना मानता है।) बिना प्रमाण जो मान बैठता है वह धोखेमें है। परंतु प्रगट (पर्याय)का लक्ष नहीं होना चाहिये। ५४२.
- ❁ अखंड द्रव्यका जोर ही दोषोंका निरीक्षण करता है। ५४३.

❁ दोषोंका स्वरूप समझनेमें भी 'मैं हूँ', अपने स्वरूपको समझनेमें भी 'मैं हूँ।' विकल्पका स्वरूप समझनेमें भी 'मैं हूँ'; सर्वत्र 'मैं हूँ'। ५४४.

❁ ज्ञानियोंके कथनको नहीं समझना यह अविनय है और समझना यह विनय है। ५४५.

❁ देहादिमें अपनेपनकी कल्पनाके सामने—मुकाबलेमें अपनी आत्मामें अपनेपनकी दृढ कल्पना करना। यह तो एक प्रकारका युद्ध है। उसमें देहादिमें अपनेपनकी कल्पनाको टूटना पड़ेगा। एक बार मुकाबला करके तो देखो। ५४६.

❁ देहादि प्रत्ये अपनापन पडा है। इससे अधिक आत्मामें अपनेपनकी दृढता होगी तब ही वह अपनापन टूटेगा, साधारण प्रयत्नसे नहीं टूटेगा। ५४७.

❁ अंतःकरण मधुर होनेसे कार्य होता है। मधुर अंतःकरणके सामने विरोध भी मिट जाता है। ५४८.

❁ आपको जो बात प्रत्यक्ष हो गई, उसके विषयमें कोई चाहे कैसा भी कह देवे आप उसकी मानेंगे नहीं। मिश्री मीठी है ऐसा कौनसे शास्त्रमें लिखा है जो मानते हैं या किसीके कहनेसे मानते हैं? कि स्वयं चखकर मीठी मानते हैं? स्वयंने चख लिया तो दूसरोंके कहनेकी अपेक्षा ही नहीं रहती है। ऐसा आत्माके विषयमें समझना। ५४९.

❁ ज्ञानकी बड़ी भारी महिमा है, आत्मामें कार्य करनेवाला एक ज्ञान ही है। ज्ञान जागृत हो जायेगा तो फिर अंधेर नहीं चलेगा। ज्ञान समझनेमें लग जावे तो बाहरका उपयोग रुक जावे और अपने अंदरका काम चालू हो जावे। ज्ञान अपना सन्मान करेगा तो दोष टिक सकते ही नहीं, दोष निकलने लगते हैं और ज्ञान गलतियोंका सन्मान करेगा तो ज्ञान अज्ञानरूप हो जायेगा। यही ज्ञान केवलज्ञानरूप हो जानेवाला है ज्ञानकी बड़ी भारी महिमा है, हंसते हंसते सम्मत होवे, यह ऐसी बात है। ५५०.

❁ आत्मार्थीको ज्यादा एकांत काम करनेके लिये चाहिये। ५५१.

❁ छ डिग्री बुखारमेंसे पाँच डिग्री बुखार होवे वह सुधार कहलाता है। उसी प्रकार विपरीतता कम होना भी सुधार है। बुखार एकदम कम हो जाय तो भी सावधान रहता है उसी प्रकार यहाँ भी अंत तक सावधान रहना होता है। ५५२.

❁ ज्ञानियोंको विरोधियोंके प्रति करुणा रहती है, द्वेष नहीं होता। यह खास ज्ञानियोंका लक्षण है। ५५३.

❀ प्रश्न :—आत्माकी प्राप्ति ज्ञानसे होती है या श्रद्धासे होती है ?

उत्तर :—ज्ञान विवेक करता है न! बाकी तो दोनों ही साथ है। श्रद्धा सच्ची नहीं हुई तो ज्ञान भी जुग है और ज्ञान बिना श्रद्धा सच्ची होती ही नहीं। इसलिये दोनों साथ ही है और समझनेवाला-विवेक करनेवाला तो ज्ञान ही है। ५५४.

❀ विश्वके सब पदार्थ अपने अपनेमें मर्यादित हैं, अमर्यादित भी मर्यादित हैं। ५५५.



समझकी अपार महिमा

[अटल-विश्वमर्यादा. पद-विभागमेंसे साभार उद्धृत]

(१) मंगलवर्धन जिनवाणी आईजी !

मंगलवर्धन जिनवाणी आईजी, आनन्दवर्धन प्रभुवाणी आईजी॥टेका॥
करता परका बन रया जी, तन-धन-जन अपनाय,
कर्तृत्वमद बेहद छायो जी, कर्तृत्वमद बेहद छायो जी॥१॥
लाई तो राग न आवती जी, धक्केसे द्वेष न जाय,
समझ निज व्यर्थ गमावे जी, समझ निज व्यर्थ गमावे जी॥२॥
पर मुँह तकता मोहमें जी, माने छै सुख पर मांय,
दुखद वर्धन दुरमती छावे जी, दुखद वर्धन दुरमती छावे जी॥३॥
वस्तु कोई तो ना कहै जी, जीव तूँ मोह रचाय,
स्वयं जीव मोह रचावे जी, स्वयं जीव दुःख मचावे जी॥४॥
“होना है वैसे ही होय छै जी”, कौन किसे पलटाय,
मर्यादा स्वपर अंतस ल्यावोजी, मर्यादा स्वपर अंतस ल्यावोजी॥५॥
समझ अपनी निज कामकी जी, पर द्रव्य नहीं आवे काम,
समझ निज काममें लेवो जी, आत्म निज काममें लेवोजी॥६॥
स्वपर ज्ञायक जीव छै जी, पर अपनाना सर्व छोड़,
ज्ञायकघन निजघर आवे जी, आनन्दघन निजघर आवे जी॥७॥

(२) अहो अब तो समझ चेतन !

अहो चेतन समय पाकर, कहो! तुमने किया क्या है!
अहो कुछ लाभ जीवनका, कहो! तुमने लिया क्या है॥१॥
पड़ा क्यों देहके पीछे, वहाँ अपना धरा क्या है!
वृथा दुनियाके भोगोंमें, जीवन खोने लगा क्या है॥२॥

व्यवस्थितकी व्यवस्थाको, फिरानेमें लगा क्या है!
 अहो फिरते फिरानेमें, कहो! कोई फिरा क्या है॥३॥
 कभी तुमने नियम जगका, कहो! कुछ ज्ञान किया क्या है!
 अहो अब तो समझ चेतन, वृथा परमें लगा क्या है॥४॥

(३) धन्य कहान गुरुजी!

धन्य वीर प्रभुजी! ज्ञान जगतमें कीनो च्यानणों।
 धन्य कहान गुरुजी! आज भारतमें कीनो च्यानणों॥टेका॥
 स्व पर भेद विज्ञान प्रगट कर सत्य मार्ग बतलाया!
 सत् स्वतंत्रता घोषित करके विश्व नियम दर्शाया जी, धन्य०॥१॥
 उपादान और निमित्त तत्त्वका असली भेद सुझाया!
 अस्ति नास्तिकी रीति खोलकर अनेकांत समझाया जी, धन्य०॥२॥
 उपादानकी सहज गति है सहज समझमें आवे!
 निमित्त सहज ही हाजिर होवे फेरफार नहीं थावे जी, धन्य०॥३॥
 ज्ञान किसीका कर्ता नहीं है कारण भी नहीं ज्ञान!
 कर्ता बन ज्ञातापन खोया हुआ ज्ञान अज्ञान जी, धन्य०॥४॥
 कार्य कारणका भेद नहीं है द्रव्य दृष्टिके मांय!
 सहज स्वभावे क्रमबद्ध होकर कार्य कारणके मांय जी, धन्य०॥५॥
 चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी प्राप्ति!
 ऐसे अपने आत्म विभवमें अव्यावाध विश्रान्ति जी, धन्य०॥६॥

(४) समझण रो अवसर आयो आतमा!

नां पर कोई बन्या आपरा, नां पर आया काम!
 नां परका कुछ कर सक्याजी भाई! पर ही पर क्यों ध्यायजी!
 समझणरो अवसर! समझणरो अवसर आयो आतमा॥१॥
 निज निज कार्य करे निरन्तर, कोई निकम्मा नांय!
 अपना कार्य छोड़ अन्यमें! क्या करने कोई जाय जी!
 समझणरो अवसर! समझणरो अवसर आयो आतमा॥२॥

विश्व मर्यादा परख स्वयं ही, चित चेतनमें ल्याय !
 आनन्दधन तो स्वयं आत्मा ! निश्चय शांति थाय जी !
 समझणरो अवसर ! समझणरो अवसर आयो आत्मा ॥३॥

(५) विश्व-मर्यादा अटल है !

ज्ञान स्वयं महावीर है, आत्म सुदर्शन धार।
 चिदानन्दधन आप है, अपनी ओर निहार ॥१॥
 विश्वमर्यादा अटल है, नहीं कोई पलटनहार।
 ज्ञाता बन बन सुखी थया, आपा समझनहार ॥२॥
 ना कोई परका कर सके, ना परसे कोई होय।
 स्वयं किये बिन ना रहे, विश्व नियम यह जोय ॥३॥
 अपना सब कुछ आपमें, परका सब पर मांय।
 देख पराई परिणति, मत उसमें लपटाय ॥४॥
 शरणार्थी पर-लक्ष है, करे राग उपयोग।
 पुरुषार्थी स्व-लक्ष है, करे ज्ञान उपयोग ॥५॥
 खुद तो निमित्त बनावता, परसे संबंध रचाय।
 दोष निमित्तका मानता, कुछ भी सूझे नांय ॥६॥
 नदी नीरवत् अज्ञधन, हर कोई हर लेत।
 कूप नीरवत् विज्ञधन, गुण बिन बूँद न देत ॥७॥
 शान्ति निज कर्तव्य है, लक्ष रखो निज मांय।
 बाहिर अपना क्या धरा, अपना अपने मांय ॥८॥
 समझ स्वयं बैरन बनी, पर ही पर दरकार।
 समझ स्वयं सम्यक् बनी, कर आत्म-सत्कार ॥९॥

(६) अंतःकरण-संशोधन !

अरे ! तुम ईश बनते हो, कि जड़के भक्त बनते हो !
 अरे ! तुम ज्ञान करते हो, कि कर्तापना दिखाते हो ॥१॥

अरे! तुम न्याय करते हो, कि अन्धाधुन्ध मचाते हो!
 अरे! तुम हित करते हो, कि मिथ्या ढोंग रचाते हो॥२॥
 अरे! तुम वीर बनते हो, कि दुःखसे थरथराते हो!
 अरे! तुम त्याग करते हो, कि सम्यक् दान करते हो॥३॥

(७) वस्तु स्वभाव समझ नहीं पाता !

वस्तु स्वभाव समझ नहीं पाता, कर्ता धरता बन जाता।
 स्वको भूलकर पर अपनाता, मिथ्यापनका यह नाता॥१॥
 सहज स्वभाव समझमें आता, करना धरना मिट जाता।
 स्व सो स्व और पर सो पर है, सम्यक्पनका यह नाता॥२॥
 रोके रुकता लाये आता, धक्केसे जाता है कौन।
 अपनी अपनी सहज गुफामें, सभी द्रव्य हैं परसे मौन॥३॥

(८) सांभल ओ ज्ञाता अब तो सन्मुख आय !

सारे जगतकी सहू अनुकूलता, आत्म जाणे जी फन्द।
 चेतन तो पुद्गलके सुन्दर राज्यमें, कभीय न पाय्यो आनन्द,
 सांभल ओ ज्ञाता अब तो सन्मुख आय॥१॥
 परके पीछे तो निशदिन झूरता, जीवन विगड्यां जाय।
 ज्ञाता समझणरो निज काम छै, आपो अपनाया सुख थाय,
 सांभल ओ ज्ञाता अब तो सन्मुख आय॥२॥

(९) अयि आत्मन् ! ज्ञानामृत आनन्दघनजी !

अयि आत्मन् ज्ञानामृत, आनन्दघनजी, आनन्दघनजी,
 स्वपरभाव पिछान, परिहर पर-शरणम्-२॥१॥
 विश्व व्यवस्थित सत् छै, कोई नहीं करैजी, कोई नहीं करैजी,
 द्रव्य नियमसर होय, परिहर पर-शरणम्-२॥२॥
 अपनाया स्व ना हुवै, कोई पर-द्रव्यजी, कोई पर-द्रव्यजी,
 मिथ्या मोटो पाप, परिहर पर-शरणम्-२॥३॥

होना है सो होय सी, कुछ नहीं चलैजी, कुछ नहीं चलैजी,
 यह निश्चय दृढ जान, परिहर पर-शरणम्-२ ॥४॥
 ज्ञान ही नित अरिहंत छै, चेतन सिद्धजी, चेतन सिद्धजी,
 शुद्ध उपयोग सुझाव, परिहर पर-शरणम्-२ ॥५॥

ॐ

(१०) सम्यक् राह !

शान्ति समरमें ज्ञान राग बिच, भेद विज्ञान प्रथम होगा।
 ज्ञान सूर्यका आये रागसे, ज्ञेय संबंध रखना होगा ॥
 आत्म द्रव्यके लक्ष मात्रसे, रत्नत्रय धरना होगा।
 होगी निश्चय पूर्ण शान्ति, यह भाव सदा भरना होगा ॥१॥
 शान्ति समरमें कभी भूल कर, धैर्य नहीं खोना होगा।
 वज्र-प्रहार भले नित प्रति हो, दृढ जीवी होना होगा ॥
 आत्म कार्यकी सुन्दर गठडी, चित पर रख बढना होगा।
 होगी निश्चय जीत आत्मकी, यही भाव भरना होगा ॥२॥

ॐ

(११) ज्ञान-सूर्य उद्योत है !

ज्ञान-सूर्य उद्योत है, ज्ञायक सुप्रभात।
 चेतो कृतकृत्य आतमा, चिदानन्द साक्षात् ॥१॥
 जग परिणति नियमित सदा, फेर सके नहीं कोय।
 निज ज्ञप्तिके जोरसे, निश्चय अरिहंत होय ॥२॥
 ज्ञायकमय निजरूप है, स्पर्शमय जड़ रूप।
 मान स्पर्शमय दुःखी बन्या, ज्ञायक आनन्दरूप ॥३॥
 सद्दिवेक जब होत है, नष्ट होत है पाप।
 चेते स्वयं आत्मा, सम्भले आपो आप ॥४॥

ॐ

(१२) समझके जोरसे जी !

समझके जोरसे जी, आत्म दशा औरकी और २॥टेका॥
 होना है सो होय नियमसर, चले नहीं कछु जोर २,
 राग-द्वेषके कर्तापनसे, मच रही घोरम् घोर! समझ०॥१॥
 विश्व व्यवस्थित आवे समझमें, मर्यादित चहुं ओर २,
 स्व-वश शांति आवे ज्ञानमें, परवश दुःख है घोर! समझ०॥२॥
 स्व-परका स्वरूप समझकर, करो आत्म पर गौर २,
 सम्यक् दर्शन ज्ञान! चरणसे, बढे शांतिका जोर! समझ०॥३॥

(१३) सावधान !

परके भरोसे जीवन जाय छै! समज्यां बिन भोलौ॥टेका॥
 मालिक परको बन डोले विश्वमें; छायो छै झोलो।
 कुण सो दिखे छै द्रव्य फालतू; जीवां थे बोलो॥१॥
 वस्तु व्यवस्थित स्वयम् होय छै; क्योँ इत उत डोलौ।
 मतना लोपो थे आत्मकारने; क्योँ विष-रस घोलौ॥२॥
 कौन दीखे छै जगमें आपरो; चेतन दृग खोलौ।
 अब तो संभालो निज द्रव्यने; आनन्द रस घोलौ॥३॥

(१४) चेतन क्योँ पर अपनाता है ?

चेतन क्योँ पर अपनाता है, आनन्दधन तूं खुद ज्ञाता है॥टेका॥
 ज्ञाता क्योँ करता बनता है, खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है,
 सब अपनी धुनमें धुनता है, तब कौन जगतमें सुनता है॥१॥
 परका तूं कर्ता बनता है, कर तो कुछ भी नहीं सकता है,
 यह विश्व नियमसे चलता है, इसमें नहीं धक्का चलता है॥२॥
 जो परका असर मनाता है, वह धोखा निश्चय खाता है,
 जब जबरनका विष जाता है, तब सहज समझमें आता है॥३॥

उठ चेत जरा क्यों सोता है, फिर देख ज्ञान क्या होता है,
 क्यों परका बोझ ढोता है, क्यों जीवन अपना खोता है॥४॥
 जब द्रव्य दरवारे आता है, तब जीवन ज्योति जगाता है,
 सुखधाम चिन्तामणि ज्ञाता है, आनन्द अनुभव नित पाता है॥५॥

(१५) समझ तुम्हारी ठीक नहीं

समझ तुम्हारी ठीक नहीं, श्रद्धान तुम्हारा ठीक नहीं,
 आचरण तुम्हारा ठीक नहीं, कल्याण तुम्हारा कैसे हो।
 कल्याण तुम्हारा कैसे हो, उद्धार तुम्हारा कैसे हो॥१॥
 स्वपरका कुछ भान नहीं, तव आत्म हितका ध्यान नहीं,
 मैं मैं तूँ तूँका ध्यान रहे, सत् ध्यान तुम्हारा कैसे हो।
 कल्याण तुम्हारा कैसे हो, उद्धार तुम्हारा कैसे हो॥२॥
 परमें अपनापन दृढ जहाँ, आपा देखनका समय कहाँ,
 डूबेको अगम भवोदधिमें, बिन ज्ञान सहारा कैसे हो।
 कल्याण तुम्हारा कैसे हो, उद्धार तुम्हारा कैसे हो॥३॥
 चेतन चिन्तामणि पाकरके, खोते हो काग उडा करके,
 जडमें ही जीवन खोनेसे, दुःख दूर तुम्हारा कैसे हो।
 कल्याण तुम्हारा कैसे हो, उद्धार तुम्हारा कैसे हो॥४॥

(१६) स्वतः परिणमति वस्तुके क्यों कर्ता बनते जाते हो ?

स्वतः परिणमति वस्तुके, क्यों कर्ता बनते जाते हो।
 कुछ समझ नहीं आती तुमको, निःसत्त्व बने ही जाते हो॥१॥
 अरे! कौन निकम्मा जगमें है, जो परका करने जाते हो।
 सब अपने अन्दर रमते हैं, तब किस विध करण रचाते हो॥२॥
 वस्तुकी मालिक वस्तु है, जो मालिक है वही कर्ता है।
 फिर मालिकके मालिक बनकर, क्यों नीति न्याय गमाते हो॥३॥

जो है सो स्वयं परिणमता है, वह नहीं किसीसे टलता है।
यह माने बिन कल्याण नहीं, कोई कैसे ही कुछ करता हो ॥४॥

(१७) द्रव्य बना है, भाव बना है !

द्रव्य बना है, भाव बना है, होना भी साथ बना है।
बने बनाये जड चेतनमें, अन्य क्या करने जावे जी,
ज्ञानेश्वर ! अन्य क्या करने जावे ॥१॥

इच्छा माफिक विश्व करणकी, बेहद हाय मचावे।
कौन सुणे झूटे क्रंदनको, व्यर्थ ही धूम मचावे जी,
ज्ञानेश्वर ! व्यर्थ ही धूम मचावे ॥२॥

बडप्पन मदरी लाय लगी है, उलटी तो रीति सुहावे।
सुखद रीति तो विषवत् लागे, दुःख ही दुःख उपजावे जी,
ज्ञानेश्वर ! दुःख ही दुःख उपजावे ॥३॥

मनसे गुप्त, वचनसे गुप्त, कायासे गुप्त ही पावे।
गुप्त गुफामें आय बिराजे, निर्भय आनन्द पावे जी,
ज्ञानेश्वर ! निर्भय आनन्द पावे ॥४॥

(१८) होता विश्व स्वयं परिणाम !

होता विश्व स्वयं परिणाम, कर्ता बनना दुःखका धाम ॥टेका॥

तू नहीं करता परका काम, पर तेरे नहीं आता काम।
तूँ तेरा ही करता काम, तूँ तेरे ही आता काम ॥१॥

‘है’ बिना नहीं ‘नां’का काम, ‘नां’ बिना नहीं ‘है’का काम।
‘है’ नहीं करता ‘नां’का काम, ‘नां’ नहीं करता ‘है’का काम ॥२॥

सत् शक्ति है स्वयं महान, जड चेतन दोनों भगवान।
क्रमबद्ध करते अपना काम, दायें बायें पैर समान ॥३॥

निजको निज परको पर जान, निज महिमामें रमता ज्ञान।
ज्ञाता दृष्टा सहज महान, चित् ज्योति सुख ज्ञान निधान ॥४॥

(१९) मिथ्या-मद !

परको मालिक बनतो आयो, परमें जीव लगायो।
 संकल्प विकल्प करतो आयो, मिथ्या मदमें छायो॥१॥
 बरजोरी जग होतो आयो, रोकन नहीं कोई पायो।
 कभी नहीं कोई निकलन पायो, कैसे तो परमें छायो॥२॥
 अपने काम नित आप ही आयो, विश्व काम नहीं आयो।
 विश्व नियम जब आयो समझमें, आत्म महासुख पायो॥३॥
 ज्ञायक जीवन आयो ज्ञानमें, ज्ञान महासुख पायो।
 सम्यक् दर्शन पायो वीरवर, आत्म दर्शन पायो॥४॥
 उल्लसित जीवन आयो आज दिन, हर्षित जीवन आयो।
 सुन्दर जीवन आयो आज दिन, आनन्द मंगल छायो॥५॥

(२०) मेरी आत्माकी मूक पुकार है !

कहा मानले ओ मेरे भैया, शांतिजीवन बनाना अब सार है,
 तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्माकी मूक पुकार है॥टेक॥
 मान बुरा है त्याग सजन जो, विपद करे और बोध हरे,
 चित्त प्रसन्नता सार सजन जो, विपद हरे और मोद भरे,
 नीति तजनेमें तेरी ही हार है, वाणी जिनवरकी हितकार है।
 तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्माकी मूक पुकार है॥१॥
 समय बडा अनमोल सजन जो, इधर फिरे तो उधर फिरे,
 कर नहीं पाया मूल्य सजन जो, समय गया ना हाथ लगे,
 गुप्त शांतिकी यहाँ भरमार है, इनको समझे तो बेडा पार है।
 तूं बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्माकी मूक पुकार है॥२॥
 इस जीवनको सफल बना, यह पुण्य योगसे प्राप्त हुआ,
 बातोंसे नहीं काम सजन, कर्तव्य सामने खडा हुआ,

सुख शांतिका ये ही द्वार है, शिक्षा दैनिक महा हितकार है।
तू बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्माकी मूक पुकार है॥३॥

(२१) वस्तु मर्यादा विश्व प्राण है !

परका मालिक बन कर ज्ञायक, जडका मालिक बनकर ज्ञायक।
हंस-हंस परमें जाय, हो चेतन जी! हंस-हंस जडमें जाय॥१॥
देह विरुद्धता पसंद नहीं है, विश्व विरुद्धता पसंद नहीं है।
किस विध पलटे देह, हो चेतनजी! किस विध पलटे विश्व॥२॥
विश्व पसंदका विषय नहीं है, तेरी पसंदका मूल्य नहीं है।
समझो द्रव्य स्वभाव, हो चेतन जी! समझो विश्व स्वभाव॥३॥
वस्तु मर्यादा विश्व प्राण है, द्रव्य मर्यादा द्रव्य प्राण है।
नहीं कोई उलटणहार, हो चेतन जी! नहीं कोई पलटणहार॥४॥

(२२) धक्क और लक्ष !

पुद्गल सुखकी धक्क है जिनको, आत्म सुखकी क्या दरकार!
परमें स्वकी लत होनेसे, हालत वर्ते आत्म विकार॥
कल्पित सुखमें तन्मय होकर, करते शांतिका संहार!
संकल्प विकल्प करते रहते, रचते भावी दुःख अपार॥१॥
आनन्दघनका लक्ष है जिनको, कल्पित सुखकी क्या दरकार!
स्व परका स्वरूप समझ वे, करते निज आत्म सत्कार॥
हितमय जीवन सबका चाहते, खुद बनते आनन्द भण्डार!
ऐसे कृतकृत्य गुणी जनोंको, सम्यक् वन्दन बारम्बार॥२॥

(२३) जगत स्वभावसे आता !

जगत स्वभावसे आता, जगत स्वभावसे जाता।
जगतका बना रहे ज्ञाता, जगत तुझ काम नहीं आता॥१॥

बाह्य तेरा कुछ नहीं है, क्यों वृथा रोता फिरे।
 बस किसीके कोई नहीं है, दुःख ढोता क्यों फिरे ॥ जगत० ॥२॥
 बाह्य सब आवागमन, यह पूर्व कृतका कार्य है।
 बनके कर्ता हक जमाना, अज्ञताका कार्य है ॥ जगत० ॥३॥
 तेरा समझना काम है, कोई द्रव्य फिराना है नहीं।
 आत्म समझना काम है, कोई जग फिराना है नहीं ॥ जगत० ॥४॥



(२४) अब दुःख रचनो छोड द्यो जी !

अब दुःख रचनो छोड द्यो जी ॥ टेक ॥
 अपना तो सब कुछ आपमें जी भाई, परका तो सब परमांय।
 देख पराई परिणति जी भाई, मत उसमें लपटाय ॥ अब ॥१॥
 अज्ञ निकम्मा आप छै जी भाई, विश्व निकम्मा जाण।
 करना तो परका छा रह्या जी भाई, स्व परसे बेभान ॥ अब ॥२॥
 मिथ्यात्व मद विकराल छै जी भाई, दुःख ही दुःख उपजाय।
 मालिक जडमें फंस रह्या जी भाई, कुछ भी तो सुझे नांय ॥ अब ॥३॥
 ल्याये तो कोई नहीं आवतां जी भाई, धक्केसे नहीं कोई जाय।
 जबराई जगमें ना चले जी भाई, समझो सम्यक् न्याय ॥ अब ॥४॥



(२५) शांति समरमें !

शांति समरमें समझ समझकर, राग द्वेष तजना होगा।
 मिथ्या भ्रान्तिके दुःखद फांसमें, कभी नहीं फंसना होगा ॥१॥
 चिदानन्द वंशज गुणधारी, हित चित नित रचना होगा।
 होगी निश्चय पूर्ण शांति, यह भाव सदा भरना होगा ॥२॥



(२६) म्हारो आतम रस है प्यारो !

जब निज निज करता दीखे, द्रव्य भिन्न समझनो सीखे।
 तब आतम निर्मल दीखे, अहो म्हारो ! आतम रस हैं प्यारो ॥१॥
 म्हारो आतम रस है प्यारो, म्हारो ज्ञायक रस है प्यारो।
 यो पुद्गल रस है न्यारो, अहो म्हारो आतम रस है प्यारो ॥२॥
 म्हारो सम्यक् रस है प्यारो, म्हारो जीवनको उजियारो।
 वो मिथ्या रस है खारो, अहो म्हारो सम्यक् रस है प्यारो ॥३॥
 म्हारो आनन्दघन है प्यारो, म्हारो चेतनघन है प्यारो।
 म्हारो शांतिको अवतारो, अहो म्हारो आनन्दघन है प्यारो ॥४॥

(२७) आंतरिक दोष निवारण विधि !

जो अपने दोष छिपावे, वह जगके दोष बतावे जी,
 वह जड़में रचपच जावे, तब निर्भय जीवन गुमावे जी,
 वह हंस हंस समय बितावे, प्रभु किस विध आत्म सुहावे जी ? ॥१॥

प्रभु चौड़े दोष हमारा, प्रभु दीसे दोष हमारा;
 प्रभु जानूं दोष हमारा, प्रभु मानूं दोष हमारा,
 प्रभु सर्व ही दोष हमारा, प्रभु काटूं दोष हमारा ॥२॥

समझ स्वपर भेद आतम अपनावांजी,
 लक्ष आतम रख, दोष मिटांवा म्हारा प्रभुजी,
 यों सुख पावां जी ॥३॥

(२८) पुरुषार्थी खुद ज्ञान है।

विश्व व्यवस्थित सत् है, द्रव्य नियमसर होय,
 समझ सके सहु आत्मा, पलट सके नहीं कोय ॥१॥
 घोर भयंकर दुःख दशा, आत्मा सामने पाय,
 ज्ञानसूर्यके शौर्यसे, स्वयं क्षर क्षर जाय ॥२॥

पुरुषार्थी खुद ज्ञान है, शरणार्थी है राग,
करते अपना काम सब, शरणा परका त्याग ॥३॥

परिस्थितियां कुछ ना सुने, भृतवत् वृत्ति पाय,
दृढ-आत्मके जोरसे, भृतवत् बनती जाय ॥४॥

संक्षिप्त पद !

(१)
पुरुषार्थी सो “ज्ञान सूर्य है” ! शरणार्थी सो राग गुलाम ।
मर्म समझना हितका करना ! आपा अपना आनन्द धाम ॥

(२)
बादल वत् ही तो विकल्प दीखे छे, सहज विलय हो जावे जी ।
प्रभु त्याग अनादि मूर्छा, अब आत्मने अपनावो जी ।
प्रभु शान्ति पथ अवधारज्यो ॥

(३)
चेतन परिणति पुद्गल नाते जी, कूआचार फैलावे जी,
हंस-हंस कर तो बंस बढावे जी, रोना निश दिन छावे जी,
इण प्रकारे तो दुःख बुलावे जी ! ॥

(४)
प्रभु है स्वयं आत्मा, भक्त है श्रद्धा ज्ञान ।
समझ समझ भक्ति करां, निश्चय सिद्ध समान ॥

(५)
मोह नींदसे अब तो जगिये, क्यों सोते बेहाल जी,
कल्पित सुखकी दुःखमय घडियाँ, अन्दरका क्या हाल जी,
स्वपर समझने अब ही लगिये, हेरा-फेरी टाल जी,
आनन्द घनकी अमृत घडियाँ, आत्माको संभाल जी ॥

(६)

समझ आपकी चेतन ऋद्धि, सदुपयोग विधान जी।
स्वपर भेद विज्ञान ज्योतिमय, आत्म महा सुख खान जी॥

(७)

द्रव्य मात्रको अपने आपका, करनेवाला रहने दो।
अपना ज्ञायक आप संभालो, परका परमें रहने दो॥

(८)

जड गलतो मिलतो आयो, जीव संकल्प विकल्प छायो जी।
म्हारे ज्ञान समझतो आयो, प्रभु सूतो जीव जगायो॥

(९)

संकल्प विकल्प जड देही, यह काम नहीं आते हैं।
हम चाहे हटाना इन सबको, तो हटा कभी नहीं पाते हैं॥१॥
जब काम हमारे नहीं आते, तो हम इनसे हट जाते हैं।
फिर रखन तजन की बात नहीं, स्वरूप समझ घर आते हैं॥२॥

(१०)

विश्व स्वयं सब होय रहा है, ज्ञान स्वयं सब जोय रहा है।
मूर्ख निश दिन रोय रहा है, अमृत जीवन खोय रहा है॥

(११)

शुद्ध स्वभावी भान हमारा, चिदानंद घन प्राण हमारा।
सहजानंदी ज्ञान हमारा, रहे अटल यह ध्यान हमारा॥

(१२)

ज्ञान स्वभावी बढे चलो, सम्यक् निर्णय बढे चलो।
मुक्त स्वभावी बढे चलो, सहजानंदी बढे चलो॥

(१३)

वस्तु करती निज-निज धंधा, उसका कर्ता बने सो अंधा॥

(१४)

यह आदत खोटी गई नहीं, प्रमाण ज्ञानका कहां रहा।
दोषोंका पोषक बना रहा, तब आतम चिंतक कहां रहा ॥१॥
आतमसे अन्तस होते ही, दोषोंसे मैत्री छूट गई।
तब दोष स्वयं ही छोड़ चले, कर्मोंकी श्रृंखला टूट गई ॥२॥

(१५)

अमृत भोजन ज्ञान है, सम्यक् दर्शन सार।
हित ही हितकी भावना, निश्चय सुख अपार ॥

(१६)

प्रभु है स्वयम् आत्मा, साधक सम्यक् ज्ञान।
समझ समझ साधन बने, साध्य सिद्धि महान ॥

(१७)

लख ज्ञायक अनुभव ज्ञान सदा, निज आतम दोष छिपावनों नां।
गंभीरपनो रखनो मनमें, कभी नीति न्याय गुमावनो नां ॥१॥
डट वीरपनो दृढ़ धार सदा, कभी हीनपनो दरसावनो नां।
स्थिति घोर भयंकर आन पडे, तो ज्ञायक भाव विसारनो नां ॥२॥

(१८)

जो परका पीछा तू छोडे, तो सुख भी तुझको है चौडे।
जो परका पीछा नहीं छोडे, तो दुःख भी तुझको है चौडे ॥

(१९)

अन्तस निजको दीजिये, ज्यांसे चित विकसाय।
अन्तस परको देयतां, चित्तमें शांति नांय ॥

(२०)

काननसे तो सुण लियो, पण जानन मानन शून्य हियो।
अन्दर कुछ भी दियो न लियो, सुननो सर्व ही व्यर्थ गयो ॥

(२१)

आतम समझमें आ गया, पुद्गल धक्का खाया।
अपना सब कुछ आपमें, चिन्ता करे बलाय ॥

(२२)

ज्ञान सुदर्शन धार, मार अरि मोहना।
आये निज पुर मांय, प्रभु पद सोहना ॥

(२३)

क्यों हीये जड भार, झोंक जीवको खाडमें।
अपनी ओर निहार, झोंक भारको भाडमें ॥

(२४)

आप आपको क्या कहें, आप रसिक चिद्रूप,
कथन श्रवण चित क्षोभ है, निर्मोही चिद्रूप ॥१॥

आलंबन चित सुख मिटे, निरालंब सुखरूप;
सहज मौन चिद्रूप है, साक्षी सदा चिद्रूप ॥२॥

(२५)

आनंदघन जागता जी म्हारां ज्ञान,
दुःखोंसे पिंड छूटसी जी म्हारां ज्ञान ॥

(२६)

प्रभु भक्तिमें ध्यान हमारा, सावधान हो ज्ञान हमारा,
तत्त्व समझना काम हमारा, आनंदघन है धाम हमारा ॥



(२७)

अज्ञानी मनुष्य जन्म जन्म करे, अज्ञानी मनुष्य ही जन्मकरे
॥ अज्ञानी मनुष्य ही जन्म करे, अज्ञानी मनुष्य ही जन्मकरे ॥

पूज्य बहिनश्रीकी अमृत-वाणी

[दृष्टिके निधानसे साभार उद्धृत]

❁ देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा अपार है। अंतरमें शुद्धात्माकी महिमापूर्वक ध्येय उसीका रखना; निरन्तर उसीके भेदज्ञानका प्रयास करना। वही करना है। जिस प्रकार स्फटिक स्वभावसे निर्मल है परन्तु लाल, पीले फूलकी परछाईमें वह लाल-पीला दिखता है; तथापि वस्तुतः यह मलिन (लाल-पीला) नहीं हुआ है; उसीप्रकार चैतन्यपदार्थ स्वभावसे निर्मल है परन्तु उसकी परिणतिमें क्लेशकी कालिमाके कारण अनेक जातिके विभाव दृष्टिगोचर होते हैं तथापि सचमुच वह कुछ मलिन नहीं हुआ है, अंतरमें दृष्टि करे तो शुद्ध है। इसलिये शुद्धात्मा पर दृष्टि करके उसीकी ही लगन, उसीकी ही धुन और दिन-रात प्रतिक्षण उसीका ही भेदज्ञान करना कि 'यह जो विभावों हैं वे मेरे स्वभाव नहीं है; मैं उनसे भिन्न-न्यारा चैतन्यमय हूँ।' उसीकी ही लगन लगातार लगी रही तो वह निर्विकल्पतत्त्व-स्वानुभूति-प्राप्त हुए बिना रहेगा ही नहीं। १.

❁ भीतर शुद्धात्मामें ही सब भरा पड़ा है। तू भी प्रमाद छोड़कर वहाँ दृष्टि लगा। उसके लिये अधिक ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है, मात्र रुचिको पलट दे। श्रुतका विशेषज्ञान हो तो वह कहीं हानिकारक नहीं है; अंतरमें निर्मलताका कारण बनता है; परन्तु यदि विशेष ज्ञान न हो और प्रयोजनभूत ज्ञान हो तब भी आत्माका कार्य तो हो ही सकता है; इसलिये प्रयोजनभूत तत्त्व जो निजशुद्धात्मा उसे जाननेका प्रयत्न करना। विशेष शास्त्रज्ञान हो तो अच्छा, परन्तु सारभूत मुख्य तत्त्व तो एक शुद्धात्मा ही है; इसलिये शुद्धात्माको ग्रहण करना। २.

❁ पानी स्वभावतः निर्मल होने पर भी कीचड़के संयोगसे मलिन दिखायी देता है, तथापि उसका स्वभाव तो निर्मल ही है। उसीप्रकार चैतन्यका स्वभाव निर्मल और ज्ञान तथा आनन्दसे परिपूर्ण है; परन्तु जीवकी बाह्य दृष्टि होनेके कारण वह मलिनता और दुःखका अनुभव करता है। यदि चैतन्यकी ओर दृष्टि करे, चैतन्यको जाने, उसकी गहरायीमें जाकर उसके स्वभावको समझे तो उसमें से निर्मलता, शीतलता एवं आनन्द प्रगट हो। चैतन्यद्रव्य अनन्तानन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण है, उसमें अनन्त गुण विद्यमान हैं। चैतन्य कोई अनुपम तत्त्व है; उस ओर दृष्टि करनेसे, उसमें लीनता करनेसे यह विकल्प टूटकर जो स्वानुभूति होती है वह स्वानुभूति ही मुक्तिका मार्ग है। ३.

❀ जिसे आत्माकी जिज्ञासा जागृत हो, पिपासा लगे, बाहरका सब दुःखमय लगे, वह यदि अंतरमें खोज करे तो आत्माकी महिमा आये। जिसे संसारमें तन्मयता है उसे आत्माकी महिमा नहीं आती; जिसे बाह्यमें-विभावमें दुःख लगे वह विचार करता है कि—यह सब तो दुःख है; मैं तो भीतर कोई प्रगट अनुपमतत्त्व हूँ कि जिसमें परिपूर्ण सुख है। जिसे जिज्ञासा जागृत हो वह अपने आत्माका गुणवैभव देखनेका प्रयत्न करेगा और उसे उसकी महिमा आयगी। 'आत्माका वैभव कैसा है? कौन बतलाता है? कैसे प्रगट होगा?'—ऐसी जिसको जिज्ञासा होगी वही खोज करता है। ४.

❀ आत्मा शक्तिसे परिपूर्ण भगवान है। जो शक्तिसे पूर्ण होगा उसीमेंसे पर्यायमें पूर्णता प्रगट होगी। यदि स्वभाव पूर्ण न हो तो पर्यायमें पूर्णता आयगी कहाँसे? द्रव्यका मूल शाश्वतस्वरूप ऐसा है कि जिसे कोई हीनाधिक नहीं कर सकता। कोई पर द्रव्य उसे हानि या विघ्न नहीं पहुँचा सकता; उसके स्वभावको कोई खण्डित नहीं कर सकता। उसका नाम ही स्वतःसिद्ध द्रव्यस्वभाव कहा जाता है। वह स्वतः सिद्ध पूर्ण द्रव्यस्वभाव भले ही दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु उसमें पूर्णता है तभी पर्यायमें पूर्ण प्रगट होता है। जिसमें हो उसीमेंसे ही प्रगट होता है। पूर्ण केवलज्ञान पूर्णस्वभावसे ही प्रगट होता है। पूर्ण हो तभी उसमें से पूर्णता आती है। इसलिये स्वभावको पहिचानकर प्रतीति करना चाहिये कि 'मैं पूर्ण ही हूँ।' अपनी पूर्ण शक्तिकी प्रतीति भलीभाँति हो सकती है। अपूर्णता हो उसमें से पूर्णता नहीं आती, पूर्णतामें से ही पूर्णता आती है। मूलतत्त्व परिपूर्ण है। केवलज्ञानपर्याय भले ही व्यक्तरूपसे पूर्ण प्रगट होती है, परन्तु शक्तिरूपसे-स्वभावरूपसे तो भीतर द्रव्य ही परिपूर्ण विद्यमान है। अपनी दृष्टि पूर्ण स्वभाव पर लगा दे तो उसमें से पर्यायमें पूर्णता प्रगट होगी। ५.

❀ आत्मा कामधेनु है, कल्पवृक्ष है उसमें से जब जो माँगे वह मिल जायगा। तू जो चाहेगा वह भीतरसे मिल जायगा। स्वभावमेंसे मनवांछित फल मिलेगा। एक उपयोगको भीतर लगाने पर कितना-कितना प्राप्त होगा। एक चैतन्यपर दृष्टि लगा तो उसके फलस्वरूप अंतरसे सहज ज्ञानका उदय होगा, आनन्दका उदय होगा; उसमें सोचने या विचार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी; बिना किसी आकुलताके-निराकुलरूपसे आते ही रहेंगे। उसका एक अंश भी अनन्तगुना लेकर आयगा। पूर्णता हो उसकी तो बात ही क्या? तुझे आश्चर्य होगा कि एक अंशमें इतना तो पूर्णतामें कितना?

वह अंश सहज ही अनन्तगुना लेकर आयगा। स्वभावमें है वह कहाँ जायगा? उसे कौन ले जायगा? उसे विघ्न करने या रोकनेवाला कौन है? कोई रोकनेवाला नहीं है; रुकेगा

तो अपने पुरुषार्थकी अशक्तिसे। एक अंश अनन्तगुना लेकर ही आता है। सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व। एक अंशके वेदनमें अनंती शक्तिका वेदन है। ६.

❀ जैसे समुद्र भी भीतर से उछलता है तो उस पानीको रोकनेवाला कौन है ? बाहरका पानी इकट्ठा करनेसे समुद्र नहीं भरता। समुद्र भीतर से उल्लसित हो वह उल्लास कोई ओर ही होता है; वैसे ही धारणाज्ञान से पार नहीं आता। बाह्य क्षयोपशम चाहे जितना इकट्ठा करे परन्तु वह काम नहीं आता; इसलिये तू अंतरमें भेदज्ञानका सम्यक् प्रयास कर। एक द्रव्य दृष्टिकी दोरको मुख्य रखना। द्रव्यको ग्रहण करनेके पश्चात् द्रव्य तेरे साथ ही रहेगा; तू स्वयं ही द्रव्य है। ७.

❀ द्रव्यदृष्टि सहित सम्यक् पर्याय प्रगट हुई तो पूर्ण शुद्धता प्रगट होकर ही रहेगी। शुद्धताका समुद्र भीतरसे एकदम उछलेगा। प्रत्येक गुण समुद्रकी भाँति उछलेगा। एक अंश अनंतगुना लेकर आयेगा, फिर आगे बढ़ने पर मुनिदशा और ऐसा करते-करते केवलज्ञान.....वहाँ तो अनन्तानन्त गुण शुद्धता से भरपूर उल्लसित होंगे मुनिदशामें तो अनन्त प्रगटता है, परन्तु केवलज्ञान होने पर इससे अनन्तगुना प्रगटता है क्योंकि यह वीतरागदशा है। वीतरागदशा होनेके पश्चात् शुद्धता पूर्णरूपसे उछलेगी। इसलिये मैं निरंतर शुद्धतासे परिपूर्ण ज्ञायक हूँ, शुभाशुभ भावरूप में नहीं हूँ, मैं तो ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरा हुआ भगवान हूँ—एसे विकल्पोको नहीं परन्तु ज्ञाताके मूल अस्तित्वको ग्रहण कर, द्रव्यको ग्रहण कर, इसमें सब आ जायगा। ८.

❀ किसी भी स्थितिमें ज्ञानीकी ज्ञायकता नहीं छूटती; पुण्य-पापके भावमें भी वह ज्ञायक ही है। चाहे जैसे उच्च शुभभाव हों, पंचपरमेष्ठीकी पूजा-भक्तिके भावोंमें तीव्र रस दिखता हो अथवा गुणभेद के विचार करता हो, तथापि ज्ञायक तो ज्ञायक ही है, कहीं एकत्वबुद्धि नहीं है। ९.

❀ तू निरालम्बी चालसे चलना सीख। उसके लिये तू जिनेन्द्र कथित वस्तुस्वरूपको समझ। उसे समझनेमें व्यवहारसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु निमित्त होते हैं। देव-शास्त्र-गुरु मार्ग बतलाने में महा निमित्त हैं। तू अपने उपादानको भीतरसे तैयार कर वहाँ निमित्त तो तैयार होता ही है। अपना उपादान तैयार करना वह तेरे हाथकी बात है, उसमें कोई रोकनेवाला नहीं है। शास्त्रमें आता है न! कि—विभावमें युक्त होनेके लिये भी तू स्वतंत्र है और स्वभावके कार्य करने में भी स्वतंत्र है। पर्यायदृष्टि तू स्वतंत्ररूपसे करता है और द्रव्यदृष्टि करनेमें भी तू स्वतंत्र है। पं. बनारसीदासजीके उपादान-निमित्तका दोहों में आता है—“एकचक्रसों रथ

चले रविको यही स्वभाव।” तू अकारण पारिणामिक द्रव्य है; अपना उपादान तैयार कर। तू स्वयं स्वतंत्ररूपसे परिणमित पदार्थ है। १०.

❀ यह जो बाह्यलोक है, विभावका लोक है, उसमें तो सर्वत्र दौड़ादौड़ी....दौड़ादौड़ी ही दिखायी देती हैं, कहीं शान्ति नहीं है। अंतरका लोक—चैतन्यलोक—अद्भुत है, उसमें सब सुशोभित है, वहाँ सर्वत्र शांति है। ११.

❀ प्रकृतिका कितना सुमेल है! जगतमें ज्ञायकदेव अकृत्रिम स्वयंसिद्ध साक्षात् है। ज्ञायकदेवको प्रगट करनेवाले, साक्षात् चैतन्य रत्नाकर ऐसे तीर्थकर भगवन्त प्रवाहरूपसे नित्य विराजमान हैं, जगतमें कभी उनका विरह नहीं होता। चैतन्यरत्नाकर तीर्थकर भगवन्तोके प्रतीकरूप अकृत्रिम स्वयंसिद्ध रत्ननिर्मित जिनविम्ब भी लोकमें शाश्वतरूपसे विराजमान हैं। जगतमें ऊर्ध्व, अधो एवं मध्यलोकमें—वैमानिक स्वर्ग, भवनवासीके भवन, ज्योतिष्क और व्यंतरके स्थानोंमें—असंख्य रत्नमय जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमाएँ हैं। मन्दिर भी रत्नोंके और भगवान भी रत्नोंके! कितनी ही प्रतिमाएँ तो पाँचसौ धनुषप्रमाण और मन्दिर तो उनसे भी बहुत ऊँचे! अकृत्रिम, अतिमनोज्ञ, जिनेन्द्रभगवान सद्दृश प्रतिमाएँ! मानो अभी—अभी दिव्यध्वनि छूटी या छूटेगी! १२.

❀ अंतरमें देखनेका प्रयत्न करे तो भीतरसे सब प्रगट हो। जिसे जिज्ञासा हो वह अंतरमें गये बिना रहता ही नहीं। यह शरीरादि बाह्यवस्तु है, विभावपर्याय भी अपना स्वभाव नहीं है। अंतरमें एक—चैतन्यद्रव्य शाश्वत है, जिसमें शाश्वत सुख है। जिसमें सुख हो उसीमें से वह प्रगट होता है। सुखादि अंतरतत्त्वमें से ही आते हैं, बाहरसे कुछ नहीं आता। आनन्दगुण आत्माका है, इसलिये आत्मा पर दृष्टि करनेसे वह प्रगट होता है। जो जिसमें हो वह उसीमें से आता है; बाहर से कुछ नहीं आता। जिसका जो स्वभाव हो वह उसीमें परिणमन करनेसे—उसीमें जानेसे प्रगट होता है। इसलिये अंतरमें जाकर शुद्धात्मा को जानने तथा प्रगट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसकी दृष्टि, ज्ञान तथा उस ओर उन्मुख होनेसे वह प्रगट होता है। १३.

❀ यह शरीर आत्माका नहीं है, वह जड़ है—पर द्रव्य है, चैतन्यका स्वरूप नहीं है; तथापि (अज्ञानी) पर्यायमें उसे अपना मान रहा है, विभावोंको अपना मान रहा है। शुभभाव मेरा—पूजा करूँ, भक्ति करूँ, स्वाध्याय करूँ, मनन करूँ—इसप्रकार उनको एकाकाररूपसे अपना मान रहा है, परन्तु वह तो शुभराग है; उससे तो पुण्यबन्ध होता है। तेरा भगवान आत्मा तो उससे भी पृथक् का पृथक् ही है। पृथक् आत्माको पहिचान! निर्विकल्पतत्त्वकी प्रतीति कर! वह करने जैसा है, उससे भवका अभाव होगा। १४.

❁ चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि करे तो सर्व पर्यायों (यथासंभव) शुद्ध परिणमित हों, पूरी दिशा ही बदल जाय। विभावकी दशा परकी ओर है। द्रव्यस्वभावकी ओर दृष्टि जाने पर पर्यायमें पूरी दिशा बदल जाती है—शुद्धतारूप परिणमन होता है। जैसे पश्चिममें से पूर्वकी ओर मुँह फेर ले, वैसे ही द्रव्यकी ओर मुँह फेरनेसे पर्यायकी ओर पीठ हो गई, दृष्टि गई भगवानकी ओर, नेत्र भगवानको निरखने लगे, उनकी ओर हाथ जुड़ने लगे, साधकके पग उस ओर बढ़ने लगे। ऐसे मंगलमय भगवानके दर्शनसे पर्यायमें मंगलप्रभा फैल गयी। अंतरमें ऐसे ज्ञायकदेवको दिखानेवाले गुरुदेव स्वयं मंगलमय थे। उनकी मंगलप्रभासे भरतक्षेत्र सुशोभित था। आज भी उनकी मंगलप्रभा छापी हुई है। १५.

❁ आत्मकल्याण कर लेनेकी भावनावाला आत्मार्थी जीव दृढ तत्त्वनिर्णयपूर्वक स्व-परके भेदका अथवा ज्ञाताके ग्रहणका अभ्यास करके, उस अभ्यासकी उग्रता द्वारा विकल्प टूटने पर, आनन्दझरती निर्विकल्प स्वानुभूतिको अवश्य प्राप्त कर लेता है। उस हेतु आत्मार्थीको प्रयास करने जैसा है। ऐसा प्रयत्न करनेवाले, आत्मकल्याणकी लगनवाले आत्मार्थी जीवको विभावमें बिलकुल शान्तिका अनुभव नहीं होता, एकमात्र आत्मामें ही शान्ति भासित होती है—आत्मामें ही सर्वस्व लगता है। यदि आत्मामें ही शान्तिका अनुभव हो, सर्वस्व लगे तभी उसका उग्र प्रयत्न होगा। १६.

❁ चैतन्यके तलपर पहुँचनेसे उसकी पूर्णता कैसी होती है, साधक कैसा होता है, उसके आदि-मध्य-अन्त कैसे होते हैं—सब पता लग जाता है। मूलको जाने बिना उसकी साधना कैसे होती है उसकी खबर नहीं पड़ती। 'तल' में पहुँच जाय तो सब ज्ञात हो जायगा। पत्तों पर पानी डालने से नहीं परन्तु मूलको सींचनेसे आम्रवृक्ष फलता है, क्या वह नहीं देखा? तो यहाँ ऊपर-ऊपर शुभभावका पानी डालनेसे क्या होगा? मूल में ज्ञायकके आलम्बनरूप पानीको सींचना! १७.

❁ साधकजीवको जिनेन्द्रदेवके प्रति ऐसा भक्तिभाव आता है कि—हे जिनेन्द्र देव! आपके प्रतापसे ही मेरे अंतरमें ज्ञायकदेव पधारे हैं। साथ ही साथ साधकका परिणमन निरन्तर 'ज्ञायकदेव' के प्रति ढला रहता है वह मानो ऐसा कह रहा है कि—“पधारो ज्ञायकदेव! पधारो! मेरे अंतरके महलमें विराजो। अनन्तानन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण हे ज्ञायकदेव! मैं किस प्रकार आपका सन्मान करूँ? आपको कैसे वन्दन करूँ? किस विधिसे आपकी पूजा करूँ?” यहाँ आदरणीय-वन्दनीय-पूजनीय भी स्वयं और सन्मान करनेवाला-वंदन करनेवाला-पूजन करनेवाला भी स्वयं ही है; सब एक में ही हैं, भिन्न-भिन्न नहीं हैं। १८.

❁ यह जो अद्भुत चैतन्यदेव है वह कोई रिक्त नहीं है, वह तो अनन्त गुणरत्नों से भरपूर प्रकाशित तत्त्व है। बाह्य दृष्टिवालोंने तो यह सुना भी नहीं है। भले ही बाह्य क्रियाकाण्ड करे परन्तु वह तो भूसा कूटने जैसा है, दाने तो भीतर भरे हैं; बाह्य प्रयत्नसे क्या होगा? भाई! तू अनन्त गुणरत्नोंसे ठसाठस भरा है, उन गुणरत्नोंके प्रकाशमान स्वरूप पर दृष्टि दे तो वह पावन पुराणपुरुष प्रगट होगा। आत्मा भगवत्स्वरूप है, पवित्र है, निर्विकल्पतत्त्व है। अनन्तगुणरत्नों से दैदीप्यमान आत्मा विकल्पों से नहीं परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूतिमें ही ज्ञात होता है। स्वयं ज्ञानमें ज्ञात हो, वेदनमें आये, अनन्त गुणरत्नाकरमें स्वयं डूब जाये तो अनन्त सुखका अनुभव करे ऐसा है। उसका वर्णन किन शब्दों में किया जाय? कोई पुरुष रत्नोंका महल देखकर आया हो और फिर बात करे तो क्या कहेगा? भाई वह रत्नमहल तो धूल है, उसके लिये तो उपमा भी होती है, परन्तु इसके लिये क्या उपमा हो सकती है? इसका क्या वर्णन किया जाय? यह तो अनुपम तत्त्व है! १९.

❁ मोक्षमार्गमें साध्य-साधकभावके भेद बीचमें आते हैं, परन्तु उनमेंसे 'एक' को ही साधना है। दृष्टि एक आत्मा पर ही है। एकको साधने से अंतरमें अनंत गुण सध जाते हैं। सबको भिन्न-भिन्न नहीं साधना पड़ता। जीवको ऐसा लगता है कि अनन्तको किस प्रकार प्राप्त कर सकूँगा? परन्तु उस अनन्तको प्राप्त नहीं करना पड़ता। 'एक' को प्राप्त कर ले तो सबको प्राप्त कर सकेगा। सर्व भण्डार एक शुद्धात्मामें ही भरा है। बस, उस एकको प्राप्त कर ले। एक चैतन्यदेवकी जो दिव्यशक्ति है उसे पहिचान ले। उसकी दृष्टि कर, उस ओर परिणति लगा। उसीमें दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी साधना होगी। उसीमें तपकी आराधना होगी। २०.

❁ मुक्तिका मार्ग एक है। सब करके करना तो एक ही है—शाश्वत शुद्ध आत्माका अवलम्बन अथवा उसकी दृष्टि, ज्ञान एवं रमणता। उसके लिये आत्माकी पहिचान करना चाहिये। जबतक स्वयं अंतरंग परिणमनपूर्वक उसकी पहिचान नहीं कर सके, तबतक उसे उसके लिये तत्त्वविचारादि का प्रयत्न हुए बिना नहीं रहेगा। परन्तु करने जैसा तो एक ही है—एक शाश्वत शुद्ध आत्माका अवलम्बन। गुरुदेवने आत्मकल्याणका यही मार्ग बतलाया है। २१.

❁ ज्ञान, दर्शन और आनन्दादि अनन्तानन्त शक्तियों से परिपूर्ण यह आत्मा अनादिकालसे तद्रूप ही है—ज्योंका त्यों है। उस आत्माको जानना ही जीवनका ध्येय होना चाहिये। भेदज्ञानकी धारा कैसे प्रगट हो तथा आत्माका ग्रहण कैसे हो, उसकी अंतरमें प्रतिक्षण लगन लगना चाहिये, वही करने योग्य है। २२.

❁ श्रुतके तलको खोजकर आत्माके तलको—ज्ञायकभावको—खोज ले। आत्माके तलका पता लगने से श्रुतका तल उसमें आ गया। आत्माके तलका—ज्ञायकभावका—आश्रय मुख्य है; वह होने पर बेड़ा पार है! उसीमें से सब प्रगट होगा। अनंतकालमें उसीका आश्रय ही शेष रह गया है। २३.

❁ अहा, अनन्त गुणों से गुँथा हुआ तू एक है, उस एकको प्राप्त कर ले। उस एकके अवलम्बन से स्वभाव परिणति हुई कि सम्पूर्ण चक्र स्वभावोन्मुख हो गया। आपकी दृष्टि स्वभाव तरफ हुई तो सब गुणोंका स्वभाव परिणमन शुरु हो गया फिर तो उसमें लीनता करते-करते पूर्णता तक पहुँच जायगा। २४.

❁ द्रव्य-मूलवस्तु—ही उसे कहा जाता है कि जिसे स्वभावसे परिपूर्ण द्रव्यको कोई अन्य द्रव्य विघ्न या हानि नहीं पहुँचा सके अथवा नष्ट नहीं कर सके। २५.

❁ मैं 'ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ'—इसप्रकार ज्ञातापनेकी धाराका अभ्यास करना। यथार्थ तो उसके पश्चात् होता है परन्तु प्रथम उसका अभ्यास होता है। उसका अभ्यास बारम्बार करे तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहे। यही एक कार्य करना है। अनादिकालमें जीवने एक सम्यग्दर्शन नहीं किया, दूसरा सब तो अनेकों बार किया है। अहा! सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व वस्तु है! २६.

❁ भगवानकी रत्ननिर्मित प्रतिमाएँ भी आश्चर्यजनक हैं; तू तो स्वयं अनादि—अनन्त शाश्वत चैतन्यरत्नाकर! दिव्यध्वनिमें भी इस चैतन्य रत्नाकरकी अनेकों बातें आती हैं; उन्हें सुनकर जीव उनको देखनेके लिये लालायित होता है—ऐसी उपादान-निमित्तकी सन्धि है। अनादिकालसे भटकते हुए जीवको प्रथम देशनालब्धि होती है.....भले ही भगवानकी वाणी हो या गुरुदेवकी वाणी हो.....उसे सुनकर जीव स्वोन्मुख होता है। २७.

❁ अहा! जिनकी मुद्रा शांत सुधारसका सरोवर है ऐसे हे प्रभु! आपको निरखते हुए मुझे तृप्ति ही नहीं होती। मेरे नेत्र आपके मुखारविन्दसे हटते ही नहीं। जगतमें यदि कुछ दर्शनीय हो तो वह सर्वोत्कृष्ट निजज्ञायकदेव एवं सर्वोत्कृष्ट जिनेन्द्रदेव हैं। जगतमें अन्य कुछ आश्चर्यकारी नहीं है। प्रभो! आपके दर्शनोंसे मेरे नेत्र सफल हो गये! ऐसा लगता है कि आपको देखता ही रहूँ। २८.

❁ जिनप्रतिमाके दर्शन करने से ऐसी भावना होती है कि “मैं भगवान सदृश ही हूँ।” आत्मा और परमात्मामें कोई भेद न रहे, तो निद्धत और निकाचित कर्म भी टूट जाते

हैं, परन्तु समझे बिना नहीं। यह तो अंतरंग समझ पूर्वककी बात है। २९.

❁ सर्व प्रथम चैतन्यको जानना, चैतन्यमें ही विश्वास करना और पश्चात् चैतन्यमें ही स्थिर होना.....तब चैतन्य प्रगट होता है, उसकी शक्ति प्रगट होती है। प्रगट करनेमें अपनी तत्परता, बारम्बार उग्र पुरुषार्थ, ज्ञायकका ही अभ्यास, ज्ञायकका ही मंथन, उसीका ही चिन्तवन करे तो प्रगट होता है।

पूज्य गुरुदेवने मार्ग बतलाया है, चारों पक्षों (तरफ)से स्पष्ट किया है। ३०.

❁ अनादिकाल से स्वयंने अपना स्वरूप नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है' ऐसा भास हुआ है। द्रव्य तो अनादिकालसे शुद्धतापूर्ण ज्ञायकस्वरूप, आनन्दस्वरूप ही है; उसमें अनन्त चमत्कारिक शक्ति विद्यमान है। ३१.

❁ जब तक अनुभूति न हो तब तक उसकी श्रद्धा करे, महिमा लाये, तब भी अच्छा है। अनुभूतिकी भावना कर। अनुभूति हो जाना तो बहुत ही श्रेष्ठ है, परन्तु उसके किनारे पहुँच जाना भी उत्तम है, उसकी समीपता भी अच्छी है। विभाव एवं संयोगकी समीपता छूटकर ज्ञायककी समीपता हो जाना भी अच्छा है। ज्ञायककी साक्षात् अनुभूति तो लोकोत्तर वस्तु है। ३२.

❁ अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण आत्मा यदि स्वयं भेदज्ञान करे कि—यह जो पर है सो 'मैं' नहीं हूँ, विभाव मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उनसे अत्यंत भिन्न शाश्वत् चैतन्य पदार्थ हूँ। ऐसे भेदज्ञानपूर्वक यदि वह शाश्वत द्रव्यकी दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो वह प्रगट हुए बिना नहीं रहेगा। ३३.



श्रीमद् राजचन्द्र वचनमृत

[दृष्टिना निधान (गुजराती) में से]

❁ शरीरकी जितनी चिन्ता रखता है उतनी नहीं किन्तु उससे अनन्तगुनी चिन्ता आत्माकी रख, क्योंकि अनन्तभवोंका अभाव एक भवमें करना है। १.

❁ हे नाथ! सातवें तमःप्रभा नरककी वेदना मिली होती तो उसे शायद (कदाच) सम्मत करता, परन्तु जगतकी मोहिनी सम्मत नहीं होती। २.

❁ पूर्वके अशुभकर्म उदयमें आने पर वेदते हुए जो सोच करते हो तो अब यह भी ध्यानमें रखो कि नये बँध रहे हैं वे वैसे तो नहीं बँधते? ३.

❁ 'अनन्तकाल हो गया जीवको परिभ्रमण करते तथापि उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती और वह क्या करने से होगी?' इस वाक्यमें अनेक अर्थ समाये हुए हैं। उन्हें विचारे बिना या दृढ़ विश्वास से झूरे बिना मागके अंशकी अल्प प्रतीति नहीं होती। अन्य सब विकल्प छोड़कर इस एक उपर लिखे हुए सत्पुरुषोंके वचनमृत बारम्बार विचार लेना। ४.

❁ गम (समझे) पड़े बिना आगम अनर्थकारी हो जाता है। सत्संगके बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है। संतके बिना अंतकी बातमें अंत नहीं पाता। लोकसंज्ञासे लोकाग्रमें नहीं पहुँचा जा सकता। लोकत्यागके बिना यथायोग्य वैराग्य प्राप्त करना दुर्लभ है। ५.

❁ देहधारीको विटम्बना वह तो एक धर्म है। वहाँ खेद करके आत्मविस्मरण क्यों करना?.....निरुपायताके आगे सहनशीलता ही सुखदायक है। ६.

❁ अनादिकालका परिभ्रमण अब समाप्ति को प्राप्त हो ऐसी जिज्ञासा, वह भी एक कल्याण ही है। कोई ऐसा यथायोग्य समय आ जायगा जब इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो जायगी। ७.

❁ पात्रता प्राप्तिका प्रयास अधिक करो। ८.

❁ हे कर्म! तुझे निश्चय आज्ञा करता हूँ कि नीति और नेकी पर मुझे पैर मत रखाना। ९.

❁ नाना प्रकारका मोह क्षीण होनेसे आत्माकी दृष्टि अपने गुणसे उत्पन्न होते सुखमें जाती है और फिर उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करती है तथा वही दृष्टि उसे उसकी सिद्धि देती है। १०.

❁ दृष्टिको इतना स्वच्छ बनाओ कि जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष भी दिख सके, और दिखने से नष्ट हो सके। ११.

❁ ओरे हे दुष्टात्मा! पूर्व भवमें वहाँ बराबर सन्मति नहीं रखी और कर्मबन्ध किये तो अब तू ही उसके फल भोग रहा है। तू या तो विषपान कर या फिर तत्काल उपाय कर। १२.

❁ सत्पुरुषके प्रत्येक वाक्यमें, प्रत्येक शब्दमें अनन्त आगम भरे हैं, यह बात कैसी होगी? १३.

❁ दो अक्षरमें मार्ग कहा है, और अनादिकाल से इतना सब करने पर भी क्यों प्राप्त नहीं हुआ इसलिये उसका विचार करो। १४.

❁ अनन्तकालसे अपनेको अपने ही सम्बन्धी भ्रान्ति रही है; यह एक अवाच्य, अद्भुत विचारणाका स्थान है। जहाँ मतिकी गति नहीं है, वहाँ वचनकी गति कहाँसे होगी? १५.

❁ सत्संग वह बड़े से बड़ा साधन है। १६.

❁ जो छूटनेके लिये ही जीता है वह बंधनमें नहीं आता। यह वाक्य निःशंक अनुभवका है। १७.

❁ सर्व प्रकारकी क्रियाका, योगका, जपका, तपका और उसके अतिरिक्त प्रकारका लक्ष ऐसा रखना कि सब आत्माको छुड़ानेके लिये है; बंधनके लिये नहीं है। जिनसे बंधन हो वे सब त्यागने योग्य हैं। १८.

❁ उपाधिमें भी निवृत्तिका लक्ष रखनेका स्मरण रखना। १९.

❁ मैं कर्ता, मैं मनुष्य, मैं सुखी, मैं दुःखी—आदि प्रकार से रहा हुआ देहाभिमान, वह जिसका गल गया है और सर्वोत्तम पदरूप परमात्माको जिसने जाना है, उसका मन जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ उसे समाधि ही है। २०.

❁ पद-पद पर भय युक्त अज्ञान भूमिकामें जीव बिना विचारे करोड़ों योजन चलता रहता है; वहाँ योग्यताका अवकाश कहाँ से होगा?.....२१.

❁ योग्यता, ज्ञानप्राप्ति हेतु बड़ा बलवान कारण है। २२.

❁ सुदृढ़ स्वभावसे आत्मार्थका प्रयत्न करना। आत्मकल्याण प्राप्त होनेमें सम्भवतः (प्रायः) वारम्बार प्रबल परीषह आनेका स्वभाव है। परन्तु यदि उस परीषह का शांतचित्तसे वेदन किया जाय तो दीर्घकालमें होने योग्य ऐसा कल्याण अति अल्पकालमें साध्य है। २३.

❁ तुम सब ऐसे शुद्ध आचरण से वर्तना कि विषमदृष्टि से देखनेवाले मनुष्योंमें से अनेकोंको काल जाने पर अपनी उस दृष्टि के लिये पश्चात्ताप करनेका समय आये। २४.

❁ अन्तकालमें यम प्राणियोंको (कदाच) दुःखदायक नहीं लगता होगा, परन्तु हमें संग दुःखदायक लगता है। २५.

❁ मार्ग सरल है, प्राप्ति दुर्लभ है। २६.

❁ परमानन्दरूप हरिको (आत्माको) एक क्षण भी नहीं विसरना वह हमारी सर्व कृति, वृत्ति और लेखका हेतु है। २७.

❁ स्वरूप चिन्तन, भक्ति सर्व कालमें सेव्य है। २८.

❁ तृषातुरको पिलानेका प्रयत्न करना; अतृषातुरको तृषातुर होनेकी जिज्ञासा उत्पन्न करना। जिसे वह उत्पन्न न हो सके ऐसा हो उसके लिये उदासीन रहना। २९.

❁ ज्ञान वही कि अभिप्राय एक ही हो; अल्प या अधिक प्रकाश, परन्तु प्रकाश एक ही है। ३०.

❁ ऐसा एक ही पदार्थ परिचय करने योग्य है कि जिससे अनंत प्रकारके परिचयों से निवृत्ति होती है; वह कौन सा? और किस प्रकार से? उसका विचार मुमुक्षुओं करते हैं। ३१.

❁ जगतमें अच्छा दिखाने के लिये मुमुक्षु कुछ आचरता नहीं है, परन्तु अच्छा हो वही आचरता है। ३२.

❁ उदयको अवंध परिणाम से भोगा जाय तभी उत्तम है। ३३.

❁ जगत आत्मरूप मानने में आये; जो हो उसे योग्य ही मानने में आये; परके दोष देखनेमें न आये; अपने गुणोंकी उत्कृष्टता सहन करनेमें आये तभी संसारमें रहना योग्य है; अन्य प्रकारसे नहीं। ३४.

❁ स्वरूप सहजमें है। ज्ञानीके चरणसेवन बिना अनन्तकाल तक भी प्राप्त न हो ऐसा विकट भी है। ३५.

❁ अन्य कार्योंमें प्रवर्तते हुए भी अन्यत्वभावनासे वर्तने का अभ्यास रखना योग्य है। ३६.

❁ प्रमादमें वैराग्यकी तीव्रता, मुमुक्षुता मन्द करने योग्य नहीं है; ऐसा निश्चय रखना योग्य है। ३७.

❁ जीवन अल्प है और जंजाल अनन्त है; संख्यात धन है और तृष्णा अनन्त है; वहाँ (ऐसी स्थितिमें) स्वरूप स्मृति सम्भव नहीं है; परन्तु जहाँ जंजाल अल्प है और जीवन अप्रमत्त है, तथा तृष्णा अल्प है अथवा नहीं है और सर्व सिद्धि है वहाँ स्वरूप स्मृति पूर्ण होना सम्भव है। अमूल्य ऐसा ज्ञानजीवन प्रपंचसे आवृत बहा जाता है। उदय बलवान है! ३८.

❁ लौकिक दृष्टिसे आप और हम प्रवर्तेंगे तो फिर अलौकिक दृष्टिसे कौन प्रवर्तन करेगा? ३९.

❁ 'माँगकर खाके गुजरान चलाएँगे परन्तु खेद नहीं करेंगे; ज्ञानके अनन्त आनन्दके समक्ष वह दुःख तृणमात्र है' इस भावार्थका जो वचन लिखा है उस वचनको हमारा नमस्कार हो! ऐसा जो वचन वह सच्ची योग्यताके बिना निकलना सम्भव नहीं है। ४०.

❁ चारों ओर उपाधिकी ज्वाला जलती हो उस स्थितिमें समाधिका रहना परम दुष्कर है, और यह बात तो परम ज्ञानीके बिना होना कठिन है, हमें भी आश्चर्य हो जाता है, परन्तु ऐसा प्रायः वर्तता ही रहता है, ऐसा अनुभव है। ४१.

❁ किसी भी कार्यके प्रसंगमें अधिक शोचमें (खेदमें) पड़नेका अभ्यास कम करना; ऐसा करना अथवा होना वह ज्ञानीकी अवस्थामें प्रवेश करनेका द्वार है। ४२.

❁ सांसारिक उपाधि हमें भी कम नहीं है; तथापि उसमें अपनापन नहीं रहा इसलिये घबराहट उत्पन्न नहीं होती। ४३.

❁ परमार्थ प्राप्त होनेके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी आकुल-व्याकुलता रखना—होना—उसे दर्शनपरिषह कहा है। वह परिषह उत्पन्न हो वह तो सुखकारक है; परन्तु यदि धैर्यपूर्वक उसका वेदन हो तो उसमें से दर्शनकी उत्पत्ति होनेकी सम्भावना रहती है। ४४.

❁ यह लोकस्थिति ही ऐसी है कि उसमें सत्यका भासन करना परम विकट है। सारी रचना असत्यके आग्रहकी भावना करानेवाली है। ४५.

❁ भ्रान्तिगतरूपसे सुखस्वरूप भासते हैं ऐसे इन संसारी प्रसंगों और प्रकारोंमें जीवको जब तक प्रेम वर्तता है तब तक जीवको अपना स्वरूप भासित होना असम्भव है और सत्संग का महात्म्य भी यथार्थरूप से भासना असंभव है जब तक वह संसारगत प्रेम असंसारगत प्रेमको प्राप्त न हो तबतक अवश्य अप्रमत्तरूपसे बारम्बार पुरुषार्थका स्वीकार योग्य है। यह बात तीनों कालमें अविस्वादा जानकर निष्कामरूपसे लिखी है। ४६.

❁ जो यथार्थ ज्ञानीको जानता है वह मानादिकी इच्छा नहीं करता, ऐसा हमारा अंतरंग अभिप्राय वर्तता है। ४७.

❁ किसीका दोष नहीं है हमने कर्म बाँधे इसलिये हमारा दोष है। ४८.

❁ जिस ज्ञानके द्वारा भवांत होता है वह ज्ञान प्राप्त होना जीवको अत्यन्त दुर्लभ है; तथापि वह ज्ञान स्वरूपसे तो अति सुगम है ऐसा जानते हैं वह ज्ञान सुगमरूपसे प्राप्त होनेमें जो दशा चाहिये वह दशा प्राप्त होना अति अति कठिन है, और उसे प्राप्त होनेमें जो दो कारण वे मिले बिना जीवको अनन्तकाल से भटकना पड़ा है वे दो कारण मिलने पर मोक्ष है। ४९.

❁ जगतके अभिप्रायको देखकर जीवने पदार्थका बोध प्राप्त किया है, ज्ञानीके अभिप्रायको देखकर प्राप्त नहीं किया। जिस जीवने ज्ञानीके अभिप्रायसे बोध प्राप्त किया है उस जीवको सम्यग्दर्शन होता है। ५०.

❁ जिस जीवितव्यमें क्षणिकपना है, उस जीवितव्यमें ज्ञानियोंने नित्यपना प्राप्त किया है, यह अचरजकी बात है। ५१.

❁ जिसे बोधिवीजकी उत्पत्ति होती है, उसे स्वरूपसुखके कारण परितृप्तपना वर्तता है और विषयोंके प्रति अप्रयत्नदशा वर्तती है।

यदि जीवको परितृप्तपना प्रवर्तमान नहीं रहता हो तो उसको अखण्ड ऐसा आत्मबोध नहीं समझना। ५२.

❁ अनन्तकालसे जो प्राप्त नहीं हुआ, उसकी प्राप्ति हेतु अमुक काल व्यतीत हो तो हानि नहीं है; मात्र अनन्तकालमें जो प्राप्त नहीं हुआ उसके विषयमें भ्रान्ति हो, भूल हो वह हानि है। यदि ज्ञानीका परम ऐसा स्वरूप भास्यमान हुआ हो तो फिर उसके मार्गमें अनुक्रमसे जीवका प्रवेशपना होगा—वह सरलतासे समझमें आये ऐसी बात है। ५३.

❁ उपाधियोग तो सर्वप्रकारसे निवृत्त करने योग्य है; तथापि यदि वह उपाधियोग

सत्संगादिके अर्थ ही इच्छते हो तथा फिर चित्तस्थिति यथार्थ रहती हो तो उस उपाधियोगमें प्रवर्तना श्रेयस्कर है। ५४.

❁ किसी भी प्रकारका भविष्यका सांसारिक विचार छोड़कर वर्तमानमें समरूप प्रवर्तनका दृढ़ निश्चय करना वह आपको योग्य है; भविष्यमें जो होनेयोग्य होगा वह होगा, वह अनिवार्य है—ऐसा समझकर परमार्थ—पुरुषार्थकी ओर उन्मुख होना योग्य है। ५५.

❁ जिनागम हैं वे उपशमस्वरूप हैं। उपशमस्वरूप ऐसे पुरुषोंने उपशमके हेतु उनका प्ररूपण किया है, उपदेश दिया है। वह उपशम आत्मार्थ हैं; अन्य किसी प्रयोजन हेतु नहीं हैं। आत्मार्थमें यदि उनका आराधन नहीं किया गया तो उन जिनागमका श्रवण, पठन निष्फलरूप है, यह बात हमें तो निःसन्देह, यथार्थ लगती है। ५६.

❁ एक बड़ी निश्चयकी बात तो मुमुक्षुजीवको यही करना योग्य है कि सत्संग जैसा कल्याणका कोई बलवान कारण नहीं है, और उस सत्संगमें निरन्तर समय-समय निवासकी इच्छा करना, असत्संगका प्रतिक्षण विपरिणाम विचारना वह श्रेयरूप है। यह बात अधिकाधिकरूपसे अनुभवमें लेने जैसी है। ५७.

❁ संसारके प्रति उदासीन रहनेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। ५८.

❁ 'सत्' एक प्रदेश भी असमीप नहीं है, तथापि वह प्राप्त होनेमें अनन्त अन्तराय लोकप्रमाणमें प्रत्येक ऐसे रहे हैं। जीवका कर्तव्य यह है कि अप्रमत्तरूपसे उस 'सत्' का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करनेका अखण्ड निश्चय रखना। ५९.

❁ मुमुक्षुजन सत्संगमें हो तो निरन्तर उल्लसित परिणाम में रहकर आत्मसाधन अल्पकालमें कर सकता है यह बात यथार्थ है, तथा सत्संगके अभावमें समपरिणति रहना विकट है, तथापि ऐसा करनेमें ही आत्मसाधन रहा होनेसे चाहे जैसे बुरे निमित्तमें भी जिस प्रकार समपरिणति आये तदनुसार प्रवर्तना वही योग्य है। ज्ञानीके आश्रय में निरन्तर निवास हो तो सहज साधन द्वारा भी समपरिणाम प्राप्त होता है उसमें तो निर्विवादपना है परन्तु जब पूर्वकर्मके निबंधनसे अनुकूल नहीं ऐसे निमित्तमें निवास प्राप्त हुआ है तब चाहे जिस प्रकार भी उसके प्रति अद्वेष परिणाम रहे ऐसे प्रवर्तना ही हमारी वृत्ति है और यही शिक्षा है। ६०.

❁ समयमात्र भी प्रमाद करनेकी तीर्थकरदेवकी आज्ञा नहीं है। ६१.

❁ प्रमाद कम होनेका उपयोग वह जीव को मार्गके विचारमें स्थिति कराता है और

विचार मार्गमें स्थिति कराता है; यह बात पुनः पुनः विचारकर वह प्रयत्न वहाँ वियोगमें भी किसी प्रकार करना ठीक है। यह बात भूलने योग्य नहीं है। ६२.

❁ प्रत्येक प्रदेश से जीवके उपयोगको आकर्षक ऐसे इस संसारके प्रति एक समयमात्र भी अवकाश लेनेकी ज्ञानी पुरुषोंने स्वीकृति नहीं दी है, उसका निषेध ही किया है। ६३.

❁ संसारसे स्पष्ट प्रीति करनेकी इच्छा होती हो तो उस पुरुषने ज्ञानीके वचन नहीं सुने हैं, अथवा ज्ञानी पुरुषके दर्शन भी उसने नहीं किये हैं ऐसा तीर्थकर कहते हैं। ६४.

❁ जिसकी कमर टूट गई है उसका प्रायः समस्त बल परिक्षीणपनेको भजता है। जिसको ज्ञानी पुरुषके वचनरूप लकड़ीका प्रहार हुआ है उस पुरुषमें तदनुसार संसारसम्बन्धी बल होता है—ऐसा तीर्थकर कहते हैं। ६५.

❁ सबसे स्मरणयोग्य बातें तो अनेक हैं तथापि संसारसे विलकुल उदासीनता, परके अल्प गुणमें भी प्रीति, अपने अल्प दोषमें भी अत्यन्त क्लेश (खेद), दोषके विलयमें वीर्यका अत्यन्त स्फुरित होना, यह बातें सत्संगमें अखण्ड एक शरणागतरूप से ध्यानमें रखने योग्य हैं। जैसे बने वैसे निवृत्तिकाल, निवृत्तिकेन्द्र, निवृत्तिद्रव्य और निवृत्तिभावको भजना। तीर्थकर गौतम जैसे ज्ञानी पुरुषको भी सम्बोधते थे कि समयमात्र भी प्रमाद योग्य नहीं है। ६६.

❁ परमार्थमार्गका लक्षण यह है कि अपरमार्थमार्गको भजते हुए जीव सर्वप्रकारसे कायर होता रहे, सुखमें और दुःखमें। दुःखमें कायरता कदापि अन्य जीवोंकी भी सम्भवित है, परन्तु संसार सुखकी प्राप्तिमें भी कायरता, उस सुखसे उदासीनता, नीरसता, परमार्थमार्गी पुरुषको होती है। ६७.

❁ जिस वस्तुका माहात्म्य दृष्टिमें से गया उस वस्तुके लिये अत्यन्त क्लेश नहीं होता। संसारके प्रति भ्रान्तिसे जाना हुआ सुख वह परमार्थज्ञानसे दुःख ही भासित होता है और जिसे भ्रान्ति भासित हुई उसे फिर उसका क्या माहात्म्य लगेगा? ६८.

❁ जीवको मुख्यमें मुख्य यह बात विशेष ध्यान देने जैसी है कि सत्संग हुआ हो तो सत्संग में सुना हुआ शिक्षाबोध परिणाम प्राप्त करके, सहज ही जीवनमें उत्पन्न हुए कदाग्रहादि दोष तो छूट जाना चाहिये कि जिससे सत्संगका अवर्णवादपना कहनेका प्रसंग अन्य जीवोंको नहीं आयें। ६९.

❁ जीवकी मूढ़ताको बारम्बार, क्षण-क्षण, प्रसंग-प्रसंग पर विचारने में यदि सचेतपना नहीं रखा गया तो ऐसा जोग (सत्संग) बना वह भी वृथा है। ७०.

❁ हमारे चित्तमें तो ऐसा आता है कि मुमुक्षुजीवको इस काल में संसारकी प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना वह उसे संसारसे तिरनेके बराबर है। अनादिकालसे जिसका अभ्यास हुआ है ऐसे इस संसारको स्पष्ट विचारनेका समय प्रतिकूल प्रसंग पर विशेष होता है, यह बात निश्चय करने योग्य है। ७१.

❁ मुझे ऐसा लगता है कि जीवको मूलरूपसे देखने पर यदि मुमुक्षुता आयी हो तो नित्यप्रति उसका संसार बल घटता रहे। संसारमें धनादि सम्पत्ति घटे या नहीं वह अनियत है, परन्तु संसारके प्रति जीवकी भावना मन्द होती रहे और क्रमशः नष्ट होने योग्य हो जाय। ७२.

❁ प्रतिकूल प्रसंगको यदि समतापूर्वक वेदन किया जाय तो जीवको निर्वाणकी समीपताका साधन है। व्यावहारिक प्रसंग तो नित्य चित्र-विचित्र होते रहते हैं। मात्र कल्पनासे उसमें सुख और कल्पना से दुःख ऐसी उनकी स्थिति है। अनुकूल कल्पनासे अनुकूल भासते हैं, प्रतिकूल कल्पना से प्रतिकूल लगते हैं, ज्ञानी पुरुषोंने तो दोनों कल्पनाएँ करनेको मना किया है। ७३.

❁ यद्यपि प्रगटरूपसे वर्तमानमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है, परन्तु जिनके वचनोंके विचारयोगसे शक्तिरूप केवलज्ञान है ऐसा स्पष्ट जाना है, श्रद्धारूपसे केवलज्ञान हुआ है, विचारदशासे केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशासे केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नयके हेतु से केवलज्ञान वर्तता है, वह केवलज्ञान सर्व अव्याबाध सुखका प्रगट करनेवाला, जिसके योगसे सहजमात्रमें जीव प्राप्त करने योग्य हुआ, उन सत्पुरुषके उपकारको सर्वोत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार हो! नमस्कार हो!! ७४.

❁ जो मुमुक्षु जीव गृहस्थ व्यवहार में वर्तते हों उनको तो अखण्ड नीतिका मूल प्रथम ही आत्मामें स्थापित करना चाहिये। नहीं तो उपदेशादिकी निष्फलता होती है। ७५.

❁ आत्माको बारम्बार संसारका स्वरूप कारागृह जैसा प्रतिक्षण भासित होता रहता है, वह मुमुक्षुताका मुख्य लक्षण है। ७६.

❁ जिस व्यवसायके कारण जीवकी भाव निद्रा कम न हो वह व्यवसाय किसी प्रारब्धयोग से करना पड़ता हो तो वह बारम्बार पीछे हटकर, 'बड़ा भयंकर हिंसक दुष्ट कार्य ही यह करता रहता हूँ'—ऐसा बारम्बार विचारकर तथा सम्भवतः जीवमें कमजोरीके कारण ही मुझे यह प्रतिबंध है' इसप्रकार बारम्बार निश्चय करके जितना हो सके उतना व्यवसायको संक्षिप्त करते हुए प्रवर्तन हो तो बोधका फलना संभवित है। ७७.

❁ जीवकी भूलको देखते हुए तो अनन्त विशेष लगती है, परन्तु सर्व भूलकी बीजभूत भूल वह जीवको सर्व प्रथम विचारना चाहिये कि जिस भूलके विचारसे सर्व भूलोंका विचार होता है और जिस भूलके मिटनेसे सर्व भूलें मिट जाती हैं। कोई जीव कदापि नाना प्रकारकी भूलोंका विचार करके उन भूलों से छूटना चाहे तब भी वह कर्तव्य है, और वैसी अनेक भूलोंसे छूटनेकी भावना मूल भूलसे छूटनेका सहज ही कारण होती है। ७८.

❁ जैसे हो वैसे जीवको अपने दोषके प्रति लक्ष करके अन्य जीवोंके प्रति निर्दोष दृष्टि रखकर वर्तना, तथा वैराग्य उपशमका जैसे आराधन हो वैसे करना यह प्रथम स्मरणयोग्य बात है। ७९.

❁ हे जीव! इस क्लेशरूप संसारसे विराम ले! विराम ले! कुछ विचार कर, प्रमाद छोड़कर जागृत हो!! नहीं तो रत्नचिन्तामणि समान यह मनुष्य भव निष्फल जायगा। ८०.

❁ यदि जीवको आरम्भ परिग्रहका प्रवर्तन विशेष रहता हो तब वैराग्य तथा उपशम हो वह भी चले जानेकी सम्भावना है, क्योंकि आरम्भ परिग्रह वह अवैराग्य एवं अनुपशमके मूल हैं। वैराग्य और उपशमके काल हैं। ८१.

❁ सत्संग है वह काम को जलानेका बलवान उपाय है। सर्व ज्ञानी पुरुषोंने काम पर विजय प्राप्त करनेको अत्यन्त दुष्कर कहा है वह बिलकुल सत्य है और ज्यों ज्यों ज्ञानीके वचनका अवगाहन होता है त्यों-त्यों कुछ-कुछ करके उससे विमुख होने पर जीवका वीर्य क्रमशः बलवान होकर कामके सामर्थ्यको नष्ट कर देता है। कामका स्वरूप ही ज्ञानी पुरुषके वचन सुनकर जीवने जाना नहीं है और यदि जाना होता तो उसके सम्बन्धमें बिलकुल नीरसता हुई होती। ८२.

❁ पानी स्वभावसे शीतल होनेपर भी किसी वर्तनमें डालकर नीचे सुलगती अग्नि रखी हो तो उसकी अनिच्छा होने पर भी वह पानी उष्णताको प्राप्त होता है; वैसा यह व्यवसाय, समाधि से शीतल ऐसे पुरुषके प्रति उष्णपनेका हेतु होता है, यह बात हमें तो स्पष्ट लगती है। ८३.

❁ जीवको सत्पुरुषका योग होने पर तो ऐसी भावना होती है कि—अभी तक कल्याणके लिये मैंने जो प्रयत्न किये वे सब निष्फल थे; लक्ष्य रहित बाण जैसे थे; परन्तु अब सत्पुरुषका अपूर्व योग मिला है तो मेरे सर्वसाधन सफल होनेका हेतु है। ८४.

❁ अपनेमें उत्पन्न हुआ हो ऐसा महिमायोग्य गुण उससे उत्कर्ष होना अच्छा नहीं परन्तु अत्य भी निजदोष देखकर पुनः पुनः पश्चात्तापमें पड़ना चाहिये, और बिना प्रमादके उससे विमुख

होना चाहिये—यह सीख ज्ञानी पुरुषोंके वचनमें सर्वत्र रहती है और वह भाव आनेके लिये सत्संग, सद्गुरु और सत्शास्त्रादि साधन कहे हैं; जो अनन्य निमित्त हैं। ८५.

❁ स्त्री, पुत्र, आरम्भ, परिग्रहके प्रसंगों से यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाय तो सत्संग फलद्रुप होनेकी सम्भावना किस प्रकार बनेगी? जिस प्रसंगमें महाज्ञानी पुरुषो सँभालकर चलते हैं उनमें इस जीवको तो अत्यन्त-अत्यन्त सँभालपूर्वक संक्षेपकर चलना चाहिये—यह बात कभी भूलने जैसी नहीं है ऐसा निश्चय करके, प्रत्येक प्रसंगमें, प्रत्येक कार्यमें तथा प्रत्येक परिणाममें उसका लक्ष रखकर उससे छुटकारा हो ऐसा ही करते रहना। ८६.

❁ मुमुक्षुजीव अर्थात् विचारवान जीवको इस संसारमें अज्ञानके अलावा अन्य किसीका भय नहीं होता। एक अज्ञानकी निवृत्तिकी इच्छाके अलावा विचारवान जीवको अन्य कोई इच्छा नहीं होती। ८७.

❁ असार एवं क्लेशरूप आरम्भ-परिग्रहके कार्यमें निवास करते यदि यह जीव किंचित्मात्र भी निर्भय या अजागृत रहे तो अनेक वर्षोंका उपासित वैराग्य भी निष्फल जाय ऐसी दशा हो जाती है—ऐसा नितप्रति निश्चयपूर्वक स्मरण करके निरुपाय स्थितिमें प्रकम्पित चित्तसे लाचारीसे-पराधीनतासे प्रवर्तन करना चाहिये, इस बातका मुमुक्षु जीवको प्रत्येक कार्यमें, प्रतिक्षण और प्रत्येक प्रसंग पर लक्ष रखे बिना मुमुक्षुता रहना दुर्लभ है; और ऐसी दशाका वेदन किये बिना मुमुक्षुपना भी सम्भव नहीं। मेरे चित्तमें वर्तमानमें मुख्य विचार यह वर्तता है। ८८.

❁ जिसप्रकार बंधनसे छूटा जाय तदनुसार वर्तना, यह हितकारी कार्य है। बाह्य परिचयको विचार-विचार कर छोड़ना यह छूटनेका एक प्रकार है। जीव इस बातको जितना विचारेगा उतना ज्ञानी पुरुषका मार्ग समझनेका समय समीप आयागा। ८९.

❁ किसी भी जीवको अविनाशी देहकी प्राप्ति हुई है ऐसा देखा नहीं है, जाना नहीं है और संभवित भी नहीं है; तथा मृत्युका आना अवश्य है ऐसा प्रत्यक्ष निःसंशय अनुभव है। तथापि यह जीव बारम्बार यह बात भूल जाता है यह बड़ा आश्चर्य है। ९०.

❁ आत्मपरिणाम से अन्य पदार्थोंका जितना तादात्म्य-अध्यासका निवर्तन हो उसे श्री जिन त्याग कहते हैं। उस तादात्म्य-अध्यास निवृत्तिरूप त्याग होने हेतु यह बाह्य प्रसंगका त्याग भी उपकारी है, कार्यकारी है। बाह्यप्रसंगके त्याग हेतु अर्न्तत्याग नहीं कहा है;—ऐसा है तथापि इस जीवको अर्न्तत्यागके हेतु बाह्यप्रसंगकी निवृत्तिको किसी प्रकार उपकारी मानना योग्य है। ९१.

❁ सबसे अधिक विचारणीय बात तो इस समय यह है कि उपाधि की जाये और केवल असंग दशा रहे ऐसा होना कठिन है और उपाधि करते हुए आत्मपरिणाम चंचल न हों ऐसा होना असम्भवित जैसा है। उत्कृष्ट ज्ञानीको छोड़कर हम सबको तो आत्मामें जितना असम्पूर्ण-असमाधिपना वर्तता है वह, अथवा वर्त सके वैसा हो उसका उच्छेद करना,—यह बात विशेष लक्षमें लेने योग्य है। १२.

❁ आत्मा सबसे अत्यन्त प्रत्यक्ष है, ऐसा परम पुरुषने किया हुआ निश्चय वह भी अत्यन्त प्रत्यक्ष है। १३.

❁ सर्वकी अपेक्षा जिसमें अधिक स्नेह रहा करता है ऐसा यह शरीर वह रोग, जरादिसे स्वात्माको ही दुःखरूप हो जाता है; तो फिर उससे दूर ऐसे धनादिसे जीवको तथारूप सुखवृत्ति हो ऐसा मानते हुए विचारवानकी बुद्धिको अवश्य क्षोभ होना चाहिये तथा किसी अन्य विचारमें जाना चाहिये, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंने निर्णय किया है वह यथातथ्य है। १४.

❁ जीव सहजस्वरूपसे रहित नहीं है, परन्तु उस सहजस्वरूपका सिर्फ भान जीवको नहीं है; जो होना है वही सहजस्वरूपसे स्थिति है। १५.

❁ वायुकी दिशा बदलनेसे जहाज दूसरी दिशामें खिंचने लगता है, तथापि जहाज चलानेवाला उसे पहुँचनेके योग्यमार्गकी ओर रखनेके प्रयत्नमें ही वर्तता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष मन-वचनादि योगको निजभावमें स्थिति होनेकी ओर ही प्रवर्तित करता है; तथापि उदय-वायुयोगसे यत्किंचित् दशा फेर होती है, तथापि परिणाम प्रयत्न स्वधर्म प्रति ही है। १६.

❁ विचारवानको देह छूटने सम्बन्धी हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिये। आत्मपरिणामका विभावपना वही हानि और वही मुख्य मरण है। स्वभावसन्मुखता तथा उसकी दृढ़ भावना भी उस हर्ष-विवादको दूर कर देती है। १७.

❁ अवश्य इस जीवको प्रथम सर्व साधनोंको गौण जानकर, निर्वाणका मुख्य हेतु ऐसा सत्संग ही सर्वार्पणरूपसे उपासने योग्य है; जिससे सर्वसाधन सुलभ होते हैं;—ऐसा हमारा आत्मसाक्षात्कार है।

वह सत्संग प्राप्त होने पर यदि इस जीवको कल्याण प्राप्त न हो तो अवश्य ही इस जीवका अपराध है; क्योंकि उस सत्संगके अपूर्व, अलभ्य, अत्यन्त दुर्लभ ऐसे योगमें भी उसने उस सत्संगके योगको बाधा पहुँचाने वाले ऐसे निन्दनीय कारणोंका त्याग नहीं किया!! १८.

❖ सत्संगकी अर्थात् सत्पुरुषकी पहिचान होने पर भी वह योग निरन्तर नहीं रहता हो तो सत्संगसे प्राप्त हुआ है ऐसा जो उपदेश उसे प्रत्यक्ष सत्पुरुष तुल्य जानकर विचारना तथा आराधना, कि जिस आराधना से जीवको अपूर्व ऐसा सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। १९.

❖ सत्समागम और सत्शास्त्रके लाभकी इच्छा रखनेवाले ऐसे मुमुक्षुओंको आरम्भ, परिग्रह और रसस्वादादि प्रतिबंध संक्षेप करने योग्य हैं,—ऐसा श्री जिनेन्द्रादि महापुरुषोंने कहा है। जब तक अपने दोषोंको विचारकर कम करनेमें प्रवृत्तिमान न हो तब तक सत्पुरुषका कहा हुआ मार्ग परिणामित होना कठिन है। इस बात पर मुमुक्षु जीवको विशेष विचार करना चाहिये। १००.

❖ सत्संगके अयोगमें उस प्रकारके निमित्ते से दूर रहना चाहिये। प्रतिक्रमण, प्रत्येक प्रसंगमें और प्रत्येक निमित्तमें स्वदशाके प्रति उपयोग लगाना चाहिये। १०१.

❖ हे मुमुक्षु! एक आत्माको जानने पर समस्त लोकालोकको जान लेगा, और सर्व जाननेका फल भी एक आत्मप्राप्ति है, इसलिये आत्मा से भिन्न अन्य भावोंको जाननेकी इच्छा से तू निवर्त और एक निजस्वरूपमें दृष्टि लगा कि जिस दृष्टि से समस्त सृष्टि तुझे ज्ञेयरूपसे अपनेमें दृष्टिगोचर होगी। तत्त्वस्वरूप ऐसे सत्शास्त्रमें कहे हुए मार्गका भी यह तत्त्व है ऐसा तत्त्वज्ञानियोंने कहा है, तथापि उपयोगपूर्वक वह समझमें आना दुर्लभ है। यह मार्ग भिन्न है, और उसका स्वरूप भिन्न है; जैसा सुष्क-ज्ञानीयों कहते हैं वैसा नहीं है। इसलिये जहाँ-तहाँ जाकर क्या पूछता है? क्योंकि उस अपूर्व भावका अर्थ जगह-जगह से प्राप्त होने योग्य नहीं है। १०२.

❖ निमित्तके द्वारा जिसे हर्ष होता है, निमित्तके द्वारा जिसे शोक होता है, निमित्तके द्वारा जिसे इन्द्रियजन्य विषयके प्रति आकर्षण होता है, निमित्तके द्वारा जिसे इन्द्रियोंको प्रतिकूल ऐसे प्रकारोंमें द्वेष होता है, निमित्त द्वारा जिसे उद्वेग होता है, निमित्त द्वारा जिसे कषायका उद्भव होता है,—ऐसे जीवको जितना हो सके उतना उन-उन निमित्तवासी जीवोंके संगका परित्याग करके नितप्रति सत्संग करना चाहिये। १०३.

❖ अनादिसे विपरीत अभ्यास है, इसलिये वैराग्य उपशमादि भावोंकी परिणति एकदम नहीं हो सकती, अथवा कठिन लगती हो तथापि निरन्तर उन भावोंके प्रति लक्ष रखनेसे अवश्य सिद्धि होती है। सत्समागमका योग न हो तब वह भावों जिस प्रकार बढ़ें उस प्रकारके द्रव्य-क्षेत्रादिको उपासना, सत्शास्त्रका परिचय करना योग्य है। सब कार्यकी प्रथम भूमिका विकट होती है, तब अनन्तकालसे अनभ्यस्त ऐसी मुमुक्षुताके लिये वैसा होता है उसमें आश्चर्य नहीं है। १०४.

❁ देखत भूल टले तो सर्व दुःखोंका क्षय हो ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है, तथापि उसी देखत भूलके प्रवाहमें ही जीव बहा जा रहा है, ऐसे जीवोंको इस जगतमें कोई ऐसा आधार है कि जिस आधार से—आश्रयसे वह प्रवाह में न बहे? १०५.

❁ निर्वाणमार्ग अगम अगोचर है, इसमें संशय नहीं है। अपनी शक्ति से, सद्गुरुके आश्रय बिना यह मार्ग ढूँढ़ना असंभव है ऐसा बारम्बार दिखायी देता है इतना ही नहीं परन्तु सद्गुरुचरणके समागमका आराधन नित्य कर्तव्य है। जगतकी घटनाएँ देखकर लगता है कि वैसे समागम और आश्रयके बिना निरालम्ब बोध स्थिर रहना विकट है। १०६.

❁ दृश्यको अदृश्य किया और अदृश्यको दृश्य किया ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका आश्चर्यकारी अनन्त ऐश्वर्य वीर्य वाणी द्वारा कहा जा सकना योग्य नहीं है। १०७.

❁ वीती हुई एक पल भी वापिस नहीं मिलती और वह अमूल्य है, तो फिर सम्पूर्ण आयुस्थिति! एक पलका दूर उपयोग वह अमूल्य कौस्तुभ गुमानेकी अपेक्षा भी विशेष हानिकारक है, तो वैसी साठ पलकी एक घड़ीका हीन उपयोग करनेसे कितनी हानि होनी चाहिये? वैसे ही एक दिन, एक पक्ष, एक मास, एक वर्ष तथा अनुक्रमे सम्पूर्ण आयुस्थितिका हीन उपयोग वह कितनी हानि और कितने अश्रेयका कारण होगा वह विचार शुद्ध हृदयसे तुरन्त आ सकेगा। सुख और आनन्द यह सर्व जीवोंको निरन्तर प्रिय है, तथापि दुःख भोगते हैं उसका क्या कारण होना चाहिये? अज्ञान और उसके द्वारा जीवनका हीन उपयोग। हीन उपयोगको रोकनेकी इच्छा प्रत्येक प्राणीकी होनी चाहिये, परन्तु वह किस साधन द्वारा? १०८.

❁ सर्व प्रकारके भयको रहनेके स्थानरूप इस संसारमें मात्र एक वैराग्य ही अभय है। इस निश्चयमें त्रिकालमें शंका होना योग्य नहीं है। १०९.

❁ उत्कृष्ट सम्पत्तिके स्थान जो चक्रवर्त्यादि पद उन सबको अनित्य देखकर विचारवान पुरुषों उन्हें छोड़कर चल देते हैं, अथवा प्रारब्ध के उदय से वास हुआ तब भी अमूर्च्छित रूपसे तथा उदासीन रूपसे उसे प्रारब्धका उदय समझकर वर्तते हैं—रहे हैं और त्यागका लक्ष रखा है। ११०.

❁ जिन पुरुषोंकी अन्तर्मुख दृष्टि हुई है, उन पुरुषोंको भी सतत जागृतिरूप रहनेकी सीख श्री वीतरागने दी है, क्योंकि अनन्तकालके अध्यासवाले पदार्थोंका संग है वे कुछ भी दृष्टिको आकर्षित करें ऐसा भय रखने योग्य है। ऐसी भूमिकामें इसप्रकारकी सीख उचित है, ऐसा है तो फिर जिसकी विचार दशा है ऐसे मुमुक्षु जीवको सतत जागृति रखना चाहिये—

ऐसा नहीं कहा गया हो? फिर भी स्पष्ट समझा जा सकता है कि मुमुक्षु जीवको जिस-जिस प्रकारसे पर-अध्यास होने योग्य पदार्थादिका त्याग हो उस-उस प्रकारसे अवश्य करना चाहिये। यद्यपि आरम्भ परिग्रहका त्याग वह स्थूल दिखायी देता है तथापि अन्तर्मुखवृत्तिका हेतु होनेसे बारम्बार उसके त्यागका उपदेश दिया है। १११.

❀ जो-जो समझे हैं उन-उनने मेरा-तेरा आदि अहंकार ममकारका शमन कर दिया, क्योंकि कोई भी निजस्वभाव वैसा दिखायी नहीं दिया और निजस्वभाव तो अचिन्त्य अब्यावाधस्वरूप, केवल न्यारा देखा इसलिये उसीमें ही समा गये, आत्माके सिवा अन्यमें स्व-मान्यता थी उसे हटाकर परमार्थतः मौन हुए, वाणी द्वारा यह इसका है इत्यादि कथनरूप व्यवहार, वचनादियोग तक क्वचित् रहा, तथापि आत्मासे यह मेरा है वह विकल्प केवल शांत हो गया, जैसा है वैसा अचिन्त्य स्वानुभव गोचर पदमें लीनता हुई। ११२.

❀ अनंत ज्ञानी पुरुषों द्वारा अनुभव किया हुआ ऐसा शाश्वत सुगम मोक्षमार्ग जीवके लक्षमें नहीं आता, उससे उत्पन्न हुए खेद सहित आश्चर्यका भी यहाँ शमन करते हैं। सत्संग सद्विचारसे शमित होने तकका सर्वपद अत्यन्त सत्य हैं, सुगम हैं, सुगोचर हैं, सहज हैं तथा निःसन्देह हैं। ११३.

❀ असंग ऐसा आत्मस्वरूप सत्संगके योगसे सबसे सुलभरूपसे ज्ञात होने योग्य है उसमें संशय नहीं है। सत्संगका माहात्म्य सर्व ज्ञानी पुरुषोंने अतिशय करके कहा है, वह यथार्थ है। उसमें विचारवानको किसी प्रकार विकल्प होने योग्य नहीं है। ११४.

❀ ज्ञानीकी वाणी पूर्वापर अविरोध, आत्मार्थ उपदेशक अपूर्व अर्थका निरूपण करनेवाली होती है; और अनुभव सहित होनेसे आत्मा को निरन्तर जागृत करती है, शुष्कज्ञानीकी वाणीमें उसरूप गुण नहीं होते; सबसे उत्कृष्ट गुण जो पूर्वापर अविरोधपना वह शुष्कज्ञानीकी वाणीमें वर्तने योग्य नहीं है, क्योंकि यथास्थित पदार्थ-दर्शन उसको नहीं होता, इसलिये उसकी वाणी स्थान-स्थान कल्पना युक्त होती है। ११५.

❀ मैं देहादिस्वरूप नहीं हूँ तथा देह, स्त्री, पुत्रादि कोई भी मेरे नहीं हैं; मैं चैतन्यस्वरूप अविनाशी ऐसा आत्मा हूँ—इसप्रकार आत्मभावना करनेसे राग-द्वेषका क्षय होता है। ११६.

❀ जिसकी मृत्युके साथ मित्रता हो, अथवा जो मृत्युसे भागकर छूट सके ऐसा हो, या फिर जिसे निश्चय हो कि मैं मरूँगा ही नहीं, वह भले ही सुख से सोये। ११७.

❀ शरीर किसका है? मोहका है; इसलिये असंग भावना रखना योग्य है। ११८.

❁ विचारवान पुरुषों तो कैवल्यदशा होनेतक मृत्युको नित्य समीप ही समझकर प्रवर्तता है। ११९.

❁ अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्ति करानेके अतिरिक्त अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है। १२०.

❁ आत्मा है। आत्मा अत्यन्त प्रगट है; क्योंकि स्वसंवेदन प्रगट अनुभवमें है। १२१.

❁ अनेक स्थानों पर विचारवान पुरुषोंने ऐसा कहा है कि ज्ञान होने पर काम, क्रोध, तृष्णादि भाव निर्मूल होते हैं। वह सत्य है तथापि उन वचनोंका ऐसा परमार्थ नहीं है कि ज्ञान होनेसे पूर्व वे मन्द नहीं पड़ेंगे या कम नहीं होंगे। मूलसहित छेद तो ज्ञानद्वारा ही होता है, परन्तु कषायोंकी मन्दता या न्यूनता न हो तबतक ज्ञान सम्भवतः उत्पन्न ही नहीं होता। ज्ञान प्राप्त होनेमें विचार मुख्य साधन है और उस विचारको वैराग्य तथा उपशम दो मुख्य आधार हैं; ऐसा जानकर उनका निरन्तर लक्ष रखकर वैसी परिणति करनी चाहिये। १२२.

❁ कठिनाईसे आजीविका चलती हो तब भी मुमुक्षु को वह बहुत है; क्योंकि विशेषतामें कुछ अवश्य उपयोग नहीं है।—ऐसा जब तक निश्चय में न लाया जाय तब तक तृष्णा नाना प्रकारसे आवरण करती रहती है। लौकिक विशेषतामें कोई सारभूतपना नहीं है—ऐसा निश्चय किया जाय तो कठिनाईसे आजीविका जितना मिलता हो तब भी तृप्ति रहे। अपर्याप्त आजीविका जितना मिलता हो तथापि मुमुक्षु जीव सम्भवतः आर्तध्यान नहीं होने देगा, अथवा हो जाय तो उस पर विशेष खेद करेगा और आजीविकामें टूटता हुआ धन उपार्जन करने की मन्द कल्पना करे। इस प्रकारसे वर्तते हुए तृष्णाका पराभव होने योग्य दिखता है। १२३.

❁ जब तक अल्प उपाधिवाले क्षेत्रमें आजीविका चलती हो तब तक विशेष प्राप्त करनेकी कल्पनासे मुमुक्षुको किसी एक विशेष अलौकिक हेतुके बिना अधिक उपाधिवाले क्षेत्रमें नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उससे अनेक सद्वृत्तियाँ मन्द हो जाती हैं, अथवा वर्धमान नहीं होतीं। १२४.

❁ अनियमित और अल्पायुवाले इस शरीरसे आत्मार्थका लक्ष सर्वप्रथम कर्तव्य है। १२५.

❁ जिसे सत्पुरुषकी आज्ञामें वर्तनेका दृढ़ निश्चय वर्तता है और जो उस निश्चयको आराधता है, उसी ही को ज्ञान सम्यक्परिणामी होता है, यह बात आत्मार्थी जीवको अवश्य लक्षमें रखने योग्य है। हमने यह जो वचन लिखे हैं उनके सर्व ज्ञानी पुरुष साक्षी हैं। १२६.

❁ अनन्तवार देहके लिये आत्माको गलाया है। जो देह आत्माके अर्थ गलेगी उस

देहसे आत्मविचार जन्म पाने योग्य जानकर, सर्व देहार्थ की कल्पना छोड़कर एकमात्र आत्मार्थमें ही उसका उपयोग करना,—ऐसा निश्चय मुमुक्षु जीवको अवश्य होना चाहिये। १२७.

❖ जो ज्ञान महा निर्जराका हेतु होता है वह ज्ञान अनधिकारी जीवके हाथमें जानेसे सम्भवतः उसके लिये अहितकारी होकर परिणमता है। १२८.

❖ शरीरमें वेदनीयका अशातारूपसे परिणमन हुआ हो उस समय शरीरके विपरिणामी स्वभावका विचार करके उस शरीर और शरीरके सम्बन्धसे प्राप्त हुए स्त्री-पुत्रादिका मोह विचारवान पुरुष छोड़ देते हैं, अथवा उस मोहको मन्द करनेमें प्रवर्तते हैं। १२९.

❖ जब तक यह जीव लोककी दृष्टिका वमन न कर दे तथा उसमेंसे अन्तर्वृत्ति छूट न जाय तबतक ज्ञानीकी दृष्टिका वास्तविक माहात्म्य लक्षगत नहीं हो सकता इसमें संशय नहीं है। १३०.

❖ ज्ञानियोंने मनुष्यभवको चिन्तामणिरत्नतुल्य कहा है, उसका विचार करो तो प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। विशेष विचारने पर तो उस मनुष्य भवका एक समय भी चिन्तामणिरत्नसे परम माहात्म्यवान और मूल्यवान दिखता है और यदि देहार्थमें ही वह मनुष्यपना व्यतीत हुआ तो वह एक फूटी बादाम के मूल्यका नहीं है, ऐसा निःसन्देह दिखायी देता है। १३१.

❖ यदि सफलता का मार्ग समझमें आ जाय तो इस मनुष्यशरीरका एक समय भी सर्वोत्कृष्ट चिन्तामणि है—इसमें संशय नहीं है। १३२.

❖ मुमुक्षु जीवको लौकिक कारणोंमें अधिक हर्ष-विषाद नहीं करना। १३३.

❖ शरीरका और प्रारब्धोदय जबतक बलवान हो तबतक शरीर सम्बन्धी कुटुम्ब कि जिसका भरणपोषण करनेका सम्बन्ध छूटे ऐसा न हो तबतक अर्थात् गृहवास पर्यंत जिसका भरणपोषण करना चाहिये उसका भरणपोषण मात्र मिलता हो तो उसमें सन्तोष प्राप्त करके मुमुक्षु जीव आत्महितका ही विचार करे तथा पुरुषार्थ करे। शरीर और शरीर सम्बन्धी कुटुम्बके माहात्म्यादि के अर्थ परिग्रहादिकी परिणामपूर्वक स्मृति भी न होने दे; क्योंकि वह परिग्रहादिकी प्राप्ति आदि कार्य ऐसे हैं कि आत्महितका अवसर ही सम्भवतः प्राप्त न होने दें। १३४.

❖ अल्प आयु और अनियत प्रवृत्ति, असीम बलवान असत्संग, पूर्वका अनाराधकपना, बलवीर्यकी हीनता, ऐसे कारणोंसे रहित कदाचित् ही कोई जीव होगा, ऐसे इस कालमें पहले कभी नहीं जाना, कभी प्रतीति नहीं की, कभी आराधना नहीं की तथा कभी स्वभावसिद्ध

नहीं हुआ ऐसा “मार्ग” प्राप्त करना दुष्कर हो उसमें आश्चर्य नहीं है; तथापि जिसने उसे प्राप्त करनेके सिवा अन्य कोई लक्ष ही नहीं रखा हो वह इस काल में भी अवश्य उस मार्ग को प्राप्त करता है। १३५.

❁ सर्व देहधारी जीव मरणके पास शरणरहित हैं। मात्र उस देहका स्वरूप पहलेसे ही जानकर उसका ममत्व छोड़कर निजस्थिरताको अथवा ज्ञानीके मार्गकी यथार्थ प्रतीतिको प्राप्त हुए हैं वे ही जीव उस मरणकालमें शरणसहित होनेसे सम्भवतः पुनः देह धारण नहीं करते, अथवा मरणकालमें शरीरके ममत्वभावकी अल्पता होनेसे भी निर्भय वर्तते हैं। शरीर छूटनेका काल अनियत होनेसे विचारवान पुरुषों अप्रमादरूपसे पहले से ही उसके ममत्वको निवृत्त करनेका अविरोद्ध उपाय करते हैं और वही लक्ष तुम्हें, हमें सबको रखना योग्य है। प्रीतिबंधनसे खेद होना योग्य है, तथापि उसमें अन्य कोई उपाय नहीं होने से उस खेदको वैराग्यस्वरूपमें परिणमित करना ही विचारवानका कर्तव्य है। १३६.

❁ लोकदृष्टि में जो-जो बातें या वस्तुएँ बड़प्पनवाली मानी जाती हैं, वे-वे बातें और वस्तुएँ, शोभायमान गृहादि आरम्भ, अलंकारादि परिग्रह, लोकदृष्टिकी विचक्षणता, लोकमान्य धर्मश्रद्धावानपना, प्रत्यक्ष विषका ग्रहण है, —ऐसा यथार्थ ज्ञात हुए बिना जैसा मानते हो उस वृत्तिका लक्ष नहीं होगा। पहले उन बातों और वस्तुओं के प्रति विषदृष्टि आना कठिन देखकर कायर न होकर पुरुषार्थ करना योग्य है। १३७.

❁ मुमुक्षुको पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मानुसार आजीविकादि प्राप्त होंगे ऐसा विचारकर मात्र निमित्तरूप प्रयत्न करना चाहिये, परन्तु भयाकुल होकर चिन्ता अथवा न्यायत्याग नहीं करना, क्योंकि प्राप्ति शुभाशुभ प्रारब्धानुसार है। प्रयत्न व्यावहारिक निमित्त है, इसलिये करना चाहिये, परन्तु चिन्ता तो मात्र आत्मगुणरोधक है। १३८.

❁ उत्कृष्टमें उत्कृष्ट व्रत, उत्कृष्टमें उत्कृष्ट तप, उत्कृष्टमें उत्कृष्ट नियम, उत्कृष्टमें उत्कृष्ट लब्धि, उत्कृष्टमें उत्कृष्ट ऐश्वर्य—यह सब जिसमें सहज ही समाते हैं—ऐसे निरपेक्ष अविषम उपकारको नमस्कार। यही ध्यान। १३९.

❁ राग-द्वेष के प्रत्यक्ष बलवान निमित्तों प्राप्त होने पर भी जिनका आत्मभाव किंचित्मात्र भी क्षोभको प्राप्त नहीं होता, उन ज्ञानीके ज्ञानका विचार करने पर भी महा निर्जरा होती है, इसमें संशय नहीं है। १४०.

❁ आरम्भ और परिग्रहका इच्छापूर्वक प्रसंग हो तो आत्मलाभको विशेष घातक है,

तथा बारम्बार अस्थिर, अप्रशस्त परिणामका हेतु है इसमें तो संशय नहीं है; परन्तु जहाँ अनिच्छासे उदयके किसी एक योगसे प्रसंग वर्तता हो वहाँ भी आत्मभावकी उत्कृष्टताको बाधक तथा आत्मस्थिरताको अन्तराय करनेवाले उस आरम्भ-परिग्रहका प्रसंग प्रायः होता है, इसलिये परमकृपालु ज्ञानी पुरुषोंने त्यागमार्गका उपदेश दिया है, वह मुमुक्षुजीवको अंशतः एवं सर्वथा अनुसरण करने योग्य है। १४१.

❁ कोई पुरुष स्वयं विशेष सदाचार तथा संयममें प्रवर्तता है, उसके समागममें आने की इच्छा रखनेवाले जीवोंको उस पद्धतिके अवलोकनसे जैसा सदाचार और संयमका लाभ होता है, वैसा लाभ विस्तृत उपदेश से भी सम्भवतः नहीं होता, यह लक्ष रखने योग्य है। १४२.

❁ 'मोहनीय' का स्वरूप इस जीवको बारम्बार अत्यन्त विचारने जैसा है। मोहनीने महा मुनीश्वरोंको भी पलभर में अपने पाशमें फँसाकर अत्यन्त ऋद्धिसिद्धिसे विमुक्त कर दिया है, शाश्वत सुख छीनकर क्षणभंगुरतामें ललचाकर भटकाया है। १४३.

❁ श्रुत अल्प हैं, मत-मतांतर अधिक हैं, समाधानके कुछेक साधन परोक्ष हैं, महात्मा पुरुष क्वचित् हैं तथापि हे आर्यजनो! सम्यग्दर्शन, श्रुतका रहस्य ऐसा परमपदका पंथ, आत्मानुभवका हेतु सम्यक्चारित्र एवं विशुद्ध आत्मध्यान आज भी विद्यमान है, यह परम हर्षका कारण है। १४४.

❁ सर्व जीवोंको हितकारी ऐसी ज्ञानी पुरुषोंकी वाणीको किंचित् भी एकान्तदृष्टि ग्रहण करके अहितकारी अर्थमें नहीं उतारना, यह उपयोग निरन्तर स्मरणमें रखने योग्य है। १४५.

❁ अटल अनुभवस्वरूप आत्मा सर्व द्रव्योंसे प्रत्यक्ष भिन्न भासित होना वहाँसे मुक्तदशा वर्तती है। वह पुरुष मौन होता है, वह पुरुष अप्रतिबद्ध होता है, वह पुरुष असंग होता है, वह पुरुष निर्विकल्प होता है और वह पुरुष मुक्त होता है। १४६.

❁ परम योगी ऐसे श्री ऋषभदेवादि पुरुष भी जिस देहको नहीं रख सके उस देहमें एक विशेषता है, वह यह कि जबतक उसका सम्बन्ध वर्तता है तबतक जीवको असंगपना, निर्मोहपना करके अबाध्य अनुभवस्वरूप ऐसे निजस्वरूपको जानकर, अन्य सर्वभावोंकी ओरसे व्यावृत्त (पृथक्) हो जाना, कि जिससे पुनः जन्म-मरणका फेरा न रहे। देह छोड़ते समय जितने अंशमें असंगपना, निर्मोहपना, यथार्थ समरसपना रहता है उतना मोक्षपद निकट है—ऐसा परमज्ञानी पुरुषोंका निश्चय है। १४७.

❁ लोकसंज्ञा जिसके जीवनका ध्रुवकाँटा है, वह जीवन चाहे जितनी श्रीमन्तता, सत्ता या कुटुम्ब-परिवारादिके योगवाला हो, तथापि वह दुःखका ही हेतु है। आत्मशान्ति जिस जीवनका ध्रुवकाँटा है वह जीवन भले ही एकाकी, निर्धन, निर्वस्त्र हो तथापि परम समाधिका स्थान है। १४८.

❁ केवल अन्तर्मुख होनेका सत्पुरुषोंका मार्ग सर्व दुःखक्षयका उपाय है, परन्तु वह किसी जीवकी समझमें आता है। महत् पुण्यके योगसे, विशुद्ध मतिसे, तीव्र वैराग्यसे तथा सत्पुरुषके समागमसे वह उपाय समझमें आने योग्य है। वह समझनेका अवसर एकमात्र यह मनुष्यभव है; वह भी अनियमित कालके भयसे गृहीत है; वहाँ प्रमादका होना वह खेद और आश्चर्य है। १४९.

❁ लोकदृष्टि और ज्ञानीकी दृष्टिमें पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। ज्ञानीकी दृष्टि प्रथम तो निरालम्बी है, रुचि उत्पन्न नहीं करती, जीवकी प्रकृतिसे उसका मेल नहीं है, इसलिये जीव उस दृष्टिमें रुचिवान नहीं होता; परन्तु जिन जीवोंने परिषह सहन करके अल्प कालतक उस दृष्टिकी आराधना की है, वे सर्व दुःखके क्षयरूप निर्वाणको प्राप्त हुए हैं; उसके उपायको प्राप्त हुए हैं। १५०.

❁ मुमुक्षुता जैसे दृढ़ हो वैसा करो; हारने का अथवा निराश होनेका कोई कारण नहीं है। दुर्लभ योग प्राप्त हुआ तो फिर थोड़ा प्रमाद छोड़ देनेमें जीवको आकुलित या निराश होने जैसा कुछ भी नहीं है। १५१.

❁ जगतके सर्व जीव कुछ न कुछ पानेमें सुखकी इच्छा रखते हैं; महान चक्रवर्ती राजा भी बढ़ते हुए वैभव एवं परिग्रहकी वृद्धिमें प्रयत्नवान हैं और उसे पानेमें सुख मानते हैं; परन्तु अहो! ज्ञानियोंने तो उससे विपरीत ही सुखका मार्ग निर्णीत किया है कि किंचित् मात्र ग्रहण करना ही सुखका नाश है। १५२.

❁ जैसा शरीरके प्रति वस्त्रका सम्बन्ध है, वैसा ही आत्माके प्रति जिसने शरीरका सम्बन्ध यथातथ्य देखा है, म्यानके प्रति तलवारका जैसा सम्बन्ध है वैसा शरीरके प्रति जिसने आत्माका सम्बन्ध देखा है, अबद्धस्पृष्ट आत्माका जिसने अनुभव किया है उन महत्पुरुषोंको जीवन और मरण दोनों समान हैं। १५३.

❁ जो पुरुष शरीरादिके सम्बन्धमें हर्ष-विषाद नहीं करते वे पुरुषों पूर्ण द्वादशांगको संक्षेपमें समझे हैं ऐसा समझो। वही दृष्टि कर्तव्य है। १५४.

❁ मेरी चित्तवृत्ति इतनी शांत हो जाओ कि कोई वृद्ध मृग—जिसके मस्तकमें खुजली आती हो वह इस शरीरको जड़ पदार्थ मानकर अपना मस्तक खुजली मिटानेके लिये इस शरीरसे धिसे! १५५.

❁ जैसे हो सके वैसे वीतरागश्रुतका अनुप्रेक्षण (चिन्तवन) विशेष कर्तव्य है। प्रमाद परम रिपु है; यह वचन जिनको सम्यक् रूपसे निश्चित हुआ है वे पुरुष कृतकृत्य होने तक निर्भयरूपसे वर्तने के स्वप्नकी भी इच्छा नहीं करते। १५६.

❁ जिज्ञासाबल, विचारबल, वैराग्यबल, ध्यानबल तथा ज्ञानबलमें वृद्धि होनेके अर्थ आत्मार्थी जीवको सच्चे ज्ञानी पुरुषका समागम विशेष रूपसे उपासने योग्य है। उसमें भी वर्तमानकालके जीवोंको उस बलकी दृढ़ छाप पड़ जानेमें अनेक अंतराय दिखायी देती है, जिससे तद्रूप शुद्ध जिज्ञासुवृत्तिसे दीर्घकाल पर्यंत सत्समागम उपासनेकी आवश्यकता रहती है। सत्समागमके अभावमें वीतरागश्रुत—परमशांतरस प्रतिपादक वीतराग वचनोंकी अनुप्रेक्षा बारम्बार कर्तव्य है। चित्त स्थिरताके लिये वह परम औषधि है। १५७.

❁ बोध कब परिणमित हो सकता है—यह भाव आत्मार्थीको स्थिरचित्तसे विचारने योग्य है; जो कि मूलभूत है।

अमुक असद्वृत्तियोंका प्रथम अवश्य निरोध करना योग्य है। जो निरोधके हेतुका दृढ़ता से अनुसरण करना ही चाहिये, उसमें प्रमाद योग्य नहीं है। १५८.

❁ ज्यों—ज्यों इन्द्रिय निग्रह, ज्यों—ज्यों निवृत्तियोग त्यों—त्यों वह सत्समागम और सत्शास्त्र अधिकाधिक उपकारी होते हैं। १५९.

❁ साता-असाता का उदय या अनुभव प्राप्त होनेके मूल कारणोंकी गवेषणा करने पर उन महत्पुरुषोंको ऐसी विलक्षण सानन्दाश्चर्य वृत्ति उद्भव होती थी कि साताकी अपेक्षा असाताका उदय सम्प्राप्त होने पर और उसमें भी तीव्ररूपसे वह उदय सम्प्राप्त होने पर उनका वीर्य विशेषरूपसे जागृत होता, उल्लसित होता और वह समय विशेषरूपसे कल्याणकारी लगता था। १६०.

❁ तद्रूप महात्माके एक आर्यवचनकी सम्यक् प्रकारसे अवधारणा होने पर अवश्य मोक्ष होगा ऐसा श्रीमान् तीर्थकरने कहा है वह यथार्थ है। इस जीवमें तद्रूप योग्यता होना चाहिये। १६१.

❁ चक्रवर्तीकी समस्त सम्पत्तिकी अपेक्षा जिसका एक समयमात्र भी विशेष मूल्यवान

है ऐसा यह मनुष्यशरीर तथा परमार्थके अनुकूल ऐसे योग सम्प्राप्त होने पर भी यदि जन्म-मरणसे रहित ऐसे परमपदका ध्यान नहीं रहा तो इस मनुष्यत्वको अधिष्ठित ऐसे आत्माको अनन्तवार धिक्कार हो! १६२.

❁ चिन्तित जिससे प्राप्त हो उस मणिको चिन्तामणि कहा है। यही यह मनुष्यदेह है कि जिस देहके योगमें आत्यन्तिक ऐसे सर्व दुःखके क्षयकी भावना की जाय तो वह पूरी होती है।

❁ अचिन्त्य जिसका माहात्म्य है ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर भी जीव दरिद्र (अज्ञानी) रहे, ऐसा हो तो इस जगतमें वह ग्यारहवाँ आश्चर्य ही है। १६३.

❁ जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य है। १६४.

❁ ज्ञानी जगतको तृणवत् मानते हैं, यह उनके ज्ञानकी महिमा जानना। १६५.

❁ इन्द्रियविषयरूपी क्षेत्रकी दो अंगुल जमीन जीतनेमें आत्मा असमर्थपना बतलाता है और सारी पृथ्वी जीतनेका सामर्थ्य मानता है; यह कैसा आश्चर्यरूप है! १६६.

❁ अज्ञानी जन ऐसी हीन पुरुषार्थकी बात करते हैं कि आजकल 'केवलज्ञान नहीं है', 'मोक्ष नहीं है'। ज्ञानीका वचन पुरुषार्थकी प्रेरणा देता है। अज्ञानी शिथिल हैं, इसलिये ऐसे हीन पुरुषार्थके वचन कहते हैं। पंचमकालकी, भवस्थितिकी, देहदुर्बलताकी अथवा आयुसम्बन्धी बातें कभी मनमें नहीं लाना, और पुरुषार्थ कैसे होगा ऐसी वाणी भी नहीं सुनना चाहिये। १६७.

❁ निर्धन कौन? जो धनकी याचना-इच्छा करे वह निर्धन; जो नहीं माँगे वह धनवान है। जिसे विशेष लक्ष्मीकी तृष्णा, लालसा, बळतरा है उसे किंचित् भी सुख नहीं है। लोग मानते हैं कि धनवान सुखी हैं। वास्तवमें तो उसे रोम-रोममें जलन है। इसलिये तृष्णाको कम करना। १६८.

❁ पाँच कारण मिलें तब मुक्त होता है। वे पाँचों कारण पुरुषार्थमें विद्यमान हैं। अनन्त चौथेकाल मिलें, परन्तु स्वयं यदि पुरुषार्थ करे तभी मुक्ति प्राप्त होती है। जीवने अनन्तकालसे पुरुषार्थ नहीं किया है। सब मिथ्या आलम्बन लेकर मार्गमें विघ्न डाले हैं। कल्याणवृत्तिका उदय हो तब भवस्थिति पक गई जानना। शौर्य हो तो वर्षका कार्य दो घड़ीमें किया जा सकता है। १६९.

❁ खारी जमीनमें वर्षा हो तो क्या काम आयगी? वैसे ही जबतक उपदेशकी बात आत्मामें परिणमित न हो ऐसी स्थितिमें वह किस कामकी? जबतक उपदेशकी बात आत्मामें

परिणमित न हो तबतक वह बारम्बार सुनना, विचारना, उसका पीछा नहीं छोड़ना, कायर नहीं होना; कायर होगा तो आत्मा ऊपर नहीं आयगा। ज्ञानका अभ्यास जैसे भी हो बढ़ाना; अभ्यास करते रहना, उसमें कुटिलता या अहंकार नहीं रखना। १७०.

❁ दृष्टि विष जानेके पश्चात् कोई भी शास्त्र, कोई भी अक्षर, कोई भी वचन, कोई भी स्थल प्रायः अहितका कारण नहीं होता। १७१.

❁ बुद्धिबलसे निर्णीत किया हुआ सिद्धान्त उससे भी विशेष बुद्धिबल अथवा तर्कसे कदाचित् बदल सकता है; परन्तु जो वस्तु अनुभवगम्य (अनुभवसिद्ध) हुई है वह त्रिकालमें नहीं बदल सकती। १७२.

❁ 'हम समझ गये हैं', 'हम शांत हैं'—ऐसा कहते हैं वे तो ठगा गये हैं। १७३.

❁ असाताके उदयमें ज्ञानकी कसौटी होती है। १७४.

❁ परिणामोंकी धारा वह 'थर्मोमीटर' के समान है। १७५.

❁ जो दृढ़ निश्चय करे कि चाहे जो करूँ—विषपान करूँ, पर्वतसे गिरूँ, कुएँ में कूदूँ, परन्तु जिसमें कल्याण हो वही करूँगा, उसका ज्ञातृत्व सच्चा है, वही तिरनेका कामी कहा जाता है। १७६.



हित-शिक्षा

[प्रभातना पुष्पो (गुजराती)से साभार उद्धृत]

१. तेरा क्या होगा ?

हे आत्मन्! भवांतरसे लाये हुए पुण्य खाये जा रहा है, धर्मोपार्जनका व्यवस्थित उद्यम करता नहीं है; परभवमें तेरा क्या होगा ?

मायामें अकुलाया, ममतामें मरा, तृष्णामें बहा, आशामें अटका, जीवन बहा जा रहा है; विचार कर, तेरा क्या होगा ?

विषयोंके अपवित्र गड्ढेमें गिरा, कषायोंकी कठिन जालमें जकड़ा गया, धर्मको हृदयमें धारण नहीं किया, बिना धर्मके तेरा क्या होगा ?

पापकार्योंमें चतुराई, धर्मके कार्यमें उत्साहरहित, प्रमादका पार नहीं, आत्मकल्याणमें आलस्य, तेरा क्या होगा ?

सच्चे देव-गुरुको बराबर पहिचानना नहीं, उनकी उत्तम सेवासे वंचित रहना, धर्मकी आवश्यकता पर ध्यान नहीं देना; आगे-पीछेका विचारकर, समझ, नहीं तो तेरा क्या होगा ?

कंचन और कामिनी दोनोंको ही जीवनका आदर्श माना, उनके पीछे जीवनकी सर्व शक्तियोंको होमता है, परमात्माके जगत् श्रेष्ठ तत्त्वको जानने तथा जीवनमें उतारनेका किंचित् भी विचार करके प्रयत्न नहीं करता, तो चेतन! तेरा क्या होगा ?

पाँचों इन्द्रियोंकी परवशतामें पड़कर, मौज शौकमें लीन होकर अनेक कार्योंमें जाने-अनजाने फँस जाता है। अरे! इन्द्रियोंके गुलाम! विषय विषवृक्षके कीड़े! तेरा क्या होगा ?

व्यसन प्रिय लगते हैं, आरम्भादिकमें आगे बढ़नेमें ही प्रगति मानता है, विपर्यासमें भटकते हुए पामर जीव! तेरा क्या होगा ?

(प्रत्येक आत्मार्थीको एकान्तमें अपने आत्मासे यह प्रश्न पूछना, उनका उत्तर लेना, धर्ममार्गमें निश्चल बनना। सर्व जीव परम कल्याणको प्राप्त करो!!)

२. तब तू क्या करेगा ?

हे बुद्धिमान मानव !

जब शरीर रोगोंसे घिर जायगा, प्रियजनोके अनेक उपाय निष्फल होंगे, वैद्य-डॉक्टर अपने अन्तिम उपाय करके जब निष्फल बनेंगे, सब स्नेहीजन जब दुःखमग्न हो जायेंगे और अन्तिम घड़ियाँ गिनी जा रही होंगी, तब तू क्या करेगा ?

साँस घुटती होगी, नाड़ियाँकी गति बदल जायगी, कोई भिन्न प्रकारका दुःखद वातावरण हो जायगा, दसों दिशाओंमें दृष्टि डालने पर भी कोई रक्षक दिखायी नहीं देगा, तब तू क्या करेगा ?

पापके पोटले बाँधकर कमाया हुआ धनके भंडार, बड़े-बड़े बँगले, मोटरें, बगीचे, कारखानोंसे जब क्षणभरमें सदाके लिये अलग होनेका अचानक अवसर आ जायगा, तब तू क्या करेगा ?

प्राणोंसे प्यारी मानी हुई पत्नी, छोटे-छोटे बच्चे तथा स्नेही-सम्बन्धियोंके मधुर सहवासमेंसे जब सदाके लिये बिछुड़नेका कठिन समय आ जायगा, तब तू क्या करेगा ?

अथवा तो—

सिर गंजा हो जायगा, कानोंसे कम सुनाई देगा, आँखोंसे बराबर दिखेगा नहीं, पानी गिरेगा, नाकमेंसे नाक बहने लगेगी, मूँहसे लार टपकेगी, खाँसी और दमसे छाती भर जायगी, हाथ-पैरोंकी शक्ति कम हो जायगी, कमर मुड़ गई होगी, लकड़ीका सहारा लिये बिना चल नहीं पायगा, सब तिरस्कार करेंगे, बिलकुल परवश हो जायगा, जीवन कठिन बनेगा, स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ जायगा, एक भी इच्छा पूरी नहीं कर सकेगा, दुःखसे छूटनेके लिये मृत्युको बुलायगा, तब तू क्या करेगा ?

हे विचारक प्राणी !

ऐसी सब घटनाएँ दुनियामें रोज होती दिखती हैं, बड़ेबड़ोंकी भी ऐसी स्थिति होती तुझे दिखायी देती है। जवानीके जोशमें तथा धनके मदमें फिरनेवालोंके भी इसी जन्ममें बुरे हाल होते देखे हैं। तेरी दशा ऐसी नहीं होगी—ऐसे झूठे विश्वासमें मत बैठे रहना ?

विषम दशामें दीनता न आये, हाहाकार न करना पड़े और अशान्तिमें भी शान्तिका अनुभव हो उसके लिये कुछ विचार कर ले। पानी आनेसे पहले पाल बाँध लेनेवाला समझदार

माना जाता है। तालाब फूट गया और पाल नहीं बाँध पाया तो मनकी मनमें रह जायगी; सब मनोरथ मिट्टीमें मिल जायेंगे, आशा निराशामें बदल जायगी। उस समय पछतानेका पार नहीं रहेगा। अच्छी अवस्थामें मिली हुई शक्तियोंका सदुपयोग कर लेनेका विचार कर, सर्व अवस्थाओंमें काम आये और सर्वत्र निश्चित बनाये ऐसा पाथेय भर ले; प्रमाद-निद्रामेंसे जागरणमें आजा, फिर कोई दशा तुझे सतायगी नहीं, सदा सुख और शान्ति तुझे छोड़ेगे नहीं, तू पूर्णानन्दका अनुभव करनेवाला हो जायगा।

वैराग्य एवं तत्त्वज्ञानका अभ्यास—यह दोनों सच्चा आनन्द देनेवाले उच्चसे उच्च साधन हैं। निरन्तर उनका आश्रय लेकर कल्याण साध ले! शान्ति सदा तेरा वरण करेगी।

३. अब चेतना है ?

पुण्यवान प्राणी! आत्माको जाने-समझे बिना तूने दीर्घकाल व्यर्थ गँवाया है—अब चेतना है ?

गर्भावासमें नौ महीने औंधे मुँह लटकता रहा, बचपन धूल और विष्टासे खेलनेमें, जवानी उन्मादमें, वृद्धावस्था चिन्तामें व्यतीत की—अब चेतना है ?

रोग आक्रमण करते हैं, मनकी पीड़ा बढ़ती जाती है, जरा-राक्षसी खाजानेके लिये मुँह फाड़े खड़ी है, यमराजका तीक्ष्ण खड्ग सिर पर लटक रहा है—अब चेतना है ?

धनके लिये बहुत दौड़ा, इन्द्रियोंकी गुलामी बहुत की, प्रियतमाके पासमें फँसा रहा, कुटुम्बके स्वार्थी स्नेहमें उलझा, आत्माको सँभालनेका क्षणमात्र भी विचार नहीं किया—अब चेतना है ?

ममतामें अकुलाया, रागमें रँगा रहा, द्वेषमें डूबा रहा, क्रोधमें कुटता रहा, मानसे मरा, माया जालमें फँसा, लोभमें लिपटा—अब चेतना है ?

आत्माको भूला, ज्ञानीकी सेवा नहीं की, सत्संग साधा नहीं, इन्द्रियोंको अंकुशमें नहीं रखा, आयु अल्प, उपाधि अधिक, चेतन! अब चेतना है ?

अभी बाजी हाथमें है, आत्माके प्रति दृष्टि देनेमें प्रभुका मार्गका विचार कर। ज्ञान, वैराग्य, सत्य, संयम, शान्ति, क्षमा, दया आदि गुणरत्नोंको प्राप्त करनेके लिये आजसे ही तैयार हो जा। वैराग्य और उत्तम तत्त्वज्ञान इन दोनों साधनोंसे पार हो जायगा। उन्हें प्राप्त करनेका सच्चा उद्यम कर। अन्तमें विजय आत्माकी है।

४. अब समझले तो अच्छा !

हे चिदानन्दघन आत्मन् ! मोहकी मदिरासे मस्त बनकर मूर्खतापूर्ण कार्य बहुत किये। (अब समझले तो अच्छा !)

पर वस्तुको अपना माना, अपनी अनुपम वस्तुको भूला, विपरीत परिश्रम बहुत किया, अपनी उलटी दशाके कारण खूब दुःख सहन करना पड़े। अब समझले तो अच्छा।

इन्द्रियोंका दास बना, मनको खुला छोड़ा, व्यसनोंसे प्यार किया, मौजमजामें पड़ा रहा, सच्चे सुखको शोधनेका सहज भी उद्यम नहीं किया, पग-पगपर पराधीन बना—अब समझले तो अच्छा।

बचपनमें माता, युवावस्थामें पत्नी, बुढ़ापेमें बच्चोंकी याद आयी, परमात्माका स्मरण नहीं किया, आत्माको खोजनेकी अन्तर्दृष्टि नहीं खोली। बहुत भूला, बड़ा हैरान हुआ। पामर जीव ! अब समझले तो अच्छा।

उन्मादको हटा, विपरीतताको छोड़, प्रभुसे प्रेम कर, सत्समागमको शोध, अज्ञानसे डर, सदाचारका सेवन कर, तत्त्वज्ञानको प्राप्त कर ले, आत्मरसिक बन जा। बार-बार सचेत करता हूँ कि—हे प्राणी अब समझले तो अच्छा।

मृत्यु निश्चित है, कालकी गतिका पता नहीं, पूर्व पुण्यसे यहाँ आनन्दकी लहर है, पुण्य पूरा हो जायगा तब धक्का लगेगा, छोड़कर मर जाना निश्चित है तथापि नाशवान वस्तुओंके लिये तेरा कितना उद्यम ? और आत्माके लिये कुछ नहीं ? चेतन ! अब समझ ले तो अच्छा।

अमूल्य मानव शरीर मिला, परमात्माके निकट पहुँचनेके पर्याप्त साधन प्राप्त हुए तथापि अपनी अज्ञान दशाके कारण संसारमें भटक रहा है, प्रभुसे दूर-दूर होता जा रहा है। अनन्तकालसे दुःखके गर्तमें डूब रहा है, दुःखके मार्गसे हटकर परम शान्तिके मार्ग पर आनेके लिये हे जीव ! अब समझले तो अच्छा।

धर्मके बिना त्रिकालमें सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होगी। सारा जीवन धर्मकी सम्पूर्ण आराधनामें लगानेको कटिबद्ध हो जा। कल्याण की साधना तेरे हाथ की ही बात है। आराधक भाव बढ़ाकर परम मंगलमय बननेको तैयार हो जा। आत्मतारक धर्मानुष्ठान उत्तम आशयके साथ करके क्रमशः उच्चदशाको प्राप्त करेगा। सदा शान्ति हो !!!



५. उस समय तेरा कौन ?

भाग्यवान मानव! अतुल शरीर बल, अधिकार बल, परिवार बल, आदि अनेक बल मिलनेसे मदमस्त होकर फिर रहा है, किसीकी सीख सुननेको तैयार नहीं है, परमात्माका नाम अच्छा नहीं लगता, सत्पुरुषोंकी संगति नहीं करता, जीवनको विपरीत मार्ग पर चढ़ा रहा है फिर भी अपनेको बुद्धिशाली मानता है, परलोकको भूलकर इस लोकमें ही रागरंग हेतु सर्व उद्यम कर रहा है। आत्माके विचारको लेशमात्र हृदयमें नहीं लाता, धर्मकी बातोंको व्यर्थ की मानकर, धर्माराम्य करनेवालोंको पागल समझकर उस ओर रंचमात्र अंतरंग प्रेम प्रदर्शित नहीं करता। मानव जीवनकी सफलताके लिये सत्पुरुषों जो मार्ग बतलाते हैं उससे विपरीत मार्ग पर चलकर भी अपनेको बुद्धिमान मानता है।

परन्तु मैं तुझसे पूछता हूँ कि—

नाशवान शरीरमें अनेक रोगोंका आक्रमण होगा, स्नेहियोंके सर्व उपचार सफल नहीं होंगे, बड़े-बड़े डिग्रीधारी डॉक्टर और हकीम इलाज करने पर भी निष्फल होंगे, निकटके सगे-स्नेही तेरी ओर उदास चेहरोंसे देखते हुए आँसू बहाएँगे, उस समय तेरा कौन ?

अंतरमें बेचैनी होगी, श्वासोच्छ्वासकी गति अनियमित हो जायगी, किसी अकथनीय दशाका अनुभव होता होगा, चारों ओरसे निराशाके स्वर सुनायी देते होंगे, धारणा धूलमें मिल रही होगी, मनके मनोरथ मनमें ही मर रहे होंगे—उस समय तेरा कौन ?

पापकी परवाह किये बिना, अनेक बुरे काम करके कमाये हुए पैसे, मकान, बाग-बगीचे, मोटरें, मिल, जिन, प्रेस आदि मनपसंद वस्तुएँ, हमेशाके लिये छोड़ देनेका समय अचानक आ जायगा, उस समय तेरा कौन ?

माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री आदिके आनन्ददायक सहवासको अनिच्छासे छोड़नेके लिये बाध्य होना पड़ेगा—उस समय तेरा कौन ?

मान या न मान, परन्तु तीन शत्रु तेरे पीछे-पीछे फिरते रहते हैं—रोग, बुढ़ापा और मृत्यु—इन तीनमेंसे एकके चंगुलमें आ गया तो अभिमानका चूरा हो जायगा, यहाँका सारा परिश्रम व्यर्थ जायगा; इसलिये अंतरसे विचार—उस समय तेरा कौन ?

बुद्धिके भण्डार! इन सबका उत्तर तुझे मोहकी परवशताके कारण न सूझे तो मैं कहता हूँ! उस समय तेरा साथी एक धर्म है; अन्य कोई सच्ची शरण नहीं दे सकेगा। जीवनको

उज्ज्वल बनाये, रोग दशामें आर्तध्यान भुलाये, वृद्धावस्थामें तिरस्कृत न होना पड़े और समाधि पूर्वक मरण हो सके—यह सर्व शक्ति धर्ममें है। अभीसे 'जब जागे तभी सवेरा' मानकर उत्तम प्रकारके धर्म की आराधना करना वह अति हितकर है।

धर्म सर्वत्र रक्षक है—ऐसी यथार्थ रुचि हो जाय तो उसके प्रति अरुचि या असावधानी न रहे।

आत्मविकासके लिये धर्मकी आराधना जीवनकी प्रत्येक क्षणमें आवश्यक है। जगतके सर्व साधनोंकी अपेक्षा धर्मके साधन मूल्यवान हैं। पूर्व भवमें किये हुए पुण्यके प्रतापसे यहाँ सत्संगकी प्राप्ति हुई है। अब आराधनाके बिना जीवन व्यतीत करेगा तो संसारकी अनजान यात्रा कठिनाई भरी हो जायगी।

चित्तसे चेतकर लेकर अपनी उत्तम कुल मर्यादा सुरक्षित रखकर धर्मााराधनके लिये तैयार हो जा, फिर कोई चिन्ता नहीं है।

संसारके सर्व जीव परम शान्ति अनुभवो!!!

६. वैराग्य—भावना

१—हे चेतन! तू मृत्युसे क्यों डरता है? डरनेसे क्या वह तुझे छोड़ देगी? तथा जिसने जन्म लिया है वह मरता अवश्य है यह क्या तू नहीं जानता? राजा या रंक सब मृत्युके लीये एक समान हैं। यदि तू मृत्युसे सचमुच डरता हो तो जन्म देनेमें कारण होनेवाली अज्ञानजन्य-प्रवृत्तिको छोड़नेमें प्रयत्नशील हो।

२—हे चेतन! तू सम्पत्तिमें बहुत फूल जाता है और विपत्तिमें अत्यन्त मुरझा जाता है; परन्तु क्यों नहीं समझता कि वह तो तेरे पिछले भवमें किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका ही परिणाम है। दोनोंमें समभाव रखना ही बुद्धिमानीका काम है।

३—हे चेतन! जीवन, यौवन, धन, हाट, हवेली आदि समस्त वैभव घास पर पड़े हुए जल विन्दुओंके समान चंचल है। इसलिये उन अनित्य वस्तुओंके पीछे व्यर्थ ही पागल होकर शाश्वत आत्माकी बर्बादी किसलिये कर रहा है?

४—हे चेतन! किरायेके मकानकी भाँति, लालन-पालन किये हुए अपने नाशवान शरीरको जल्दी या देरसे तो छोड़ना ही पड़ेगा, फिर उसे अभक्ष्य वस्तुओंसे पुष्ट बनाकर तू अपने आत्माको दुर्गतिका मेहमान किसलिये बना रहा है?

५-हे चेतन! बैरिस्टर, मेजिस्ट्रेट, डॉक्टर, गवर्नर या कलक्टर आदि डिग्रीके काले बोर्ड तेरी आँख मिंचने पर घरके बाहर लटकते रहेंगे; परन्तु उस-उस सत्ताके अभिमानमें बिताये हुए काले कारनामोंका दण्ड तुझे ही भुगतना पड़ेगा। वहाँ धर्मके सिवा तेरी डिग्रियाँ तेरा बचाव नहीं करेंगी; इतना भी तू क्यों नहीं समझता ?

६-हे चेतन! जो-जो कर्म जिस-जिसने किये हों वे-वे उसे ही भोगना पड़ते हैं, तो निमित्तका दोष किसलिये निकालता है ?

७-हे चेतन! दो प्रहरकी यात्रामें तू पाथेयकी चिन्ता करता है, तो फिर परलोककी लम्बी मुसाफिरीमें काम आये ऐसे धर्म-पाथेयकी क्यों कुछ भी चिन्ता नहीं करता ?

८-हे चेतन! आत्मा अकेला ही आता है और अकेला ही परलोकमें जाता है तो व्यर्थ ही मेरा-मेरा करके किसलिये दुःखी हो रहा है ?

९-हे चेतन! चरबी, रक्त, मांस, हड्डी, मेद, विष्टा एवं मूत्रादिसे भरे हुए अपवित्र शरीरको पवित्र बनानेकी अविचारी कार्यवाहीके लिये क्यों कुछ विचार नहीं करता ?

१०-हे चेतन! बहादुरको या कायरको एकबार मरना तो है ही, तो फिर इस प्रकार मर कि जिससे बारम्बार नहीं मरना पड़े।

११-हे चेतन! इस असार संसारमें अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली भाषित धर्मके सिवा अन्य कोई सच्चा शरणभूत नहीं है, यह परम सत्य कभी भूलना नहीं।

१२-हे चेतन! जीवनमें अपने हाथसे हुए धर्म कर्तव्योंका अनुमोदन और अज्ञानजन्य कार्योंका पश्चात्ताप करके अपनी अन्तिम दशाको सुधार लेना भूलना नहीं।

७. निरन्तर विचारने योग्य सुन्दर भावना

१-शरीर, धन-सम्पत्ति, विलासके साधन एवं कुटुम्ब-परिवार यह सब तो नाशवान हैं, इसलिये बुद्धिशाली आत्माको उनके प्रति प्रेम रखने योग्य नहीं है; जैसे भी हो मोह घटानेके लिये उद्यमी होना।

२-संसारका कोई भी पदार्थ इस जीवको रोग, जरा, मरणादिके कालमें शरणभूत हो सके ऐसा नहीं है; एक धर्म ही सदाके लिये रक्षक है।

३-इस दुःखसे भरे हुए भयंकर संसारमें दीर्घकालसे अनेक भवोंमें भटकते हुए

आत्माको अनिच्छासे पारावार कष्ट सहन करने पड़ते हैं; इसलिये विवेकीजन संसारको छोड़ने योग्य कहते हैं।

४-यह चेतन अकेला आया है, अकेला जानेवाला है, पुण्य-पापके फल भी अकेला भोगेगा। माल खानेवाले अनेकों मिलेंगे, परन्तु पापके परिणामजन्य मार तो अकेलेको ही खानी पड़ेगी।

५-अपने ज्ञानादि गुणोंके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु आत्माकी नहीं है। निजगृहको भूलकर परकी मजदूरी जीवन भर करता है परन्तु 'शरीर मैं नहीं हूँ' 'उसके साधन मेरे नहीं हैं',-यह विचार निरन्तर करना चाहिये।

६-यह शरीर स्वयं अपवित्र-अपवित्र पदार्थोंसे निर्मित, पवित्र पदार्थोंको भी अपवित्र बनानेवाला है। उसके रागमें भान भूलकर अनेक पाप करनेवाला बहुत भूलता है। नाशवान शरीरसे सच्चे धर्मकी साधना ही उसका श्रेष्ठ-यथार्थ फल है।

७-इन्द्रियोंकी दासता, अतिशय धनकी कामना, विपरीत मान्यता तथा अनाचारका सेवन अनेक पाप बँधवाकर आत्माको भारी करके संसारसमुद्रके तलमें पहुँचा देते हैं।

८-आत्मलक्षसे सन्मार्ग-श्रवण, सत्समागम, सदाचार, सहनशीलता, संतोष, नम्रता, इन्द्रियदमन, ब्रह्मचर्य, विवेकादि गुण आने पर मिथ्यात्वको रोककर आत्माको तारनेवाले बनते हैं।

९-किसी भी प्रकारकी सांसारिक इच्छाके बिना किया हुआ धर्मसे अनेकों पापकर्म जल जाते हैं, इसलिये आत्मा निर्मल होता है।

१०-जगहितकारी परमात्माका बतलाया हुआ धर्ममार्ग तीनों काल अत्यन्त हितकर और सर्व प्रकारकी शान्ति देनेवाला है।

११-यह जीव संसारमें सर्वत्र जन्म-मरणके फेरे करके आया है; किसी स्थान पर स्थिर नहीं रह सका। ममतासे आकुलित जीव दुःखी होता है।

१२-राज्यवैभव, धनके ढेर, बड़े-बड़े बँगले, सुन्दर शरीर, खानपान तथा ऐश-आरामके साधन प्राप्त होना सरल है, परन्तु धर्मकी प्राप्ति होनी अति दुर्लभ है।

१३-सर्व जीव मेरे मित्र हैं, कोई मेरा शत्रु नहीं है। मेरे शत्रु भी सुखी होओ! सबके मोह, अज्ञानादि अंतरशत्रु नाश हो जायँ, आत्मिक प्रगतिमें आगे बढ़कर परम शान्तिका अनुभव करें।

१४-अपने वाणी, विचार और वर्तनको निर्मल बनाकर आत्मकल्याणमें अग्रसर गुणवान आत्माओंकी बारम्बार प्रशंसा करता हूँ। उनके सर्व श्रेष्ठ गुणोंका मेरे अंतरमें निरन्तर निवास हो।

१५-जगतके जीव अज्ञानतावश दुःखी होते हैं, उनकी अज्ञानता नष्ट हो, पाप जल जायें और सच्ची शान्ति प्राप्त करें-ऐसी अहर्निश इच्छा है।

१६-जो समझाने पर भी दोषोंको दूर नहीं करते, शिक्षा देनेवालों पर चिढ़ते हैं, उनका भी कल्याण हो! उन पर द्वेष करने योग्य नहीं है, परन्तु दयाका चिन्तन करना चाहिये।

हे आत्मन्! ऐसी कल्याणभावनाका निरन्तर विचार करके, जीवनको पवित्र बनानेका खूब प्रयत्न कर। कल्याण प्राप्त होगा।

८. आराधना

[प्रतिदिन सोनेसे पूर्व निम्नोक्त भावना भाओ!]

१-इस रात्रि निद्रामें अचानक शरीरसे आत्मा पृथक् हो जाय तो इस समय जो कुछ मेरा कहलाता है वह-शरीर, स्त्री-पुत्रादि परिवार, रुपया-पैसा, मकान, व्यापार, वस्त्र तथा अन्य साधनोंके साथ मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं है। उन सबका ममत्व मैं छोड़ता हूँ।

२-महा कल्याणकारी, लोकमें सर्वोत्तम श्री अरिहंत, सिद्ध, सुविहित मुनि एवं वीतराग भाषित धर्म,—यह चार ही संसारमें सच्चे शरणभूत हैं, इनकी शरण भावपूर्वक स्वीकारता हूँ।

३-जीव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, मिथ्याकलंक, चुगलखोरी, सुखमें हर्ष, दुःखमें खेद, परनिद्रा, कपट सहित झूठ, मिथ्यात्वादि पापस्थानक जो कि नीचगतिमें ले जानेवाले हैं, मोक्षमार्गमें बाधक होते हैं, उन सबको मन, वचन और कायासे दूर करता हूँ।

४-शरीरादि सर्व अनित्य हैं। धर्मके अतिरिक्त कोई सच्चा आधार नहीं है। संसार सर्वदा दुःखसे भरा है मैं अकेला हूँ। मैं अकेला आया, अकेला जाऊँगा, मेरा कोई नहीं है, मैं किसीका नहीं हूँ। कर्मसंयोगसे सब एकत्रित हुए हैं। जैसे रात्रिके समय एक ही वृक्ष पर बसेरा करनेवाले पक्षी सवेरा होते ही भिन्न-भिन्न दिशाओंमें उड़ जाते हैं; वैसे ही अलग-अलग भवोंमें अपने-अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये सब चले जायेंगे। संयोगके साथ वियोग और सम्पत्तिके साथ विपत्ति रहते ही हैं।

५-मेरा आत्मा अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी, अव्याबाध सुखमय, स्वरूपमणि अनन्त शक्तिका भण्डार, शाश्वत, निरंजन, निराकार, निजानन्दी, स्वरूपभोक्ता, अनेक गुणसम्पन्न है, अन्य सर्वसंयोग पर हैं; लोहमें प्रविष्ट होनेसे जैसे अग्निको मार सहनी पड़ती है, वैसे ही शरीरादि पुद्गलके सम्बन्धसे आत्माको दुःखी होना पड़ता है; इसलिये सर्व सम्बन्धोंका चित्तसे त्याग करता हूँ।

६-विश्वके उपकारी श्री अरिहंत भगवान मेरे देव हैं। अरिहंतकी आज्ञानुसार अहर्निश आत्मसाधनामें तत्पर वीतरागी साधु मेरे गुरु हैं, वीतरागभाषित धर्म त्रिकाल निश्चल है। यह तीनों तत्त्वों पर अंतरंग प्रेम द्वारा सम्यक्त्वकी भावना भाता हूँ।

७-संसारके सर्व जीवोंसे मैं क्षमायाचना करता हूँ; वे सब मुझे क्षमा करें। मुझे किसीके प्रति द्वेष नहीं है। अल्प जीवनमें किसीके साथ मुझे शत्रुता नहीं रखनी है। अनेक गतियोंमें रहे हुए सर्व जीव मेरे मित्र हैं। सब सच्चे सुखके साधक बनो!

८-गये भवोंमें या इस भवमें यदि कोई पाप मनसे विचारा हो, वचनसे कहा हो, कायासे किया हो, उसका पश्चाताप करता हूँ।

९-जबतक जन्म लेना पड़े तबतक सर्वदोष रहित देव, आत्मलक्ष्यकी ओर ले जानेवाले सद्गुरु, सत्शास्त्रका अभ्यास तथा आत्मविशुद्धिके लक्ष्यपूर्वक धर्मानुष्ठान मुझे निरन्तर प्राप्त होओ!

१०-दुनियाके सर्व प्राणी अधर्मसे बचो! सन्मार्गमें प्रवृत्त होओ! सद्बुद्धि पाओ! संसारके भयानक दुःखोंसे बचकर परम शान्ति प्राप्त करो! परमात्म शासनके प्रति अखण्ड भक्तिपूर्वक कल्याण साधो!

९. भाव-औषधि

[रोगादि पीड़ासे शरीर घिरा हो तब शान्ति प्राप्त करने हेतु विचारना]

हे चेतन! तू शाश्वत है, अनादि है, अनन्तकालसे तू इस दुःखमय संसारमें फिरता रहता है। जन्म लेना, बड़ा होना, शरीरका पोषण करना, मौज-शौकमें लीन रहना, विषयोंमें मस्त रहना, वीमार होना, दुःखी होना, वृद्ध होना और अन्तमें मर जाना—ऐसा-ऐसा तू भव-भवमें करता आया है।

याद तो कर! गर्भावासमें नौ-नौ महीने तूने अँधेरी, दुर्गन्धयुक्त कोठरीमें बिताये हैं। नीचे जटराग्निकी भयंकर गर्मीमें तू दुःखदायी रूपसे भुनता रहा, करोड़ों धधकती हुई लाल सुइयोंको किसी मनुष्यके शरीरमें एक साथ घोंच दिया जाय और उसे जितनी पीड़ा होगी उससे भी अधिक पीड़ा तूने गर्भावासमें सहन की है, तत्पश्चात् जन्मके समयकी पीड़ाका कोई पार नहीं और मृत्यु की असह्य पीड़ा! —यह सब दुःख तो जबतक तू संसारमें भटक रहा है तबतक तेरे पीछे पड़े ही हैं।

तेरी इच्छा हो या न हो, परन्तु संसारमें जन्मके पश्चात् मृत्यु तो है ही, और जब तक अन्तिम मरण नहीं होय तब तक उसके बाद जन्म है ही। रहँटकी घड़ियाँ जैसे भरती हैं और फिर खाली होती हैं वैसे ही तू आयुरूपी जल लेकर एक भवमें आया, आयु पूर्ण की, नये भवकी आयुका बंध किया और चल दिया।

प्रति समय जीव सात कर्म बाँधता है। आनेवाले भवकी आयुका बंध करते समय आठ बाँधता है, अबाधा पूरी करके, आयुबंधके अनुसार अन्य गतिमें चला जाता है।

आत्माका कभी नाश नहीं है। जिस शरीरको तू मेरा-मेरा कहता और मानता है, वह तेरा नहीं है। “चल उड़जा रे पंखी, अब यह देश हुआ बेगाना।” इस शरीरको इस जन्ममें आया तब तू लाया नहीं था और जब जायगा तब ले जा नहीं सकता। इस जन्ममें आहारादिके द्वारा तूने इसका पोषण किया है, सुरक्षित रखने, वृद्धि करने, प्रसन्न रखने हेतु तूने कम परिश्रम नहीं किया है।

विचार तो कर! कितना खाया, कितना पिया, कितना पहिना-ओढ़ा, कितना भोगा? स्वयं इसी भवमें जितना खाया-पिया उस सबका ढेर तेरी दृष्टिके सामने किया जाये तो यही लगेगा कि हम राक्षससे भी भयंकर हैं। इतना करने पर भी शरीर तो दुर्जन मित्र जैसा ही है। “खानेमें होशियार और काम करनेमें नादार!” यह इसकी हमेशाकी कुटेव है।

शरीर कभी अपना हुआ नहीं है और न कभी होना है। उसमें जितनी बुरी आदतें डाली जायँगी उतनी आत्माको भारी पड़ेंगी। शरीरके मोहमें पड़कर भक्ष्याभक्ष्यका भान न रखना वह आत्माकी अधोगतिका मार्ग है। शरीर साथ जानेवाला नहीं है, यहीं पड़ा रहेगा, जलानेके योग्य ही रहेगा। चाहे जितनी सँभाल करने पर भी अशुभके उदयसे उसमें विक्रिया होती ही रहेगी। इस विषयमें अनेक दृष्टान्त विचारणीय हैं।



छह खण्डके अधिपति सनत्कुमार चक्रवर्ती अत्यन्त रूपवान थे, इन्द्रसभामें भी उनके रूपकी प्रशंसा होती थी। एकबार देवगण परीक्षा करने आते हैं। ब्राह्मणका वेश धारण करके उनका रूप देखने आते हैं। राजा नहाने बैठे हैं उस समय पहुँचते हैं। रूप देखकर प्रसन्न होते हैं। राजा कहते हैं—अभी तो मेरा शरीर उबटन आदिमें लिप्त है; जब मैं नहाधोकर वस्त्राभूषण पहिनकर सिंहासन पर बैठूँ तब मेरा रूप देखना।

ब्राह्मण चले गये। राजा सजधजकर सिंहासन पर बैठे। वे ब्राह्मण फिर आये और एकदम सिर धुनकर विलखने लगे और राजासे कहने लगे कि आपका रूप फीका पड़ गया है। घड़ी भर पहले जो रूप था वह अब नहीं रहा। आपका शरीर रोगसे घिर गया है!

यह सुनकर राजाको एकदम वैराग्य आ गया, शरीर और रूपका मोह उतर गया, छह खण्डकी ऋद्धिका त्याग कर दिया। अंतःपुरकी रानियोंके तथा प्रजाजनोंके मोहजनक विलापों पर ध्यान नहीं देकर संयम ग्रहण कर लिया। उत्तमोत्तम चारित्रकी आराधना करने लगे। शरीरमें रोग बढ़ता जाता है परन्तु उसकी रंचमात्र चिन्ता किये बिना तपश्चर्या आदिमें लीन हो जाते हैं। औषधि आदिकी इच्छा भी नहीं करते। आत्मभावकी रमणतापूर्वक उदयजन्य विपाकको सहन करते हैं। दीनता या घबराहट लेशमात्र नहीं है। इन्द्रसभामें उनकी धैर्य एवं सहनशीलताकी प्रशंसा होती है। देवगण तो विबुध अर्थात् अत्यन्त बुद्धिमान कहलाते हैं, वे ऐसे वैसेकी प्रशंसा नहीं करते।

देव किसकी प्रशंसा करते हैं? 'देवावितं नमंसंति जस्स धम्मे सयामणो' जिसका चित्त निरंतर धर्ममें लगा रहता हो उसे देव नमस्कार करते हैं। अपनेमें सत्यके बिना देव भी सहाय नहीं करते। सनत्कुमार मुनिकी प्रशंसा सुनकर वे देव परीक्षा हेतु वैद्यका रूप धारण करके आते हैं। मुनिराजसे कहते हैं—हम वैद्य हैं, आपकी चिकित्सा भलीभाँति कर सकेंगे। हमारी औषधिसे आपका रोग नष्ट हो जायगा, आपका शरीर पूर्ववत् सुन्दर रूपवान हो जायगा। इस प्रकार अनेक प्रलोभन देते हैं।

इस जगह हमारे जैसे आत्माकी क्या स्थिति होती? कोई नामधारी वैद्य बनकर आये हों, तब "हम तो डूबते हुएको तिनकेका सहारा"की भाँति उनको बुलानेके लिये तत्पर हो जाते और बुलाकर उपचार करवाते। रोग मिटे या न मिटे वह तो कर्माधीन है, परन्तु विह्वलताका पार नहीं रहता। इस स्थितिमें आत्मकल्याण होना कठिन ही होगा।

यह महापुरुष सनत्कुमार ऋषि तो उन दोनों देवोंसे कहते हैं—'रोग दो प्रकारके होते हैं—शारीरिक और मानसिक अथवा द्रव्यरोग और भावरोग। मानसिक अथवा भावरोग क्रोध,

मान, माया-ममता, लोभ, राग-द्वेष, आत्मप्रशंसा, परनिन्दा, सुखशीलता, जुगुप्सा, दीनता, लालच, क्षुद्रता, आहारादि संज्ञा आदि मिलकर अनन्तकालसे आत्माको सता रहे हैं। वह मिटानेकी शक्ति जिनमें हो वे ही सच्चे वैद्य कहे जाते हैं।

‘शारीरिक अथवा द्रव्यरोग-बुखार, सर्दी, शूल, वायु, पित्त, आँखका दुखना, खाँसी, क्षय, पेटदर्द, मस्तिष्ककी निर्बलता, घबराहट आदि गिने जाते हैं। यद्यपि इन बाह्य रोगोंके आक्रमणका मूल कारण तो भावरोग ही हैं तथापि इन बाह्य रोगोंको मिटानेके प्रयत्न प्रत्येकके सफल नहीं होते। कदाचित् पुण्योदयसे उस उपचारसे सफलता प्राप्त हो भी जाती है तथापि शरीर नाशवान ही है इसलिये उसके रोगोंको मिटानेके प्रयत्न अन्तमें तो निष्फल ही होनेवाले हैं।’

‘यदि आत्माको लगे हुए भावरोग टालनेकी शक्ति तुममें हो, तो मेरी औषधि आनन्दसे की जाय। वैसे द्रव्य रोगकी कोई चिन्ता नहीं है, और उस द्रव्यरोगका उपयोग भावरोग मिटानेके लिये किया जाय उन जैसी तो अच्छी औषधि जगतमें कोई है ही नहीं।’

‘द्रव्यरोगका शमन करनेकी शक्ति मुझमें है, परन्तु भावरोगको हटानेके लिये द्रव्यरोगको मैं आनन्दपूर्वक सहन करता हूँ।’ ऐसा कहकर अपने थूक द्वारा एक उँगलीको सुवर्ण जैसा करके दिखाया! देवगण हार गये। क्या कह सकते थे? भावरोगमें तो स्वयं डूबे हुए ही थे। उसे मिटानेकी शक्ति तो अनन्त दयाके सागर श्री अरिहंतदेवके अतिरिक्त अन्य किसीमें है ही नहीं।

अन्तमें सनत्कुमार चक्रवर्ती अनेक वर्षों तक रोगोंको सहन करते हुए उत्तमोत्तम चारित्रिका पालन करके आयु क्षय होनेपर स्वर्गलोकमें गये।

ऐसे अनेक उच्च आत्मा परमात्माके शासनमें हो गये हैं। एक-एक दृष्टान्तको यथार्थरूपसे विचारने पर हृदयमें वैराग्य आये बिना नहीं रहेगा, उलझन खड़ी नहीं रहेगी, अनुकूलताकी इच्छा उड़ जायगी, प्रतिकूलताको सहन करनेके लिये एकदम तत्परता रहेगी।

इच्छानुसार खाना-पीना किसे अच्छा नहीं लगता? परन्तु वह मिल जानेसे क्या? जो सुख आता है वह पूर्वपुण्यका क्षय करनेके लिये आता है, और दुःख या पीड़ा पूर्व पापका नाश करनेको आती है। इसलिये सन्तुष्ट कब होना? सुख आये तब या दुःख आये तब? परमात्माका शासन जिसके हृदयमें बसता हो उसे सुखमें घबराहट और दुःखमें जागृति रहती है! जब कि-पुद्गलानन्दी पामर जीवको सुखमें चैन और दुःखमें बेचैनी होती है। इसीका नाम है भावरोगकी भयंकरता और आत्माकी परवशता। ❀

गजसुकुमारका स्मरण करो। देवकीजीके वे आठवें पुत्र, शरीर अति सुकुमार; प्रभु श्री नेमिनाथ स्वामीके उपदेशसे वैराग्यकी धुन लग गई थी। संयम लिया कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन रहे, सोमिल श्वसुर आया। उसे द्वेष हुआ। मुनिके सिरपर मिट्टीका मेढ़ (पाली) बनाकर उसमें धधकते हुए अंगारे भर दिये! विचार तो करो! क्या यह पीड़ा कम थी? एकाध छोटी-सी अग्निकी कणी भूलसे पैरके नीचे आ जाय तो हाय-हाय हो जाती है। अधिक गर्म पानी भी शरीरको लग जाय तो सिहर उठता है। किसी जले हुएको देखकर भी काँप उठते हैं; तो फिर इस दशामें वे कैसे खड़े रहे होंगे?—कहो कि एक परमात्माकी अनुपम शक्तिके द्वारा ही।

शरीर वह मैं नहीं हूँ। मैं भिन्न और शरीर भिन्न। शरीर का है वह मेरा नहीं है और मेरा है वह शरीरका नहीं है। यह भावना जिसके रोम-रोममें प्रगट हो गई हो वही वीर आत्मा ऐसे प्रसंगमें स्थिरता और धैर्य रख सकता है। ऐसे प्रसंग पर रोषके बदले समताभाव आता है। बिना किसी अपराधके सिर पर अंगारे रखनेवाले पर कैसे विचार आयेंगे? क्रोध करनेके लिये यह तो अच्छेसे अच्छा प्रसंग है। कुछ न हो तब भी मन ही मनमें तीव्र क्रोध हुए बिना रहेगा ही नहीं। ऐसे समयमें श्वसुरको उपकारी मानना.....अरे! अन्य श्वसुर तो मात्र तुच्छ पगड़ी बाँधते हैं किन्तु इन श्वसुरने तो मुक्तिकी पगड़ी बँधवा दी—ऐसा विचार कर उन्हें उपकारी मानने जैसा भाव आये वह कोई सामान्य धैर्यका काम नहीं है। ज्ञानकी, बुद्धिमत्ताकी, तपकी, क्रियाकी अथवा किसी भी उत्तमवस्तुकी सफलता इसीमें है। ऐसी घटनाएँ संसारमें अनेकवार होती हैं, परन्तु जिसमें आत्मजागृति हो उसी घटनाको प्रशंसनीय मानना चाहिये। परिणामतः आठ कर्म खिर गये, शरीर जलनेके साथ कर्म जल गये, सभी भवरोग टल गया। अंतकृत केवली होकर सिद्धिधाममें विराजमान हो गये। ऐसे मुनिवरके धैर्य धारणका अंश भी हमारे जीवनमें आ जाये तो जीवन सफल हो जाय।

हे आत्मन्! ऐसे अनेक दृष्टान्तोंका विचार करके, आर्त्तध्यानको भगा दे। निर्मल धर्मध्यानकी धारामें निमग्न हो जा, उसीमें तू सच्चा कल्याण साध सकेगा। जगतकी श्रेष्ठ उत्तमोत्तम वस्तुओंकी अपेक्षा मूल्यवान श्री जिनेश्वरदेवका धर्म मिला है, अब तुझे क्या चिन्ता है? भव-भवमें उन प्रभुके चरणकमलकी सेवा माँगनेका ध्येय रखेगा तो तुझे सर्वत्र शान्ति प्राप्त होगी।

—श्री जिनशासन सदाकाल जयवंत वर्तो!



१०. उससे तुझे क्या ?

१-हे चेतन! सारी दुनिया तुझे लाखोंबार नमस्कार करती हो तो उससे तुझे क्या ? तेरी जीवन नौकाकी सुरक्षाका आधार नमस्कार पर नहीं किन्तु तेरे तत्त्वज्ञान पर निर्भर है।

२-हे चेतन! तेरे यहाँ करोड़ों रुपयोंका ढेर हो तो उससे तुझे क्या ? तेरे हाथसे जितने रुपयोंका सद्रव्यय हुआ होगा वही तेरे साथ जायगा।

३-हे चेतन! टेबल पर हाथ ठोककर और स्टेज पर पाँव पटक-पटककर विभिन्न प्रकारके अभिनय द्वारा चाहे जैसे नास्तिकोंके सिर डुलानेवाला तू प्रखर वक्ता हो तो उससे तुझे क्या ? तेरा कल्याण तो वीतराग भगवानकी आज्ञा का अनुसरण करेगा तभी होनेवाला है।

४-हे चेतन! तू चाहे जैसा सर्वसत्ताधीश हो, उससे तुझे क्या ? तेरे सिर पर झूमती हुई कर्मसत्ताका नाश तो धर्मसत्ताकी शरणमें जाने पर ही होगा।

५-हे चेतन! तेरी मृत्युके पश्चात् तेरे सम्मानमें चाहे जितने बाजार बन्द रहें उससे तुझे क्या ? तेरे जीवनमें जो अधर्म का बाजार चल रहा है वह जब तक बन्द नहीं होगा तब तक तेरी दुर्गतिके द्वार बन्द होना कठिन हैं।

६-हे चेतन! ताड़वृक्षके तीसरे भाग जितने ऊँचे अपने सुन्दर-सुडौल शरीरसे भले ही धरतीको कँपाता हो, उससे तुझे क्या ? तेरी सच्ची शूरवीरता तो अभ्यन्तर शत्रुको कँपानेमें है।

७-हे चेतन! तेरे यहाँ अप्सराओंके रूपको भी लज्जित करें ऐसी अनेकों सुन्दरियोंका समुदाय हो, उससे तुझे क्या ? मात्र एक ही मोक्षसुन्दरीको विवाहे बिना कभी तुझे सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होगी।

८-हे चेतन! संसारकी सर्व भाषाओं और शास्त्रों पर तेरा अधिकार हो उससे क्या ? तेरा कल्याण तो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंको वशमें करनेसे ही होगा।

९-हे चेतन! भले ही तेरे अनुयायी करोड़ों की संख्यामें हों, उससे तुझे क्या ? जब तू धर्मका अनुयायी होगा तभी तेरा उद्धार है।

१०-हे चेतन! सारी दुनिया तुझे जानती हो उससे तुझे क्या ? तेरा कल्याण तो सुदेव, सुगुरु और सुधर्म—इन तीनोंको जाननेसे ही होगा।

११-हे चेतन! तेरा परिचय दुनियाके बड़े-बड़े पुरुषोंसे हो, उससे तुझे क्या ? तेरी सर्व ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ तो तुझे तभी हस्तगत होंगी जब तू आत्माको पहिचानेगा।

१२-हे चेतन! तुझे चाहे जितनी उपाधियाँ (डिग्रियाँ) प्राप्त हुई हों उससे तुझे क्या? तेरी समस्त उपाधियोंका अन्त तो तभी आयगा जब तुझे सत्यधर्म की प्राप्ति होगी।

१३-हे चेतन! तेरी स्मशानयात्रामें लाखों लोग सम्मिलित हों उससे तुझे क्या? परलोकमें तो तुझे अकेलेको ही जाना है और सुख-दुःख तुझे अकेलेको ही भोगना है।

१४-हे चेतन! तेरे मृत शरीरको तेरे भक्तजन चन्दनकी लकड़ीसे जलाएँ अथवा बबूलकी—उससे तुझे क्या? यदि तू धर्मके बिना रीते हाथसे गया तो दुःखदावानलमें तो सदा ही जलना है।

१५-हे चेतन! तू बहत्तर कलाओंका जानकार हो उससे तुझे क्या? धर्मकलाको जाने बिना तेरी दुर्गति की बला कभी टलनेवाली नहीं है।

१६-हे चेतन! तेरे चित्रकी अनावरण विधि भले ही बड़े पुरुषोंके हाथसे हो उससे तुझे क्या? तेरे आत्मा पर पड़ा हुआ आठ कर्मरूपी आवरण जब तक दूर नहीं होगा तब तक तुझे जन्म-मरणकी मार सहनी ही पड़ेगी।

११. उस समय तू क्या करेगा ?

१-हे चेतन! अभी तो तू परलोककी चिन्ताको भूलकर रंगरेलियाँ मना रहा है, वह तेरे पूर्वभवकी पुण्य-कमाई का प्रभाव है, परन्तु इस भवमें तू धर्म नहीं करेगा तो परभवमें जब दुःखी होनेका समय आयगा उस समय तू क्या करेगा?

२-हे चेतन! अभी तो तू तप करने की बात आने पर चिन्ता करता है और कहता है कि भूख कैसे सहन होगी? परन्तु पापोदय आने पर भूखे मरनेका समय आयगा, उस समय तू क्या करेगा?

३-हे चेतन! अभी तो तुझे समय पर गर्म भोजन नहीं मिलनेसे तू क्रोधित हो उठता है, परन्तु दारिद्र्य-दशा आने पर ठण्डे-बासी भोजनके लिये भी जब तुझे याचना करनी पड़ेगी, उस समय तू क्या करेगा?

४-हे चेतन! ग्रीष्म ऋतुमें तुझे गर्म पानी अच्छा नहीं लगता तब तू बर्फ डालकर उसे ठण्डा बनाता है, परन्तु पशु-पक्षीके भवमें कुण्डीका मैला-अशुद्ध-गन्धयुक्त और जूटा पानी पीनेका समय आयगा, उस समय तू क्या करेगा?

५-हे चेतन! अभी तो तू धनके मदमें मतवाला होकर छाती फुलाकर चलता है, किसीके सामने देखता भी नहीं है, परन्तु धनका नाश होने पर तुच्छ मनुष्योंके मुँह देखने और रोनेका दुःखद प्रसंग आयेगा, उस समय तू क्या करेगा?

६-हे चेतन! अभी तो तू तुझे प्राप्त हुई सत्ताके मदमें सबको सतानेमें ही आनन्द मानता है; परन्तु सत्ता छिन जाने पर घोर सजा सहन करनेका समय आयगा, उस समय तू क्या करेगा?

७-हे चेतन अभी तो तुझे तीन-तीन मनकी गदियोंके बिना नींद नहीं आती, परन्तु धर्मविहीन जीवनके फलमें फुटपाथ पर लोटनेका समय आयगा, उस समय तू क्या करेगा?

८-हे चेतन! अभी तो तू ठण्डी-गर्मी, भूख-प्यासके सामान्य दुःखोंसे भी आकुलित होकर हो सके उतने भी धर्मकार्य नहीं करता, परन्तु धर्मविहीन हुए तुझे तिर्यच और नरककी असहनीय वेदना सहन करनेका प्रसंग आयगा, उस समय तू क्या करेगा?

९-हे चेतन! अभी तो तुझे परमार्थके कार्योंमें शक्ति अनुसार भी धन खर्च करनेमें मलेरिया बुखार हो जाता है, परन्तु डाकू-लुटेरोंके पंजोंमें फँसकर जब तू बाबा-भिक्षु बन जायगा, उस समय तू क्या करेगा?

१०-हे चेतन! अभी तो तू जिह्वाके क्षणिक स्वादके वश होकर कन्दमूलादि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हुए जीवदयाका किंचित् भी विचार नहीं करता, परन्तु जब पशुगतिमें घास चरनेका दुःखद प्रसंग आयगा उस समय तू क्या करेगा?

११-हे चेतन! अभी तो तुझे किसीकी सेवा या वैयावृत्य करनेमें आलस्य लगता है, परन्तु भरूच (गुजरात) का पाड़ा होकर मालसे भरी हुई भैंसागाड़ी खींचनी पड़ेगी उस समय तू क्या करेगा?

१२-हे चेतन! अभी तो तू अभिमानमें अकड़कर छाती फुलाकर चलता है और सबको अपनेसे तुच्छ मानता है, परन्तु कंगाल-धनहीन होने पर तुच्छ मनुष्योंको भी सलाम करनेका समय आयगा उस समय तू क्या करेगा?

१३-हे चेतन! जब तू निरोगी है, तब तो विषय-वासनामें मस्त रहकर हो सकें उतने धर्मकार्य भी नहीं करता; परन्तु जब चारों ओरसे रोग तुझे घेर लेंगे और तू बिलकुल अशक्त हो जायगा, उस समय तू क्या करेगा?

१२. यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१-आज अनेकोंको एकवार भी भोजन नहीं मिलता, जब कि तुझे तीन वार भरपेट भोजन मिल जाता है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

२-कई लोगोंको अपना शरीर ढँकने जितना भी कपड़ा मिलना कठिन है, जब कि तू हर एक ऋतुके अनुकूल पोशाकें पहनकर फिरता है। हे चेतन! यह भी पुण्य का ही प्रभाव है।

३-जगतमें अनेक मनुष्योंको पैदल यात्रा करनी पड़ती है, जब कि तेरे आँगनमें मोटर आदि वाहन बैठनेके लिये तैयार खड़े रहते हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

४-कितने ही लोगोंको माँगनेसे पानी भी नहीं मिलता, जब कि तुझे बिन माँगे दूध मिलता है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

५-जगतमें अनेक मनुष्योंको पेट भरनेके लिये लोगों की जीहजूरी करनी पड़ती है, जब कि तेरी जीहजूरी अनेक लोग कर रहे हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

६-दुनियामें अनेक मनुष्य पग-पग पर सबकी ठोकरें खा रहे हैं, जब कि तेरी हर जगह जय-जयकार होती है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

७-अनेक मनुष्योंको सुख-सुविधाओंकी एक भी सामग्री नहीं होती, जब कि तेरे पास अमन-चैनके अनेक प्रकारके साधन हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

८-जगतमें अनेक प्राणी अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित हैं, जब कि तुझे आज तक सिरदर्द भी नहीं हुआ। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

९-जगतमें अनेक मनुष्य अँधे, बहरे, गूँगे, अपंग दिखायी देते हैं, जब कि तुझे पाँचों इन्द्रियाँ सम्पूर्ण प्राप्त हुई हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१०-लाखों मनुष्योंका जन्म अनायदेशमें हुआ है, जब कि तेरा जन्म त्यागप्रधान आयदेशमें हुआ है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

११-अनेक आत्माओंको नीचकुलमें उत्पन्न होना पड़ा है, जब कि तूझे उच्चकुलमें जन्म मिला है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१२-कितने ही जीव गर्भमें, तो कितने ही जीव जन्म लेनेके बाद तुरन्त ही तथा कितने

ही भर यौवनमें भी मर जाते हैं जब कि तुझे दीर्घायु प्राप्त हुई है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१३-अनेकोंको अनेकोंके पास याचना करनी पड़ती है, जबकि तुझे किसीके सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ता है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१४-कितने ही अपना पेट भरनेमें भी असमर्थ होते हैं, जब कि तू अनेक आश्रितोंका पालन-पोषण कर रहा है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१५-कितनोंको पाँच रुपये कमानेके लिये भी पसीना बहाना पड़ता है जब कि तुझे बात करनेमें ही पाँचसौ मिल जाते हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१६-कितनोंको रहनेके लिये छोटी-सी झोंपड़ी भी नहीं होती, जब कि तुझे रहनेके लिये बड़ा महल है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१७-कितनोंको सोनेके लिये चटाई भी मिलना कठिन है, जब कि तू रोज नर्म रुईके गद्दोंमें सोता है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१८-अनेक आत्माओंका शरीर और रूपरंग विचित्र प्रकारका बेडौल होता है, जब कि तेरा शरीर रूपवान, सुन्दर, सुडौल है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

१९-अनेक लोग आज सत्ता और सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहकी उठापटक कर रहे हैं जब कि तुझे वे दोनों वस्तुएँ सहज ही प्राप्त हुई हैं। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

२०-जगतमें अनेक जीव बिल्कुल कमजोर दिखायी देते हैं, जब कि तू हृष्टपुष्ट स्वस्थ शरीरवाला है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

२१-कितने ही लोग चलते-चलते स्वयं काँपते हैं, जबकि तू चलता है तो मानों धरती काँपती है। हे चेतन! यह भी पुण्यका ही प्रभाव है।

संक्षेपमें-हे चेतन! तू आज सजधजकर घूमता है और अनेक प्रकार आनन्द लूट रहा है-यह भी पुण्यका ही प्रभाव है ऐसा निश्चित जानना। अनेक प्रकारकी सुविधाओंका समर्पण करनेवाले ऐसे पुण्यकार्योंको यदि तू भूला तो समझ लेना कि तेरा जीवन कुत्ते की अपेक्षा अधिक तिरस्कृत होगा।

सेटकी कृपासे धनवान बना मुनीम यदि सेटको कुछ समझे ही नहीं तो मुनीम कृतघ्नी माना जाता है, तदनुसार धर्मके प्रभावसे सुखी हुए मनुष्य यदि धर्मका स्मरण ही नहीं करते तो उन्हें भी कृतघ्नी ही मानना।

(बाह्य प्रतिकूलताएँ पापसे मिलती हैं और बाह्य अनुकूलता पुण्यसे मिलती है इसलिये बाह्य अनुकूलता प्राप्त होनेमें पुण्यका ही प्रभाव है वह बात सच है, परन्तु धर्मसाधना आत्माके आधीन है, उसमें पुण्यका प्रभाव बिलकुल नहीं है।)



१३. वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

१-प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवानको जिस कर्मसत्ताने छह मास तक आहारमें अंतराय डाला, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

२-बत्तीस हजार मुकुटधारी राजा जिनकी सेवा करते थे ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्तीको जिस कर्मसत्ताने एकसाथ अनेक रोगोंसे घेर लिया, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

३-रावण जैसे समर्थ राजाकी राज्यसत्ताको जिस कर्मसत्ताने घड़ी भरमें छुड़ा लिया, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

४-न्यायनिष्ठ एवं धर्मप्रिय श्री रामचन्द्रजीको जिस सत्ताने चौदह वर्षके वनवासकी कठोर सजा दी थी, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

५-सती शिरोमणि सीता माताके सम्बन्धमें जिस कर्मसत्ताने प्रजाके मनमें बिलकुल मिथ्या शंका उत्पन्न करके वनवासके घोर दुःखोंमें धकेल दिया था, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

६-छप्पन करोड़ यदुवंशियोंके अधिपति श्री कृष्ण महाराजाको जिस सत्ताने पानी....पानी करते हुए प्राणत्याग करवाये, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

७-महा बलवान पाँच पाण्डवोंको जिस कर्मसत्ताने बारह वर्ष तक वनमें भटकाया, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

८-राजाकी पुत्री चन्दनवालाको जिस सत्ताके प्रकोपसे पशुकी भाँति बाजारमें बिकना पड़ा, वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी ?

१-क्षायिक सम्यक्त्वके धनी और महावीर स्वामीके अनन्य भक्त महाराजा श्रेणिकको जिस कर्मसत्ताने महलकी सहल (घूमना) छुड़ाकर कारागारमें डालकर अपने ही पुत्र कोणिकके हाथसे कोड़ोंकी मार खिलायी वह कर्मसत्ता क्या तेरे-मेरे जैसोंको छोड़ देगी? इसलये....

राजा-महाराजा, सेठ-शाहुकार, धनवान या निर्धन, ज्ञानी या अज्ञानी—सभीको उस कर्मसत्ताके पाशकी असह्य पीड़ासे मुक्त होना हो तो धर्मसत्ताकी शरणमें शीघ्र आ जानेकी आवश्यकता है।



१४. इसीलिये अभी परतंत्र है।

१-मरना अच्छा नहीं लगता तथापि मरना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

२-वृद्धावस्था आये यह अच्छा नहीं लगता, तथापि उस अवस्थाके आधीन होना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

३-स्नेहीजनोंका वियोग अच्छा नहीं लगता, तथापि उनका वियोग तो होता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

४-अनिष्ट वस्तुओंका संयोग हो वह अच्छा नहीं है, तथापि अचानक उनके संयोगमें आना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

५-अच्छे पक्वान्न-मिष्ठान्न खानेकी इच्छा होने पर भी रोटी भी मुश्किलसे मिलती हैं, इसीलिये अभी परतंत्र है।

६-निरोग रहना अच्छा लगता है, तथापि अचानक भयंकर रोगोंसे घिर जाना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

७-धनवानपना अच्छा लगता है तथापि निर्धनताका अनुभव करना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

८-अभिवादन स्वीकारना अच्छा लगता है, तथापि अभिवादन करना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

९-सत्ताधीश होनेकी तीव्र भावना है, तथापि दूसरेके आधीन रहना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

१०-दानवीर होनेकी भावना होने पर भी याचक होना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

११-सेठई प्रिय होने पर भी माँगना पड़ता है, इसीलिये अभी परतंत्र है।

संक्षेपमें—

तुम्हें जिसकी इच्छा होती है वह मिलता नहीं है, और जो नहीं चाहिये वह आकर चिपकता है। तब तक तुम किसी सत्ताके आधीन हो, इसलिये परतंत्र हो।

उस सत्ताका नाम है कर्मसत्ता।

उस सत्ताको जब मूलसे मिटा दोगे तभी तुम्हारे यहाँ सच्चा स्वराज्य आयगा।



१५. सफलताका सच्चा मार्ग

१-मानवभवकी सफलता रागरंगमें नहीं, परन्तु आत्मज्ञानकी आराधनामें है।

२-शरीरकी सफलता मात्र उसे हृष्ट-पुष्ट बनानेमें नहीं, परन्तु विविध प्रकारके व्रत-प्रत्याख्यान धारण करनेमें है।

३-लक्ष्मीकी सफलता उसका संग्रह करनेमें नहीं, पर उसका सदुपयोग करनेमें है।

४-जिह्वाकी सफलता किसीके अवर्णवाद, असत्य एवं कटु बोलनेमें नहीं परन्तु गुणीजनोंकी प्रशंसा करने तथा सत्य एवं मधुर भाषणमें है।

५-नेत्रोंकी सफलता रूप-रंग तथा नाटक-सिनेमा देखनेमें नहीं, परन्तु देव-गुरुके दर्शन करनेमें है।

६-कानोंकी सफलता निन्दा-चुगली सुननेमें नहीं किन्तु शास्त्रश्रवणमें है।

७-पैरोंकी सफलता देश-परदेशके भ्रमणमें नहीं, परन्तु पैदल तीर्थयात्रा करनेमें है।

८-मस्तक की सफलता उसे ऊँचा उठाकर चलनेमें नहीं किन्तु ज्ञानी महात्मा पुरुषोंके चरणोंमें नतमस्तक होनेमें है।

९-हाथोंकी सफलता किसीको मारकर लूट लेनेमें नहीं, परन्तु उदारतासे किसीको कुछ देनेमें है।

१०-बुद्धि प्राप्त करने की सफलता किसीको हानि पहुँचानेमें नहीं, परन्तु तत्त्व-अतत्त्वकी विचारणामें है।

११-अधिकार पानेकी सफलता किसीको मौका देखकर दवा देनेमें नहीं, परन्तु समय आने पर दूसरोंका उपकार करनेमें है।

१२-शक्ति प्राप्त करनेकी सफलता निर्बलोंको कुचल देनेमें नहीं, परन्तु दुर्जनों से उनकी रक्षा करनेमें है।

१२-ज्ञानकी-पढ़ाईकी सफलता व्यर्थके वाद-विवाद करनेमें तथा अभिमानी बननेमें नहीं, किन्तु भेदज्ञान करके आत्महित साध लेनेमें है।



१६. ऐसा कैसे कहा जाय ?

१-पत्नीकी सुविधा हेतु अपनी माताको (जिसने नौ महीने तक गर्भमें रखकर असह्य वेदना सहन की है) दुःखी रखनेवाला पुत्र क्या सुपुत्र है, ऐसा कैसे कहा जाय ?

२-सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिमें और उन्हींके भोगोंमें मानवभवको गँवा देनेवाला उस भवकी दुर्लभताको समझा है, ऐसा कैसे कहा जाय ?

३-एक पैसेके लिये धर्मकी सौगंध खानेवाले धर्मका मूल्य समझे हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

४-समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता माने जानेवाले जो अज्ञानसे विमुख होनेका किंचित् भी प्रयत्न नहीं करते वे पण्डित हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

५-जो कभी सत्य बोलना जानते ही नहीं हैं, वे नेता हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

६-अपनी शक्ति होने पर भी मरते हुए प्राणियोंको बचानेमें जो आँखें बन्द कर ले वे दयावान हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

७-झूठी बातें बनाने और गप्पें हाँकनेमें पूरा दिन व्यतीत कर देनेवाले समयका मूल्य समझे हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

८-युद्धभूमिमें तीर-कमान और शस्त्रोंके घावको हिंमतपूर्वक झेलनेवाले परन्तु स्त्रियोंके कटाक्षसे कायर हो जानेवाले शूरवीर हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

९-दिन-रात परनिन्दा करने और सुननेमें लगे रहनेवाले अपने कानों और जिह्वाका सदुपयोग कर रहे हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१०-जो मनुष्य गुणीजनोंका गुणगान करना नहीं सीखे हैं उनको हृदयमें गुणानुराग है, ऐसा कैसे कहा जाय ?

११-वैभव विलासकी अनुपस्थितिमें (अभावमें) उसका उपभोग नहीं करनेवाले सच्चे त्यागी हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१२-बुखार आने पर मात्र मूँगका पानी पीनेवाले मिष्टान्नके त्यागी हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१३-पुण्योदयसे प्राप्त हुई लक्ष्मीका जो सदुपयोग नहीं कर सकते, वे उस लक्ष्मीके स्वामी हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१४-रोगीके रोगको मिटानेके बदले उससे अत्यधिक पैसा लेकर उसका प्राणान्त करा देनेवाले डॉक्टर या वैद्य न्यायनीतिके सिद्धान्तको समझे हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१५-आत्मासे उदासीन (अत्यंत विमुख) रहकर, जीवनभर मात्र शरीरके लिये ही अतिशय परिश्रम करते रहनेवाले आत्माकी अमरता एवं शरीरकी अनित्यताको समझे हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१६-दूसरोंको अच्छा उपदेश देनेवाले और स्वयं उस पर किंचित् भी अमल नहीं करनेवाले सच्चे उपदेशक हैं, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१७-आत्माके साथ रहनेवाली ज्ञान, दर्शन और चारित्रिकी शाश्वत ऋद्धि प्राप्त करनेके बदले चंचल लक्ष्मीके पीछे पागलोंकी भाँति भटकनेवाले बुद्धिशाली है, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१८-सुरक्षा हेतु दूसरेकी रखी हुई पूंजीको जो स्वयं डकार जाय (हजम कर ले) वह साहूकार है, ऐसा कैसे कहा जाय ?

१९-दिन-रात पौद्गलिक पदार्थोंकी प्राप्तिका प्रयत्न करनेवालोंको परलोककी चिन्ता है ऐसा कैसे कहा जाय ?



१७. सच्ची सलाह

- १-देखनेकी इच्छा हो तो मैं (आत्मा) कैसा हूँ वही देखना।
- २-रोनेकी भावना हो तो अपने अधम कृत्यके लिये ही रोना।
- ३-ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो सबके गुण ही ग्रहण करना।
- ४-खानेकी अभिलाषा हो तो गम (सत्र) खाना।
- ५-पान करनेकी इच्छा हो तो वीतराग वाणीका ही पान करना।
- ६-लूटने की भावना हो तो ज्ञानको ही लूटना।
- ७-क्रोध करो तो क्रोधके ऊपर ही क्रोध करना।
- ८-अभिमानि बनो तो धर्माभिमानि ही बनना।
- ९-कपट करो तो मोहराजाके साथ ही करना।
- १०-कुछ करनेकी भावना जागृत हो तो सबका भला करना।
- ११-बोलनेका मन हो तो हितकर और मिष्ट भाषा ही बोलना।
- १२-मारने की अभिलाषा हो तो कर्मशत्रुको ही मारना।
- १३-निन्दा किये बिना नहीं चले तो अपनी ही निन्दा करना।
- १४-लोभ न छूटे तो धर्मका ही लोभ करना।
- १५-संग्रह करनेकी वृत्ति नहीं छूटे तो धर्मसंग्रहकी ही वृत्ति रखना।
- १६-डरो तो मिथ्यात्वके महान पापसे डरना।
- १७-सुननेका मन हो तो धर्मकथा ही सुनना।
- १८-पढ़नेका मन हो तो धार्मिक पुस्तकें ही पढ़ना।
- १९-संगत किये बिना न चले तो धर्मीजनोंकी ही संगत करना।
- २०-व्यसन रखना हो तो दानका ही रखना।
- २१-दूर भागो तो दुर्जनसे ही भागना।
- २२-समर्थन करो तो धर्मकार्योंका ही समर्थन करना।
- २३-तैरना सीखो तो संसारसमुद्रको तिरना सीखना।

- २४-निकंदन निकालनेकी भावना हो तो अधर्मको ही निकालना।
 २५-बढ़ना हो तो धर्ममें ही बढ़ना।
 २६-नाटक देखनेकी इच्छा हो तो अपना संसाररूपी नाटक ही देखना।
 २७-रीस (रोष) करो तो अपनी दुष्ट कार्यवाही पर ही करना।
 २८-तोड़फोड़ करनेकी इच्छा हो तो कर्मोंकी ही तोड़फोड़ करना।
 २९-गुणगान करो तो अन्य गुणीजनोंके ही करना।
 ३०-किसीको सलाह देनेका मन हो तो हितकर सलाह ही देना।
 ३१-प्रेमका नाता जोड़ना हो तो सुदेव, सुगुरु और सुधर्मके साथ ही जोड़ना।
 ३२-शत्रु मानना हो तो राग और द्वेष दोनोंको ही मानना।
 ३३-स्नान करो तो ज्ञानगंगामें ही करना।
 ३४-लीन होना हो तो प्रभुभक्तिमें ही लीन होना।
 ३५-काटने की इच्छा हो तो चारगतिके फेरोंको ही काटना।
 ३६-धोना चाहो तो आत्माकी मलिनताको ही धोना।
 ३७-नमने का मन हो तो धर्मी और गुणीजनोंको ही नमना।



१८. सच्ची व्याख्याएँ

- १-पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको जीत ले वह सच्चा शूरवीर है।
 २-धर्माचरण करे वही सच्चा पण्डित है।
 ३-सदा सत्य बोले वही सच्चा वक्ता है।
 ४-जगतके सर्व जीवोंको अभयदान दे वही सच्चा दाता है।
 ५-तत्त्वोंका विचार करना ही बुद्धि प्राप्त होनेका सच्चा फल है।
 ६-निर्वलोंकी रक्षा करना ही शक्ति प्राप्त करनेकी सच्ची सफलता है।
 ७-धर्मविहीनता ही सच्ची दरिद्रता है।

- ८-सुदेव, सुगुरु और सुधर्ममें अखण्ड विश्वास ही सच्चा धनवानपना है।
- ९-असंतोष ही वास्तवमें दुःख है।
- १०-जीवनमें घर बनाकर बैठे हुए चोरी और व्यभिचार नामके दुर्गुण ही वास्तवमें वेड़झती है।
- ११-अंतरके मलिन विचार ही वास्तवमें कालापन है।
- १२-सम्यग्ज्ञान अर्पण करना ही सच्चा दान है।
- १३-चाहे जैसे संयोगोंमें भी न्यायमार्गसे च्युत न हो वही सच्चा धीर है।
- १४-राग और द्वेष ही आत्माके सच्चे शत्रु हैं।
- १५-गुरुका स्वाधीन योग होने पर भी जो धर्मवचन नहीं सुनता वही सचमुच धृष्ट (धीठ) है।
- १६-अपकारी पर भी उपकार करना वही सच्ची सज्जनता है।
- १७-दिन-रात विषयोंमें रत रहनेवाला ही अंध है।
- १८-दूसरों की निन्दा करे वही वास्तवमें धोबी है।
- १९-परके गुणोंको ग्रहण करनेवाला तथा अपने अवगुणोंको देखनेवाला ही सच्चा दृष्टा है।
- २०-विनय और विवेकरहित मनुष्य ही सचमुच पशु है।
- २१-चंचल लक्ष्मीका उदारतापूर्वक सदुपयोग करना ही उसे प्राप्त करनेकी सच्ची सफलता है।
- २२-रोगियोंका रोग मिटानेमें लापरवाह और उनके पैसोंसे जेब भरनेवाले वैद्य-डॉक्टर ही वास्तवमें यमराज हैं।
- २३-अपनी वस्तुको परायी और परायीको अपनी मानना ही वास्तवमें अज्ञानता है।
- २४-आत्मामें रहा हुआ घोर अज्ञान ही अमावस्याके अंधकार समान है।
- २५-विषयोंकी तृषाको छिपानेवाली वीतरागदेवकी वाणी ही सच्चा पानी है।
- २६-अपनी इच्छानुसार अपने धनको सन्मार्गमें लगानेवाला ही धनका सच्चा स्वामी है।
- २७-परायी निन्दा करनेवाला, झूठे आक्षेप लगानेवाला और पराये मर्मको प्रगट करनेवाला ही वास्तवमें चाण्डाल है।
- २८-विषय-कषायकी अग्निमें जलते हुए आत्माको बचा ले, वही सच्चा उपकारी है।

- २९-जहाँ जन्म और मृत्युरूपी असाध्य रोगोंका निदान होता हो वही सच्चा अस्पताल है।
- ३०-समय पर भी सच्ची बात न कहकर हरसमय मीठा बोलकर जीहजूरी करनेकी बुरी आदत ही मक्खन लगाना है।
- ३१-दूसरोंको हैरान करनेकी दुर्भावना ही दुर्जनता है।
- ३२-अपना और समय आने पर दूसरोंका आत्मकल्याण साधनेकी सद्भावना ही सच्ची साधकता है।
- ३३-आठ कर्मोंके पंजेमें फँसे हुए आत्माको मुक्त करना ही सच्चा स्वराज्य है।
- ३४-चतुर्गतिरूप संसार ही सच्चा कारागृह है।
- ३५-चाहे जैसे संकटमें आ जाने पर भी अधर्म कार्य नहीं करना सच्ची कुलीनता है।
- ३६-अपने स्वार्थके लिये पराये हितको नष्ट करनेवाले ही वास्तवमें राक्षस हैं।
- ३७-पिताकी भाँति प्रजाका पालन करे वही सच्चा राजा है।
- ३८-विपत्तिमें सहायक हो वही सच्चा मित्र है।
- ३९-छोटोंके आत्महितकी चिन्ता करे वही सच्चा बड़ा है।
- ४०-दुर्गतिमें पड़े हुए प्राणियोंको बचा ले वही सच्चा धर्म है।
- ४१-जो सुख आनेके पश्चात् कभी न जाय वही सच्चा सुख है।
- ४२-आत्मामें विद्यमान अनंत गुणोंके भण्डारको प्रगट कर दे वह सच्चा विज्ञान है।
- ४३-दिन-प्रतिदिन आत्माको धर्म मार्ग पर आगे बढ़ानेके लिये किये जानेवाला प्रयत्न ही सच्ची प्रगति है।
- ४४-कर्मके कठिन फन्देको काटनेके लिये क्षमा ही सच्चा शस्त्र है।
- ४५-लोकरुढ़िके प्रवाहमें न बहकर उससे प्रतिकूल धर्मप्रवाहमें तैरनेवाला ही सच्चा तैराक है।
- ४६-संसाररूपी समुद्रमें डगमगती हुई जीवननौकाको मुक्तिका किनारा दिखाये वही सच्चा नाविक है।
- ४७-तृष्णा और लोभदशा ही जगतके जीवोंको हैरान करनेवाली डाकिनें हैं।
- ४८-हितशिक्षाको नहीं सुननेवाला ही वास्तवमें बधिर (बहरा) है।

१९. वही सच्चा ज्ञान

- १-मनुष्यको विनयी, विवेकी, नम्र और दयालु बनाये वही सच्चा ज्ञान।
- २-उद्वण्डता, असरलता, स्वच्छन्दता और निर्दयताको दूर हटाये वही सच्चा ज्ञान।
- ३-शरीर और आत्माकी भिन्नताका भान कराये वही सच्चा ज्ञान।
- ४-शरीर नाशवान है, और आत्मा अविनाशी है—ऐसा ज्ञान उत्पन्न करे वही सच्चा ज्ञान।
- ५-आत्मा स्वयं ही शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता और भोक्ता है इस सिद्धान्तको जो समझाये वही सच्चा ज्ञान।
- ६-ईश्वर बनानेवाला नहीं किन्तु बतानेवाला है—ऐसी मान्यताको धारण कराये वही सच्चा ज्ञान।
- ७-पौद्गलिक उन्नतिकी ओर कूच करती जनताको आत्मोन्नति का सच्चा मार्ग बतलाये वही सच्चा ज्ञान।
- ८-मानवभव की महत्ता भोगको नहीं किन्तु ज्ञान-वैराग्यको ही आभारी है—ऐसा पक्का-अफर सत्यका भान कराये वही सच्चा ज्ञान।
- ९-ईर्ष्याग्निमें दिन-रात जल रहे तथा विषय-विकारोंकी भट्टीमें भुन रहे मनुष्योंको शान्ति अर्पित करे वही सच्चा ज्ञान।
- १०-बाह्य शत्रुओंकी अवहेलना करके राग-द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओंका सामना करनेकी शक्ति दे वही सच्चा ज्ञान।
- ११-जन्म एवं मरण नामके दो भयंकर रोगोंसे मनुष्योंको मुक्त कराये वही सच्चा ज्ञान।
- १२-तन और धन देकर भी धर्मरक्षा की भावना जागृत करे वही सच्चा ज्ञान।
- १३-पुण्य, पाप, परलोक और आत्मा आदि पदार्थोंके अस्तित्वकी श्रद्धाको दृढ़ करे वही सच्चा ज्ञान।
- १४-सुदेव, सुगुरु और सुधर्मका सन्मान उत्पन्न कराये वही सच्चा ज्ञान।
- १५-भक्ष्य, अभक्ष्य, पेय और अपेय पदार्थोंकी पहिचान कराये वही सच्चा ज्ञान।
- १६-अहम् और ममकी मायामें अंध हुई दुनियाके नेत्र जगतमें कोई मेरा नहीं है—इस भावनारूप अंजनसे खोल दे वही सच्चा ज्ञान।

- १७-दूसरोके अवगुण देखनेके बदले अपने दुर्गुणोंको देखना सिखलाये वही सच्चा ज्ञान।
- १८-जगतके समस्त पौद्गलिक पदार्थोंकी प्राप्ति सुलभ है, परन्तु वीतरागकथित धर्मकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, —इस सिद्धान्तमें सम्पूर्ण विश्वास उत्पन्न करा दे वही सच्चा ज्ञान।
- १९-सत्ता और सम्पत्तिका सदुपयोग करना सिखाये वही सच्चा ज्ञान।
- २०-दुराचारकी दुष्टता और सदाचारकी श्रेष्ठताको समझाये वही सच्चा ज्ञान।
- २१-मात्र इसी लोकमें ही उपयोगी हो सके वह समस्त ज्ञान मिथ्याज्ञान है, ऐसी मान्यता उत्पन्न करे वही सच्चा ज्ञान।
- २२-मैं संसारके समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाऊँ—ऐसे मनोरथ उत्पन्न कराये वही सच्चा ज्ञान।
- २३-सच्चे धर्मके विना किसीको मुक्ति हुई नहीं और होगी भी नहीं,—इस सिद्धान्तमें सम्पूर्ण श्रद्धा उपजाये वही सच्चा ज्ञान।



२०. इतना तो अवश्य करो।

- १-सात व्यसनों का त्याग कर देना, परन्तु दान देनेके व्यसनको कभी छोड़ना नहीं।
- २-सबका लोभ छोड़ देना परन्तु धर्मके लोभी अवश्य बनना।
- ३-किसीसे डरना नहीं परन्तु कुकृत्यसे तो डरते ही रहना।
- ४-परायी वस्तु छीन लेनेकी दुष्ट भावना हो तब अपंग हो जाना पसन्द करना।
- ५-विकार दृष्टिसे रूपरंगको निहारनेमें ही दिन-रात लगे रहनेवाले चक्षु प्राप्त होनेकी अपेक्षा अंधत्व अधिक हितकर है—ऐसा मानना।
- ६-सब बातोंमें सन्तोषी बनना, परन्तु धर्मक्रियाएँ करनेमें सदा असन्तोषी रहना।
- ७-किसीका भला न कर सको तो कोई बात नहीं परन्तु बुरा तो किसीका करना ही नहीं।
- ८-धर्म हो सके उतना करना, परन्तु धर्म करनेवालोंके मार्गमें अन्तरायरूप बनकर काँटे तो कभी नहीं डालना।

९-किसीका गुणानुवाद नहीं कर सको तो कोई बात नहीं, परन्तु किसीका अवर्णवाद (निन्दा) तो कभी नहीं करना।

१०-देव, गुरु और धर्मकी जितनी भक्ति हो उतनी करना, परन्तु उनकी अभक्ति करनेकी मूर्खता तो कदापि नहीं करना।



२१. इसका कभी विचार किया है ?

१-मनुष्य भव मिला तो अवश्य है, परन्तु फलित कितना हुआ इसका कभी विचार किया है ?

२-यह वस्तु अच्छी है, यह बुरी है—यह भेद तो समझे, परन्तु सुदेव कौन और कुदेव कौन ? इसका कभी विचार किया है ?

३-धर्मके मर्मको समझे विना किसलिये उसमें विद्वत्ताका प्रदर्शन करना चाहिये ? इसका कभी विचार किया है ?

४-धर्म करनेसे कितना लाभ होता है और अधर्मसे कितनी भयंकर हानि होती है,— इसका कभी विचार किया है ?

५-आजके विलासपूर्ण वातावरणमें वैभव-विलासके स्वामी भी समय-समय पर धर्मकार्यको भूलते नहीं हैं, तब मुझ जैसे पामरको यह करनेमें क्या आपत्ति आ सकती है ? इसका कभी विचार किया है ?

६-कोई मेरी निन्दा करे तो मैं क्रोधित हो उठता हूँ; तो मुझे किसीकी निन्दा क्यों करना चाहिये ? इस पर कभी विचार किया है ?

७-मृत्यु तो अवश्यंभावी है; तब फिर संसारसमुद्रको पार करने तथा शिवसुन्दरीका वरण करनेके लिये मैंने अब तक क्या-क्या किया,—इसका कभी विचार किया है ?

८-तेरी दो आँखें बन्द होने पर सब यहीं पड़ा रहना है, तब फिर मेरा-मेरा करके किसलिये आकुलित हो रहा है, इसका कभी विचार किया है ?

९-गेहूँ और कंकड़ दोनों मिले होते हैं, तब उनमेंसे गेहूँको रखकर कंकड़ोंको फेंक देता हूँ, तो अनेक गुणोंमेंसे अवगुण किसलिये ग्रहण करता हूँ ? इसका कभी विचार किया ?

१०—मनुष्यभवकी सफलता यथार्थ समझ करनेमें ही है, तब फिर उसे भोगोंमें किसलिये बर्बाद कर देना चाहिये, इसका कभी विचार किया है?

११—जप, तप, क्रियाकाण्ड तो बहुत किये, परन्तु अज्ञानको हटानेका कितना प्रयत्न किया? इसका कभी विचार किया है?

१२—दुनियाके सर्व कार्योंमें मनको पक्का बनाया जाता है, परन्तु धर्मकार्योंमें उसे क्यों निर्बल बना देते हैं, इसका कभी विचार किया है?

१३—दोनों आँखों का अंधापन जितनी हानि नहीं पहुँचाता उनसे अनंतगुनी हानि अज्ञानांधकारसे हो रही है, इसका कभी विचार किया है?

१४—विषयोंके भोगमें अभी तो लहर मालूम होती है, परन्तु उसके पीछे उसका कहर (दुःख) कितना है, इसका कभी विचार किया है?



२२. सच्चा सुख और उसके साधन

धर्मसे सुख और पापसे दुःख होता है—यह सिद्धान्त सर्व धर्मवालोंने स्वीकार किया है, इसलिये पाप न करके धर्मका संग्रह करना चाहिये।

जो लोग ऐसा मानते हैं कि सुख और दुःख देनेवाला तो ईश्वर है, उनकी मान्यता बिलकुल कपोलकल्पित होनेसे मिथ्या सिद्ध होती है क्योंकि निरंजन निराकार परमकृपालु, राग-द्वेष रहित परमात्माको राग और द्वेषकी प्रवृत्तिसे परिपूर्ण दुनियाको उत्पन्न करके उसे सुख और दुःख देनेका कोई प्रयोजन ज्ञात नहीं होता।

हे भगवान! प्रशान्त रसमें निमग्न हुए दो नेत्रोंसे प्रसन्न आपका मुख कमल है, तेरी गोद स्त्रीके संगरहित है, तेरे दोनों हाथ शस्त्ररहित हैं और इसलिये जगतमें तू वीतराग देव कहा जाता है।

संसाररूपी वृक्षको जड़से उखाड़ देनेवाला कोई मदोन्मत्त हाथी हो तो वह मात्र एक (सम्यक्) ज्ञान ही है।

जड़तारूपी अंधकारका नाश करनेवाला कोई सच्चा सूर्य हो तो वह मात्र ज्ञान ही है।

त्रिजगतमें विद्यमान सर्व पदार्थोंको बतलानेवाला कोई अपूर्व नेत्र हो तो वह मात्र ज्ञान ही है।

इन्द्रियोरूपी हिरनोंको कसकर (मजबूत) बाँधनेवाला कोई जब्बरजस्त जाल हो तो वह मात्र ज्ञान ही है।

निष्फल होनेके भयसे जो डरते नहीं हैं उन्हें अपने कार्यमें अवश्य सफलता प्राप्त होती है।

कोई मनुष्य आपके यहाँ व्याजकी बात किये बिना रुपये रख जाय तो उसे व्याज नहीं मिलता, वैसे ही जगतके भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थोंको नहीं खानेकी प्रतिज्ञा धारण नहीं करे तब तक उसका पाप आता ही रहता है और पुण्य नहीं मिलता।



२३. बोधदायक वचन

१-जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि—जो सीख आप दूसरोंको देते हो, पहले उस पर स्वयं अमल करो।

२-बदला लेनेके विचार बिना, दूसरेको उपयोगी होनेकी इच्छासे दिया हुआ दान ही सच्चा दान कहलाता है।

३-धैर्य और लगन चाहे जैसे विघ्नरूप बादलोंको बिखेर देते हैं।

४-जिससे तुम्हें फलकी प्राप्ति होती हो उसे नष्ट मत करो।

५-भय मनुष्यको सत्त्वहीन बना देता है।

६-तुम्हारे ऊपर हमला करनेवाले शत्रुओंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु समय पर सच्ची सलाह न देकर हाँ जी हाँ (जीहजूरी) करनेवाले मित्रोंसे डरते रहनेकी आवश्यकता है।

७-किसी भी मनुष्यके व्यक्तित्व अथवा स्वच्छन्दी वर्तन की ओर ध्यान न देकर उसमें रहे हुए गुणोंको ढूँढ़नेका प्रयत्न करो।

८-स्वार्थवृत्ति वह तो अपनेमें पशुताका अंश है, परोपकार वृत्ति ही मानवताका सच्चा प्रमाण है।

९-धन, पदवी अथवा सत्तासे कभी सन्तोष उत्पन्न होनेवाला नहीं है, परन्तु जिस समय जो वस्तु मिल जाय उसीमें प्रसन्न रहनेवाले और थोड़े वैभवमें भी सन्तोष माननेवाले तथा अपने पास जो कुछ है उसे पर्याप्त समझनेवाले ही सच्चे सन्तोषी हैं।

१०-किसीको भी अपनी टीका पसन्द नहीं है। प्रत्येकको अपनी वस्तुका जो मूल्य हो उससे अधिक मूल्यवान लगती है। सच्ची परन्तु कड़ी टीका मनुष्यके सम्बन्धोंमें बाधा पहुँचाती है, इसलिये बोलनेमें अति तीक्ष्ण भाषाका प्रयोग नहीं करें।

११-जबतक तुम एक-दूसरेके कंधेसे कंधा, हाथोंसे हाथ और कमर पकड़कर खड़े रहोगे तबतक तुम्हें कोई चोट या आघात नहीं पहुँचा सकेगा, इकट्ठे हो तभी तक शान्ति एवं सुरक्षा है; परन्तु एकवार यदि पृथक् हो गये तो मिट्टीमें मिल जाओगे।

१२-इतना याद रखना कि यह जगत भय, संकट, आपत्ति और निराशासे भरा हुआ है, परन्तु हिंमत रखोगे तो तुम सुरक्षित हो।

१३-याद रखो कि यह जगत एक दर्पण है, जिसमें तुम्हारे अच्छे और बुरे कार्य दृष्टि गोचर होते हैं।

१४-याद रखो कि दुःख, बेचैनी एवं अप्रसन्नता यह जीवनके प्रतिबिम्ब हैं।

१५-यदि तुम कुछ नहीं दे सकते हो तो सबके प्रति अंतःकरणपूर्वक सहानुभूति तो अवश्य दरशाओ।

१६-इन्द्रिय-विषयों पर अंकुश लगाओ।

१७-याद रखो कि आत्मज्ञान और आत्मविश्वास वह आत्माको उच्च कक्षामें पहुँचानेके मुख्य गुण हैं।

१८-याद रखो कि मृत्यु विलम्बसे या शीघ्र आयगी परन्तु किसीको भूलनेवाली नहीं है।

१९-जगतमें जो कुछ अच्छा या बुरा कार्य होता है वह सब जीभसे होता है।

२०-जैसा बर्ताव तुम दूसरोंसे कराना चाहते हो, वैसा वर्तन दूसरोंके प्रति तुम करो।

२१-कोई बाह्य वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है, परन्तु तुम्हारे विचार तुम्हें वैसा मनवाते हैं।

२२-जो निष्फलताके भयसे नहीं डरता वह अवश्य अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करता है।

२३-एक सामान्य मनुष्यके प्रति स्नेहपूर्ण आचरणसे बड़े आदमीका बड़प्पन मालूम हो जाता है।

२४-जब तुम दुःखी हो उस समय दुःख देनेमें जो निमित्त मात्र होता है उसका दोष मत निकालना। तुम अपने पूर्वकृत आचरणकी जाँच करोगे तो मालूम हो जायगा कि इस भूल का फल भुगतनेके लिये तुम स्वयं जिम्मेवार हो।

२५-सदाचार एक प्रकारकी सम्पत्ति है। मनुष्य अच्छे या बुरे जिनमित्रोंको चाहता है, जो पुस्तकें पढ़ता है, जैसे विचार रखता है, जिस स्थानमें रहता है उसके द्वारा ज्ञात हो जाता है कि वह कैसे आचरणका है।

२६-थोड़ा खर्च करना उसका नाम मितव्ययता नहीं है, परन्तु जहाँ जितना चाहिये उतना खर्च करनेका नाम ही मितव्ययता है।

२७-किसीकी भूल देखकर हँसो मत, क्योंकि तुम्हारी भूल भी दूसरेके लिये अधिक हास्यकी पात्र होगी।

२८-श्रद्धा मनुष्यको शक्तिवान बनाती है, इसलिये अपने कार्यमें तथा अपने स्वयंमें श्रद्धा रखो।

२९-बड़ी-बड़ी बातें करनेकी अपेक्षा थोड़ा भी करके दिखानेका मूल्य अधिक है।

३०-विनाशीक शरीरकी खबर पूछनेवाले तो अनेक मिलेंगे, परन्तु अविनाशी आत्माकी खबर पूछनेवाले तो कोई विरले ही होते हैं।

३१-सत्ता अथवा सुवर्णसे भवसागर पार नहीं होता, परन्तु सच्चे ज्ञानसे भवसागरको पार किया जा सकता है।

३२-दूसरोंको सदाचारी बननेकी सलाह देना सरल है, परन्तु स्वयं सदाचारी बनना वह बहुत कठिन है।



२४. सुन्दर भावना

हे चेतन! तू अकेला ही आया है, जाना भी अकेला ही है। कोई किसी का नहीं है, सब अपने अपने स्वार्थमें खेल रहे हैं। जबतक तुझसे कोई स्वार्थ सधता होगा तबतक तेरे स्वजन-सम्बन्धी तथा मित्र तेरा सम्मान करके तेरी कुशल-क्षेम पूछते रहेंगे। परन्तु अपना स्वार्थ निकल जाने पर तुझे छोड़ देनेमें उन्हें किंचित् विलम्ब नहीं होगा। यह सब क्या तू नहीं समझता? यदि समझता है तो फिर मेरा-मेरा किसलिये करता है? तेरा क्या है उसको समझ।

हे आत्मा! थोड़े शांत चित्तसे विचार करेगा तो तुझे ज्ञात होगा कि तेरे साथ पुण्य-पापके अतिरिक्त अन्य कुछ आनेवाला नहीं है। अठारह पाप स्थानकोके सेवनसे प्राप्त किया हुआ तेरा समस्त वैभव-विलास तेरे मरणके पश्चात् यहीं रह जायगा। तू तो मात्र पुण्य और पापकी

दो गठरियाँ लेकर परलोक जानेके लिये विदा हो जायगा। पीछे रहे हुए वैभवका उपभोग तेरा स्वार्थी कुटुम्ब करेगा और उस वैभवके उपार्जनमें हुए पापोंके फलका उपभोग तुझे अकेलेको ही करना पड़ेगा। तेरे दुःखमें कोई भी स्नेही भाग लेने नहीं आयगा। यह 'दो दूनी चार' जैसी सीधी सादी बातको क्या तू नहीं समझता ? ज्ञानप्रकाशसे जगमगाता हुआ मानवजन्म प्राप्त करके कबतक अज्ञानरूपी अंधकारमें भटकता रहेगा ? सद्गुरुका संग करके ज्ञानरूपी गंगामें स्नान करते हुए पापोंसे मलिन अपने आत्माको निर्मल बनानेके लिये प्रयत्नशील बन !

हे चेतन ! कदाचित् प्रबल अन्तरायके कारण तू उच्च धर्मकार्य नहीं कर सके तो चिन्ता की बात नहीं है, परन्तु तेरे हाथसे एक भी अधर्मकार्य जाने-अनजाने न हो जाय उसका बहुत ध्यान रखना। हे जीव ! इस संसारके मिथ्या मोहजालमें फँसकर बेभान होकर यदि बारह भावनाएँ भाकर जीवनको धर्मसे ओतप्रोत नहीं बनाया तो समझ लेना कि दुर्गति का मेहमान बनकर तू अनेक दुःखोंका भागी होगा और फिर पश्चात्तापका पार नहीं रहेगा।

सर्व आत्मा पूर्वमें किये अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही सुखदुःखके फलका विपाक प्राप्त करते हैं। अपराधमें अथवा गुणमें अन्य तो निमित्तमात्र ही होते हैं।

सम्पत्तिमें आनन्द नहीं मानना, क्योंकि वह पूर्वपुण्यका नाश करती है; तथा आपत्तिमें खेद नहीं करना, क्योंकि वह पूर्व पापका नाश करती है।

दुःखके कालमें आर्तध्यानादि करनेकी अज्ञान चेष्टा नहीं करके धर्मकार्योंमें बहुत सलग्न रहनेकी आवश्यकता है। आपत्तियोंको हटानेवाली धर्मके अतिरिक्त अन्य कोई भी औषधि नहीं है यह हृदय पर अंकित कर लेनेकी आवश्यकता है।



२५. वचन-पुष्पांजलि

१-दूसरे कैसे हैं यह देखनेमें याद रखना ही तुम्हें बहुत कुछ खोना है; जब कि मैं कैसा हूँ यह देखनेमें पाप धोना है।

२-अपने जीवनमें सुन्दर सुविधाएँ खड़ी करनेके लिये अथक परिश्रम करनेवालोंको दूसरोंकी सुविधाएँ छीन लेनेका कोई अधिकार नहीं है।

३-गुणग्रहण करनेवाले हंसकी उपमा पाते हैं, जबकि अवगुणोंको ग्रहण करनेवाले कौए की। दोमेंसे जो उपमा पसन्द हो वैसा कार्य करना।

४-पूर्वके पुण्योदयसे तुम्हें कोई सत्ता प्राप्त हुई हो तो सबकी भलाईमें उसका सदुपयोग करना। यदि सत्ताके मदमें अंध होकर दुनियाको हैरान करनेका धंधा किया तो कर्मसत्ता तुम्हें कुचल देगी।

५-यदि तुम बुद्धिशाली हो तो किसीको गद्देमें गिरानेका प्रयत्न न करके उसे सच्ची सलाह देने और सच्ची राह बतानेमें उसका सदुपयोग करना।

६-यदि तुम्हें निरोगी शरीर और सम्पत्ति प्राप्त हुई हो तो उसे मात्र ऐशआराममें न लगाकर, ज्ञानध्यानमें लगानेका भी प्रयत्न करना।

७-जैसे रुईसे दबी हुई अग्नि प्रकट हुए बिना नहीं रहती, वैसे ही छिपकर किया हुआ पाप भी देर-सबेर प्रकट हुए बिना नहीं रहता; इसलिये पाप नहीं करना ही श्रेष्ठ मार्ग है।

८-सत्ता और सम्पत्ति प्राप्त करनेका जितना प्रयत्न करते हो, उतना प्रयत्न धर्मप्राप्तिके लिये करो तो सत्ता और सम्पत्ति बिना आमंत्रित किये ही तुम्हारे यहाँ आ जायँगे।

९-यदि अपनेको शान्तिमें रखना चाहते हो तो किसीकी भी शान्ति छीन लेनेका नीच प्रयत्न नहीं करना।

१०-धनके पीछे ही पागल हो रहे तथा उसीको ही सर्वस्व माननेवाले मनुष्योंके पास धर्म और नीतिकी आशा रखना व्यर्थ है।

११-गुणीजनोंका गुणगान करने और सुननेमें जिनकी जिह्वा और कर्ण तत्पर रहते हैं, तथा दूसरोंको सुखी देखकर जिनके हृदयमें देषाग्नि नहीं भड़कती वे ही आत्मा मानवजीवनको सफल कर सकते हैं।

१२-दुःखियोंके दुःखको दूर करनेमें ही तन, मन और धनका उपयोग करनेवाले तथा अधर्मीको भी धर्मी बनाने की महत्त्वाकांक्षावान, परोपकाररसिक आत्मा सच्चे दयावान होनेसे जगतको आशीर्वादरूप बन सकते हैं।

१३-दूसरोंके अवगुणोंको देखनेकी बुरी आदत छोड़ना हो तो अपने दुर्गुणोंको देखना प्रारम्भ करो।

१४-अपनी पत्नीको सीताजी बनानेकी भावनावालेको स्वयं रामचंद्रजी बनना ही पड़ेगा।

१५-कोई भी अधिकार (पद) प्राप्त करके जो मनुष्य उस अधिकारकी शोभानुकूल कार्यवाही नहीं करता, उसके अधिकारमेंसे आदिका 'अ'कार निकल जानेसे धिक्कार शेष रहता है।

१६-अपने उपकारियोंके प्रति अनुपकारी वृत्तिवाले मनुष्य कुत्तेसे भी निम्नकोटिके माने जाते हैं।

१७-दुःखोंसे त्रस्त आत्माओंको आर्त्तध्यान करनेके बदले उन दुःखोंसे छूटनेके लिये धर्मध्यानकी आवश्यकता है।

१८-संसाररूपी बीजांकुरोंको उत्पन्न करनेके कारणभूत राग और द्वेष जिनके मूलसे नष्ट हो गये हैं, उन्हींको वीतराग परमात्मा कहा जाता है।

१९-संसारी मनुष्य धर्मके फलरूप सुखकी इच्छा तो करते हैं, परन्तु धर्मसे कोसों दूर भागते हैं, और पापका फल जो दुःख उससे डरते हैं, तथापि पापकर्म आदरपूर्वक करते हैं।—यह विपरीत दशा दूर नहीं होगी तबतक कदापि सुख प्राप्त नहीं होगा।

२०-धर्म रहित धनवान वास्तवमें निर्धन है, और दरिद्र होने पर भी सच्चा धर्मी श्रीमन्त है।

२१-पाप करनेमें उत्साहित करनेवाले बहुत मिलेंगे, परन्तु जब उस पापका विपाक भोगनेका समय आयगा तब बचानेवाला कोई नहीं मिलेगा।

२२-हितशिक्षाको सुनकर जिसका आत्मा क्रोधातुर हो जाय तो समझना कि उसकी भाग्यदशाका अन्त हो गया है।

२३-हे मूर्ख! तू सुखसे बैठता है, सुखसे सोता है, सुखसे खाता है, सुखसे पीता है; परन्तु परलोकमें धर्मके बिना तेरा क्या हाल होगा? उसका जरा शांत चित्तसे विचार कर।

२४-उदार बनो परन्तु उड़ाऊ नहीं बनना, मितव्ययी बनो परन्तु कंजूस नहीं बनना, स्वाभिमानी बनो परन्तु स्वच्छन्दी नहीं बनना।

२५-जिस समय जो वस्तु मिल जाय उसीमें सन्तोष मानकर उससे चला लेनेकी आदत डालना ताकि भविष्यमें दुःखी होनेका समय न आये।

२६-सच्चा और झूठा—इन दोकी मित्रतामें झूटेको कुछ गँवाना नहीं पड़ता, गँवाना तो सच्चेको ही पड़ता है।

२७-उसीका जन्म सफल माना जाता है, उसीसे यह पृथ्वी विभूषित है कि जो समय आने पर अपकारीका भी उपकार करनेमें नहीं चूकता।

२८-तुम्हारे मार्गमें कोई दुर्जन काँटे बिछाये तो तुम उसके बदलेमें उसके मार्गमें फूल बिछाकर सज्जनोंकी पंक्तिमें नाम लिखवानेसे नहीं चूकना।

२९-ज्ञान, वैराग्य, संयम और तप—यह जन्म-मरणका रोग मिटानेकी श्रेष्ठ औषधि हैं।

बनता नहीं है ऐसा मत कहो, परन्तु करना नहीं है ऐसा कहो ।

शास्त्रश्रवण, पठन, चिन्तन, सत्समागम आदि धर्मक्रियाएँ करनेके लिये जब-जब ज्ञानियोंकी ओरसे उनके समागममें आनेवालोंसे कहा जाता है, तब-तब सम्भवतः उनकी ओरसे एक ही उत्तर मिलता है कि-हमसे बनता नहीं है। यह उनका बिलकुल झूठा और आधारहीन बचाव है, क्योंकि ऐसा कहनेवाले उपरोक्त धर्मक्रियाओंकी अपेक्षा भी संसारकी अनेक प्रकारकी कष्टदायी क्रियाएँ क्या नहीं करते ?

१-क्या टाईफोड (मोतीझारा) बुखारवाले कई दिनों तक मूँगके पानी पर नहीं रहते ? तब फिर ज्ञान-ध्यान (व्रत-उपवासादि) करनेमें क्या आपत्ति आये ऐसा है ?

२-अमुक रोगके समय वैद्य कहे तो उन-उन वस्तुओंको खाना छोड़ देते हो या नहीं ? तब फिर धर्मगुरुओंके कहनेसे कन्दमूलादि अभक्ष्य पदार्थोंको छोड़नेमें क्या आपत्ति आये ऐसा है ?

३-पैसेके लालचमें चाहे जैसों की सेवा तन-मनसे करते हो, तब फिर आत्माकी मुक्ति हेतु वीतरागदेवकी सेवा तो दूर रही क्या दर्शन भी नहीं कर सकते ?

४-निन्दा, चुगली और गप्पें मारनेका समय मिलता है, तो क्या एकाध घण्टे शास्त्रस्वाध्यायका समय नहीं मिल सकता ?

५-पाँच-पच्चीस रुपया वेतन देनेवाले शेटकी आज्ञाका पालन करनेके लिये आधी रातको तैयार हो जाते हो, तब क्या देव और गुरु की आज्ञाका शक्य पालन नहीं कर सकोगे ?

६-सुपरटेक्स, इन्कमटेक्स, वॉटरटेक्स आदि अनेक टेक्सोंके पैसे खुशीसे भरे जाते हैं, तब फिर धर्मादा खातेमें दान देनेमें क्यों आनाकानी होती है ?

—इससे यह सिद्ध होता है कि—जिस प्रकार संसारकी अनेक क्रियाएँ होती हैं वैसे ही धर्मक्रियाएँ भी करना चाहें तो हो सकती हैं। इसलिये कहना पड़ता है कि-बनता नहीं है ऐसा मत कहो, परन्तु करना नहीं है ऐसा कहो। (अर्थात् धर्मकी रुचि नहीं है वह समझो, बहाना मत बताओ।)



